अनन्त गोपाल शेवड़े

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-६

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम् ।
तत् त्व पूषन् ! अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

—ईशोपनिषद्

सोने की तरह चमकीले ढक्कन से सत्य का मुह ढका हुआ है । हे पूषन् ! (जगत् का पोषण करने वाले भगवान् !) सत्य-धर्म का दर्शन कराने के लिए वह ढक्कन हटा दो ।

१

वह पैसेजर गाडी के तीसरे दर्जे के डिब्बे मे बैठा था। प्रभात का सुहावना समय था। ठडी-ठडी हवा चल रही थी। खिडकी मे जहा भी नजर फैलाता, दूर नई हरियाली ही हरियाली दिखाई देती थी जो आखो को शीतलता पहुचाती थी। बीच मे एकाध नदी भी आ जाती जो जल की विपुलता मे, भरी हुई वह रही थी। बीच-बीच मे कुछ झरने भी पड जाते थे, पर वे भी अपने जल के अलकार मे युक्त, बाल-बच्चो से भरे-पूरे परिवारो की तरह प्रसन्न दिखाई देते थे। वर्षा ऋतु का आधा मौसम समाप्त हो गया था, सृष्टि अपने प्राकृतिक सौन्दर्य की आभा से लहलहा उठी थी, हरी हो गई थी, मानो वह चारो तरफ आनन्द ही आनन्द बरसा रही हो। समूचे वातावरण मे उल्लास ही उल्लास था। आकाश मे उडते हुए पक्षी दिखाई देते तो लगता कि मानो वे गीत गाते जा रहे है। खेतो-खलिहानो मे गाय-भैसे दिखाई देती, तो लगता कि वे भी न जाने किस अपूर्व उमगो से भरी कूद-फाद रही है। मानो सारी धरती, आकाश और सृष्टि एक नये रग मे रग उठी हो, एक नये सगीत से झकृत हो उठी हो।

गाडी की रफ्तार वहुत तेज नही थी क्योकि वह पैसेजर गाडी थी। हर स्टेशन पर वह रुकती और दो-चार मिनट ठहरकर फिर आगे बढती। वह बडे कुतूहल से चढने-उतरने वाले मुसाफिरो को देखता, पान, चाय, बीडी, सिगरेट बेचने वालो को देखता, स्टेशन के बाबुओ को देखता। ऐसा लगता जैसे सबमे नई जान आ गई हो। वह पुरानी मुर्दनी, पुरानी मायूसी और सुस्ती न जाने कहा गायब हो गई और उसकी जगह यह उत्साह, यह फुर्ती, यह चुस्ती न जाने कहा से आ गई?

पर उसे जो सबसे आश्चर्य हुआ वह इस बात का कि खेतो-खलिहानो मे, देहात के छोटे-छोटे गावो मे, मकानो पर, झोपडियो पर एकाएक इतने राष्ट्रीय झण्डे कैसे फहराने लगे। जहा कही मनुष्यो की बस्ती दिखती, दो-चार फूस के झोपडे नजर आते, वहा एक न एक झण्डा जरूर दिखाई देता जो उस सुहावनी

प्रभात की शीतल समीर मे फडफडा उठता। इन तिरगे झण्डो का इतना व्यापक प्रदर्शन किसी दल या सगठन की हिदायतो के कारण नही था। यह तो इतना स्वयस्फूर्त और आकस्मिक था, जैसे देश के कोटि-कोटि लोगो के मन मे एक साथ यही प्रेरणा उठी हो कि आज देश स्वतन्त्र हो गया है और हमे अपने राष्ट्रीय झण्डे को शान के साथ फहराना चाहिए, उसका वन्दन करना चाहिए।

भारतीय स्वतन्त्रता का पहला दिन! भारतीय शासन-प्रतिष्ठा का प्रथम मगल प्रभात!

१५ अगस्त, १९४७ का स्वर्ण दिवस! अनन्त वर्षो का स्वप्न आज साकार हो उठा, अनगिनत लोगो की तपस्या सार्थक हुई, कोटि-कोटि जनो की प्रार्थना सुन ली गई, और भारत की गुलामी की लम्बी काली रात खतम हो गई। ऋषि-मुनियो का देश, सतो और तपस्वियो का देश, चिन्तको और कर्मयोगियो का देश, धर्म-गुरुओ और प्रतापी राजाओ का देश, जो मध्ययुग मे पतन के गर्त मे गिरा हुआ था, अब फिर उठ खडा हुआ है, अपनी सारी इज्जत और वैभव के साथ। हम धन्य हो गए, हम कृतार्थ हो गए। हमारे अहोभाग्य जो आज हम जीवित है और यह अद्भुत सक्रान्ति, यह विराट परिवर्तन स्वय अपनी आखो देख रहे है। इतिहास हमारे सौभाग्य पर नाज करेगा, आने वाली पीढिया मीठी ईर्ष्या करेंगी। कैसे उनके धन्य भाग्य थे जो यह सब वे अपने जीते जी देख सके।

उसकी आखे सजल हो उठी, कण्ठ गद्गद हो गया, आनन्द के अतिरेक मे, उल्लास की उर्मियो मे। वह अपने आपको नही सम्भाल सका, आसू बहते रहे और वह उन्हे रूमाल से पोछता रहा। यह अच्छा था कि उसका चेहरा खिडकी के बाहर था और उसके सहयात्री उसे देख नही पाते थे।

उसे याद आया गत मध्यरात्रि का वह अविस्मरणीय प्रसग। गवर्नमेन्ट हाउस मे सत्ता के हस्तातरण का समारोह था और नये राज्यपाल तथा मन्त्रिमण्डल की शपथ-विधि। अन्तिम अग्रेज गवर्नर प्रस्थान कर रहा था, उसकी जगह एक सफेद टोपी वाला खादीधारी भारतीय राज्यपाल का स्थान लेने वाला था। पुराना मन्त्रिमण्डल समाप्त होकर नया मन्त्रिमण्डल स्वतन्त्र भारत की निष्ठा की शपथ ग्रहण करने वाला था। यूनियन जैक की जगह राष्ट्रीय तिरगा उस भव्य प्रासाद के प्रागण मे फहराने वाला था जहा आज तक केवल अग्रेजी शासको का ही आधिपत्य था।

एक स्थानीय पत्र के सम्पादक की हेसियत से उसे भी उस समारोह का निमन्त्रण था, और उसने जीवन मे पहली बार गवर्नमेन्ट हाउस के अहाते मे कदम रखा था।

ठीक मध्यरात्रि की घडी आ पहुची, एक तोप छूटी, यूनियन जेक उतरा, उसकी जगह राष्ट्रीय ध्वज चढा, पुलिस के बेड ने 'गॉड सेव द किग' की जगह वन्देमातरम् के स्वरो का उद्घोष किया, सिपाहियो ने और नये राज्यपाल ने ध्वज को सलामी दी और एक जुलूस के साथ दरबार हॉल मे प्रवेश किया जहा सभी अतिथि पहले से ही प्रतीक्षा मे बैठे थे। खद्दरधारी राज्यपाल के प्रवेश करते ही सारे भवन मे एकदम शान्ति छा गई, सबने हाथ जोडकर और सिर झुकाकर उनका आदरपूर्वक अभिवादन किया। हमारी स्वातन्त्र्य भावना का वही प्रतीक था। इसमे व्यक्ति की महत्ता की कोई बात नही थी, वह भावना की बात थी।

उसने सहसा देखा कि चीफ सेक्रेटरी जो अब तक सिर्फ अग्रेजी लिबास मे ही रहा करते थे आज खद्दर की काली शेरवानी, चूडीदार पैजामा और सफेद गाधी-टोपी लगाए समारोह का सचालन कर रहे हैं।

हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस एक अग्रेज थे पर उन्होने शपथ-विधि हिन्दी मे पूरी कराई। राज्यपाल ने अपनी टूटी-फूटी हिन्दी मे शपथ दोहराई, जिसके बाद मत्रि-मण्डल को शपथ उन्होने दिलवाई। चीफ सेक्रेटरी की कल्पकता के कारण पाच दक्षिणी ब्राह्मण भी त्रिपुण्ड लगाए, लाल जरी की शाल ओढे स्वतन्त्रता के आगमन मे वेदमन्त्रयुक्त पुष्पाजलि अर्पण करने के लिए उपस्थित थे। जिस राजभवन ने आज तक गोरे स्त्री-पुरुषो के नृत्य-सगीत या सभाषण की ध्वनिया ही सुनी थी, जहा मटन और गौ-मास के और शराब के जामो के दौर चला करते थे, जिससे मदहोश होकर रगरेलियो के फव्वारे छूटा करते थे, उसी भवन मे आज वेदो की मन्त्र-ध्वनि सुनाई पडी। काल-चक्र का कितना जबर्दस्त परिवर्तन था? कैसा अद्भुत, कैसा महान्, कैसा भाग्यशाली। मानो आखो के सामने ही इतिहास ने करवट ली और अपने विराट ग्रन्थ का एक अध्याय समाप्त किया, और दूसरे अध्याय के स्वर्ण पृष्ठ का उद्घाटन किया।

राजभवन का यह सब अलौकिक दृश्य देखकर एक सरकारी अधिकारी ने अत्यन्त प्रभावित होकर विचार व्यक्त किया कि आज का यह शुभ दिन जिन त्यागी एव तेजस्वी शहीदो के बलिदान के कारण नसीब हुआ, जिन महान् नेताओ

के त्याग एव वीरता के कारण यह देखने को मिला उनकी जूतिया बनाने के काम मे यदि मेरे शरीर की चमडी का उपयोग हो सका तो मै धन्य हो जाऊगा। भावनाओ का एक विचित्र उद्रेक एक बाढ की तरह फूट पडता था।

मध्यरात्रि का यह समारोह समाप्त होने के बाद जब वह घर लौटा तो रात के डेढ बजे थे। उसकी पत्नी राह देखती बैठी थी।

दोनो उठकर पूजागृह मे गए, कर्पूरदीप और अगरवत्ती जलाकर भगवान की आरती की, और जमीन पर माथा टेककर प्रार्थना की कि हमारी यह स्वतन्त्रता चिरस्थायी हो, हमारा भारत सुख और समृद्धि को प्राप्त हो, वह अपने घर मे तथा विश्व मे रामराज्य की स्थापना करने मे योग दे सके और स्वतन्त्र भारत अमर हो।

और पूजा के थोडी देर बाद ही वह स्टेशन के लिए निकल पडा था, क्योकि उसे प्रात काल की गाडी से किसी तहसील के एक स्थान पर जाना था जहा सुबह साढे आठ बजे उसीके हाथो ध्वज फहराने का समारभ होने वाला था। वह स्थान शहर से लगभग साठ मील दूर था और इसी पैसेजर गाडी मे गए बगैर वह वहा समय पर पहुच नही सकता था।

और वह उस पैसेजर गाडी के तीसरे दर्जे के डिब्बे के एक कोने मे बैठा इस प्रवास पर जा रहा था। पर उसकी भावनाए तरल थी, हृदय गद्‌गद था, शरीर का रोम-रोम पुलकित था मानो उसका समस्त व्यक्तित्व ही किसी दिव्य शक्ति के कारण अनुप्राणित हो उठा हो।

ठीक आठ बजे गाडी नियत स्टेशन पर पहुची।

भारत माता की जय! स्वतन्त्र भारत की जय! आजाद हिन्दुस्तान जिन्दाबाद!

दो-ढाई सौ लोगो का जमाव उसके स्वागत के लिए इकट्ठा हुआ था, और उत्साह के साथ गला फाड-फाडकर नारे लगा रहा था। बीसियो लोगो के हाथो मे राष्ट्रीय झण्डे थे, कुछ लोगो के हाथ मे फूलमालाए थी, गुच्छे थे। लोगो के आनन्द और उत्साह का ठिकाना नही था। उन्होने अत्यन्त प्रेम से उसका स्वागत किया।

झण्डा फहराने का कार्यक्रम पुलिस थाने के सामने वाले मैदान मे था, जहा सन् बयालीस की क्राति के दौरान मे जगन्नाथ नाम के एक स्वयसेवक को पुलिस

की गोली खाकर शहादत मिली थी। आज उस मैदान का नाम जगन्नाथ चौक रखा गया था।

कार्यक्रम के सयोजक महोदय ने अपने प्रारभिक भाषण मे कहा

'आज की इस मगल वेला मे हमारे ध्वजारोहण के लिए हमे श्रीमान धनजय बाबू जैसे महान देशभक्त मिले उसके लिए हम अपने आपको धन्य मानते है। वे 'युगान्तर' नामक तेजस्वी राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र के सम्पादक है जिसने इस प्रदेश मे क्रान्ति की ज्वाला को प्रज्ज्वलित रखने मे महत्वपूर्ण योग दिया है। वे सन् बयालीस की क्रान्ति मे साढे तीन वर्ष जेल भोग चुके है, और क्रान्ति-आन्दोलन के एक मूक एव गुप्त नेता के रूप मे जाने जाते है। हमारे नगर के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिसके कारण हमने उन्हे आज इस शुभ समारोह के लिए विशेष रूप से कष्ट दिया। शहीद जगन्नाथ की मृत्यु के बाद वे उसकी वृद्धा मा को सात्वना देने के लिए यहा तुरन्त दौडे आए थे, और उसके दुखी परिवार को उन्होने आर्थिक मदद पहुचाकर उसके दु ख को कम करने का प्रयत्न किया था। धनजय बाबू को राजनीति से कोई दिलचस्पी नही है पर वे उच्चकोटि के देशभक्त है जिनकी विधायक एव अदृश्य सेवाओ के कारण इस प्रदेश का क्रान्ति-आन्दोलन ताकत और प्रोत्साहन पाता रहा और अन्त मे चलकर सफल हुआ। देश के शहीदो के लिए उनके मन मे सबसे अधिक आस्था हे, और एक शहीद के मृत्यु-स्थल पर उन्हीके कर-कमलो द्वारा ध्वज चढाने मे विशेष औचित्य है, ऐसी हमारी धारणा हे। अब हम उनसे प्रार्थना करते है कि वे ध्वज-वदन का समारोह सम्पन्न करे।'

धनजय ने स्थानीय तिलक विद्यालय के बैण्ड की सलामी के साथ ध्वज फहराया। करतल-ध्वनि के साथ जनता ने उसका नमन किया, सबने मिलकर बडे जोश के साथ 'झण्डा ऊचा रहे हमारा' गीत गाया।

धनजय ने अपने भाषण मे कहा

'आज का स्वर्ण दिवस धन्यवाद और प्रार्थना का हे। हमारा कर्तव्य है कि हम जगन्नियन्ता परमेश्वर को अपने समस्त अन्त करण के भक्तिभाव से धन्यवाद दे जिसकी असीम अनुकपा के कारण हमे आज का दिन देखने को मिला। हम आज भगवान से प्रार्थना करते है कि वह हमारे देश को धन-धान्य और सुख-समृद्धि से पूरित करे ताकि हमारी जनता के शताब्दियो के कष्टो का परिमार्जन हो और उन्हे सुख-चैन के दिन नसीब हो। हमे आज यह भी प्रार्थना करनी है कि भगवान

हमारे नेता, हमारे महाप्राण महात्मा गाधी को दीर्घायु प्रदान करे, जिनके क्रान्तिकारी नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन के कारण हम इतने बडे शक्तिशाली साम्राज्य के पजे से अपनी मुक्ति पा सके। हमे उन असख्य शहीदो के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए, जिनके अतुल त्याग और बलिदान के कारण हमे आज की शुभ घडी का दर्शन हुआ। हमे कितने भी अच्छे दिन देखने को मिले, हम कितने ही सम्पन्न और खुशहाल क्यो न हो जाए, पर हमे इन महापुरुषो और उनके परिवारो का विस्मरण कदापि नही करना चाहिए, क्योकि इससे बढकर और कोई कृतघ्नता नही हो सकती। जो देश और जाति अपने पूर्वजो का तथा अपने उपकारकर्ताओ का स्मरण नही करती ह वह कदापि महान नही हो सकती।

'आज अग्रेज चले गए है और सत्ता हमारे हाथ मे, हमारे देशवासियो के हाथ मे, आपके हमारे हाथ मे आ गई है। यह सत्ता भारतीय जनता की सत्ता हे और हम लोग उसके न्यासी मात्र है, ट्रस्टी है। हमे दृढ प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम इस सत्ता का दुरुपयोग हर्गिज नही करेगे। उसके कारण मन मे मद या अहकार नही आने देंगे, सबके साथ न्याय और निष्पक्षता का बर्ताव करेंगे, सत्य-धर्म से और कर्तव्य के पथ से भ्रष्ट नही होगे और सदा-सर्वदा नम्र बनकर निष्ठापूर्वक लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही कार्य करते रहेगे। हम कभी नही भूलेंगे कि हम एक गौरवमय विशाल देश के निवासी हे जिसका पूर्वेतिहास उज्ज्वल और प्रेरणादायक है, जिसने गाधी के मार्ग पर चलकर सत्य और अहिसा का उपयोग करके स्वाधीनता प्राप्त कर ली, जो घटना सारे विश्व और मानवता के इतिहास मे बेजोड हे। इसका हम यही अर्थ लगाते है कि प्रारब्ध ने हमे ही इस मार्ग मे चलने के लिए प्रवृत्त किया है और इस मार्ग का सारे विश्व मे प्रचार एव प्रसार करना हमारा धर्म है, मिशन हे। हमारा दृढ विश्वास हे कि इसी मार्ग से विश्व की जटिल से जटिल समस्याए सुलझ सकती है, वह हिसा के दुश्चक्र मे मुक्त हो सकता है और हिंसात्मक युद्ध के विध्वस मे मानवता को तथा दुनिया को बचा सकता है। हमारी नम्र मान्यता है कि नियति ने शायद भारत के लिए यही कार्य सौपा है, यही सदेश दिया है कि जाओ, अपने देश मे तथा विश्व मे धर्म-चक्र का प्रवर्तन करो तथा धर्म-राज्य की स्थापना का ककण बाध लो ताकि सारी दुनियाँ मे ही ईश्वर का साम्राज्य उतर पडे।

'आज के इस शुभ दिवस पर हमे भगवान से प्रार्थना करनी है, शक्ति मागनी

है। क्योकि आज से हमारे देश की नई जीवन-यात्रा प्रारभ होती है। यह यात्रा कठिन है। इस यात्रा पर तो ईश्वर का आशीर्वाद ही हमारा सबसे बडा पाथेय बन सकता है ’

न जाने कितनी देर तक अस्खलित वाणी मे धनजय यही सब कहता गया और जनता एकाग्र चित्त से सुनती रही, बडे चाव से, बडी तन्मयता से, जैसे कोई गभीर वाणी उन्हे ललकारकर कर्तव्य-पथ पर चलने के लिए आवाहन कर रही हो।

आज के समारोह मे चार-पाच पुलिस के आदमी तथा स्थानीय सरकारी नौकर उपस्थित थे। खासकर पुलिस के सबसे बडे स्थानीय अधिकारी सर्किल साहब तो आज शक्कर की लकडी जैसे मीठे और मधुर बनकर दौड-धूप कर रहे थे। जिस जनता पर उन्होने क्रूर दमन नीति बरती थी उसीकी कृपा पाने के लिए आज वे विशेष रूप से कोशिश कर रहे थे। समारोह के बाद तो उन्होने धनजय को तथा नगर के आठ-दस प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओ को अपने घर चाय-पानी के लिए बुलाया और बडी शानदार पार्टी दे डाली। स्थानीय कार्यकर्ता जो आज से पहले सर्किल साहब को जल्लाद मानते थे, उनका यह परिवर्तित रूप देखकर दग रह गए थे। जिन सर्किल साहब के नाम का आतक उनके दिल पर छाया था—वे तो आज इतनी खुशामद और आवभगत मे लगे थे कि लोग दग रह जाते थे और अपने आपको बडा खुश-किस्मत समझ रहे थे। इन्ही लोगो का आग्रह धनजय नही टाल सका हालाकि किसी भी पुलिस-अफसर के यहा की चाय पीने मे उसे कोई दिलचस्पी नही थी। लेकिन स्थानीय कार्यकर्ताओ का ख्याल था कि यदि उन लोगो ने पुलिस के यहा जाकर चाय पी ली तो तमाम नगर को मालूम हो जाएगा कि जमाना सचमुच बदल गया है और स्वतत्रता-प्राप्ति का दृश्य रूप मे क्या मतलब होता है। कल तक यही पुलिस हमे दुतकार दिया करती थी, घुडकिया भरा करती थी, पर आज वही हमारी खुशामद कर रही है, हमारा सत्कार कर रही है।

पर न जाने क्यो धनजय के गले मे वह चाय अटक-अटक जाया करती थी। वह चाय पीना तो चाहता था, भाषण देने के बाद उसका गला उसीकी चाह मे उत्सुक था, पर पुलिस थाने की चाय ने उसे जरा भी स्वाद नही दिया। वह चाय पीने का नाटकमात्र करता रहा पर जाते समय वह उसे करीब-करीब वैसी की वैसी हालत मे छोडकर ही चलता बना। बोला, ‘मुझे गाडी पकडनी है क्योकि

तुरन्त शहर लौट जाना है, अग्रलेख जो लिखना है।'

एक बात जो उसे स्पष्ट याद रही थी, वह यह थी कि चाय पीने-पिलाने की आव-भगत के दौरान मे सर्किल साहब यदि बार-बार किसी चीज को दोहरा रह थे तो वह यह थी कि पुलिस की गोलीबारी के लिए वे जिम्मेदार नही थे, एस० डी० ओ० साहब थे जिन्होने बार-बार मना करने पर भी गोली चलाने का हुक्म दिया और बेचारे जगन्नाथ की नाहक मृत्यु हो गई। उन्होने तो यहा तक कहा कि मैने तो बल्कि जगन्नाथ की जान बचाने की हर तरह कोशिश की क्योकि वह बेचारा एक बेकसूर नौजवान था जो देश के काम आ सकता था, पर उनकी एक नही चली। गाधीजी का असर तो उनके परिवार मे बरसो से था और सबूत के नाते उन्होने जेब मे पीतल का एक लॉकेट निकाला जिसपर गाधीजी का फोटो लगा था। भला बताइए, उनकी सज्जनता और देशभक्ति के बारे मे शक करने की अब भी कोई गुजाइश थी ? उनके सारे हाव-भाव और बर्ताव-ब्यौहार रह-रहकर मानो यही सवाल पूछते थे।

२

मन्त्रिमण्डल के नेता पूरणचन्द्र जोशी देश के एक पुराने तपे हुए कार्यकर्ता थे। गाधीजी के सन् बीस के असहयोग आन्दोलन मे उन्होने सक्रिय हिस्सा लिया था और तीन महीने के लिए पिकेटिग के जुर्म मे जेल की चक्की पीसी थी। सन् तीस के सत्याग्रह मे उन्हे एक साल की सजा हुई थी। सन् बत्तीस के आन्दोलन मे गोलमेज परिषद से लौटने पर गाधीजी की गिरफ्तारी होने के बाद वे भी गिरफ्तार कर लिए गए थे और दो साल की कडी कैद की सजा पा चुके थे, पर छः महीने के बाद ही वे मेडिकल ग्राउड्स पर रिहा कर दिए गए थे। तब से उन्होने राजनीति की अपेक्षा हरिजन उद्धार के कार्यक्रम मे विशेष योग देना शुरू कर दिया। सन् पैतीस मे केन्द्रीय असेम्बली के चुनावो मे उनके दल की शानदार जीत हुई जिसका असर प्रान्तीय धारा सभाओ के चुनाव पर भी पडा। नतीजा यह हुआ कि प० पूरणचन्द्र जी की पार्टी बहुसख्या मे विजयी हो गई और वही उसके नेता चुने गए। प्रदेश का पहला राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल उन्हींके नेतृत्व मे स्थापित

हुआ। पण्डित पूरणचन्द्र की प्रतिष्ठा मे अचानक अद्भुत वृद्धि हुई और वे सारे भारत मे एक मजबूत और यशस्वी नेता के रूप मे माने जाने लगे। बैरिस्टर थे, अग्रेजी और हिन्दी अच्छी जानते थे, ऊचा, पूरा गोरा व्यक्तित्व था, शुभ्र खद्दर के वस्त्रो मे बहुत भले दीखते थे। उनके व्यक्तित्व का लोगो पर फौरन प्रभाव पडता था। वक्ता भी बहुत अच्छे थे, बिना रुके बोलते थे। बीस-बीस, पचीस-पचीस हजार की सभाओ को वे अपने भाषणो से मन्त्रमुग्ध कर दिया करते थे। गाधीजी के आन्दोलनो के कारण उन्हे कई बार अदालतो का बहिष्कार करना पडा, प्रेक्टिस छोडनी पडी। कभी-कभी ऐसे मौके भी आए कि घर मे फाके पडने की नौबत आ गई। पुश्तैनी जायदाद थी वह भी एक-एक कर बिकने लगी। पहले दो-एक मकान बिके, पीछे खेती की जमीन। यहा तक नौबत आई कि एकाध बार वे राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरे पर फटी कमीज पहने भी नजर आए। जनता के हृदय को उनका त्याग स्पर्श कर गया और उन्होने तुरन्त ही उसके दिल मे स्थान पा लिया। वे बडे प्रेम से उन्हे 'पूरन बाबू' कहकर पुकारते। राष्ट्रीय मान्यताओ मे भी वे अत्यन्त कट्टर थे। प्रखर देशभक्त थे, अग्रेजी शासन का बैर जैसे उनकी हड्डी-हड्डी मे समाया हुआ था। निर्भीक इतने कि खुले आम सभा मे बडे से बडे अग्रेजी अफसर की ऐसी मरम्मत करते, ऐसी धज्जिया उडाते कि सारी अग्रेज नौकरशाही थर्रा उठती थी। उस जमाने मे जब अग्रेजी हुकूमत की जडे मजबूत थी और उनके साम्राज्य मे जब सूरज नही डूबता था, यह बात बडी दिलेरी और बहादुरी की मानी जाती थी। अधिकाश पढे-लिखे लोग तो अग्रेजी सल्तनत और अग्रेज अफसरो की खुशामद करने मे ही जीवन की इतिश्री समझते थे। उन्ही जैसा लिबास पहनना, उन्हीके लहजे मे अग्रेजी बोलने की कोशिश करना, उन्ही जैसा मेज पर काटे-चमचो से खाना खाना और उन्ही जैसे प्यालो मे गोरे हुक्कामो की 'हेल्थ' के लिए शराब पीना और उन्ही जैसे ऐंग्लो-इण्डियन अखबार पढना, यही उन दिनो का फैशन था, सभ्यता की सबसे बडी निशानी थी। बाकी हिन्दुस्तानी तो गवार-देहाती थे, काले 'नेटिव' थे या प० पूरणचन्द्र जैसे बागी और गद्दार।

पर पूरणचन्द्र सचमुच बडे शूर थे और अपने धुन के पक्के। एक बात की जिद पकड ली तो फिर धरती फट जाए या आसमान टूट पडे तब भी वे पीछे हटने वाले नही थे। वे जब ललकार कर आम सभाओ मे दहाडते तो पुलिस के रिपोर्टर भी उनकी अक्षरश रिपोर्ट लेने मे घबडाते थे क्योकि उन्हे डर था कि अग्रेज

कप्तान यदि उसे पढेगा तो पहला गुस्सा वह पुलिस रिपोर्टर पर ही निकालेगा। पूरणचन्द्र पर प्रदेश को नाज था, और वे फौरन गाधीजी की नजरो पर भी चढ गए। उन्हे इसी प्रकार के नेताओ की जरूरत थी। यही उनकी सेना थी, जिसने अंग्रेजी साम्राज्य के छक्के छुडा दिए और भारत को स्वाधीनता दिलाई। जनता भरे हृदय से उनका स्वागत करती। उनकी अपूर्व लोकप्रियता के कारण कोई कल्पना भी नही कर सकता था कि यदि राष्ट्रीय दल का मन्त्रिमण्डल बना तो उन्हे छोडकर और कोई मुख्य मन्त्री बन सकता था।

सन् १९३७ मे वे ही मुख्य मन्त्री हुए तो उनकी प्रतिभा और प्रभाव मे चार चाद लग गए। जहा देखो वहा 'पण्डित पूरणचन्द्र की जय', 'पण्डित पूरणचन्द्र की जय' यही नारे सुनाई पडते थे। पर यह मन्त्रिमण्डल दो वर्ष भी नही टिका। दूसरा महायुद्ध छिड गया, अंग्रेजो ने बगैर राष्ट्रीय नेताओ से सलाह किए भारत को भी युद्ध मे झोक दिया। राष्ट्रीय नेताओ ने प्रतिकार के रूप मे अपने मन्त्रिमण्डलो को स्तीफा देने का आदेश दे दिया। पूरन बाबू ने भी तुरन्त त्यागपत्र दे दिया और गाधीजी के व्यक्तिगत सत्याग्रह मे शामिल हो गए।

छ महीने की सजा पाई तब बाहर निकले। राष्ट्रीय एव तेजस्वी विचारो के समाचारपत्र की स्थापना की, क्योकि पराधीन भारत मे राष्ट्रीय समाचारपत्र ही लोक-जागृति के साधन थे। आन्दोलन की आग को प्रज्ज्वलित करने का महान कार्य भी राष्ट्रीय पत्र ही किया करते थे। पर वे अपने समाचारपत्र को ठीक से जमा भी नही पाए थे कि गाधीजी ने सन् बयालीस का 'भारत छोडो' आन्दोलन छेड दिया। पण्डित पूरणचन्द्र जी के समाचारपत्र को सरकारी प्रकोप का भाजन बनना पडा, पाच हजार रुपये की जमानत दाखिल करनी पडी। इसी बीच पूरन बाबू गिरफ्तार हो गए और लम्बी मियाद तक जेल मे नजरबन्द कर दिए गए। उनपर इलजाम था कि वे ब्रिटिश सरकार के युद्ध-कार्य मे बाधा उपस्थित करते थे। इसलिए जाहिर था कि युद्ध की समाप्ति तक उनकी रिहाई असभव थी। युद्ध कितना चलता है यह कौन कह सकता था? पाच वर्ष चलता है कि सात वर्ष, भविष्यवक्ताओ को भी यह कहना कठिन था। इसलिए पूरणचन्द्र जी तथा उनके सभी साथियो ने आशा ही छोड दी कि जेल की चहारदीवारी से वे जल्दी बाहर निकल सकेंगे। उनमे से कुछ तो वयोवृद्ध थे। वे जिन्दा बाहर जा सकेंगे या नही यह कहना भी कठिन दिखाई देता था। इसलिए वे भजन-पूजन तथा निवृत्ति

के मार्ग मे लग गए। उनकी इच्छा यही थी कि वे जिन्दा रहे या मर जाए, कोई खास बात नही है। जो आया है सो तो जाएगा ही। पर कैसा अच्छा हो यदि मृत्यु के पहले वे यह समाचार सुन सके कि उनका देश स्वतन्त्र हो गया है! ऐसा सौभाग्य उन्हे यदि मिल जाए तो मृत्यु भी बडी मगलमयी हो उठेगी। पर ऐसी किस्मत क्या हम सचमुच लिखा कर लाए है?

पर पूरणचन्द्र और उनके साथियो को पाच वर्ष जेल मे नही सडना पडा। सन् पैतालीस मे ही ब्रिटिश शासन की नीति बदली। उनकी समझ मे यह बात आ गई कि भारत मे अब जो जागृति फैल चुकी है, उसकी आग फौजो मे भी पहुच गई है। सुभाष बाबू के नेतृत्व मे आजाद हिन्द सेना ने अग्रेजी सत्ता के खिलाफ जो बगावत की उससे उनकी आखे खुल गई। फौजी शासन की दृष्टि से यह घटना बडी गभीर थी। जिनके दिल ही बागी हो गए हो तो उनके जिस्म पर हुकूमत चलाकर क्या हासिल होगा? ऐसी सेना जिसका दिल और वफादारी अपने साथ नही है कब उलटकर हमे गड्ढे मे डाल देगी इसका क्या भरोसा? हा, ब्रिटिश फौजो के बल पर गोरे सिपाहियो की सगीनो के बूते हिन्दुस्तान पर और दस-पन्द्रह साल राज किया जा सकता है पर उससे जो कटुता और विद्वेष की भावना फैलेगी उससे किसका कल्याण होगा? अग्रेज जाति का भी नही। तो फिर ऐसी जोर-जबर्दस्ती से फायदा? इससे बेहतर यही होगा कि अपनी स्वेच्छा से, भद्रता से यहा से अपनी सत्ता हटा ली जाए और सद्भावना और मैत्री के वातावरण मे भारत सरकार की बागडोर राष्ट्रीय नेताओ के हाथ मे सौप दी जाए। उससे कम से कम द्वेष और प्रतिहिसा के दुश्चक्र से तो मुक्ति मिलेगी, और भारत की मित्रता पाकर ब्रिटिश कॉमनवेल्थ की सुरक्षा हो सकेगी। यह राष्ट्र-कुटुम्ब समता और सपूर्ण स्वायत्तता की बुनियाद पर ही कायम हो सकता है और उसका असर दुनिया के राष्ट्रो पर भी पडेगा। भारतीय साम्राज्य की समाप्ति के बाद ब्रिटिश सत्ता और प्रतिष्ठा को जो क्षति उठानी पडेगी उसकी बहुत कुछ पूर्ति इस बात मे हो सकेगी और इग्लैड के नैतिक प्रभाव पर विशेष विपरीत परिणाम नही होगा। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ सचमुच अत्यन्त चतुर और दूरदर्शी थे। समय की गति को पहचानने मे तथा उसके साथ समरस होने मे वे देर नही लगाते थे। इसलिए यह छोटा-सा द्वीप-समूह विश्व की राजनीति मे इतना असर रखता है। अग्रेजो के भारत छोडने के निर्णय ने देश मे एक नई लहर पैदा कर दी। लोग सन् बयालीस की क्रान्ति की

क्रूरता और बर्बरता को, यम-यन्त्रणाओ को भूलने की इच्छा करने लगे। आखिर जब हम स्वतन्त्र हो ही रहे है तो पुरानी कटुताओ को दिल मे समाए रखने मे क्या बुद्धिमानी है ? भूलो और माफ करो तथा अपने इतिहास का नया पन्ना खोलो, यही श्रेयस्कर है । और इस वातावरण मे भारत और ब्रिटेन की सच्ची मैत्री का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। दुनिया ने दातो तले उगली दबाकर इस अद्भुत क्रान्ति का अवलोकन किया। सत्ता के हस्तातरण की क्रिया अत्यन्त तेजी के साथ सपन्न कर दी गई।

स्वातन्त्र्य सूर्य को एक ही ग्रहण लगा, हिन्दू-मुस्लिम सघर्ष का । अन्त तक दोनो मे एकता प्रस्थापित नही हो सकी। घृणा और विद्वेष का भूत दिल और दिमाग पर सवार था। उसके सामने भीतर बैठने वाली मनुष्यता दब गई, उसकी आवाज क्षीण हो गई। सभी दलो ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि भारत को खण्डित करना होगा, अखण्ड भारत नही बन सकता। एक राष्ट्र हो या दो राष्ट्र, अग्रेज रुकने के लिए तैयार नही थे, इसलिए भारत का विभाजन कर वे दोनो के हाथ मे सार्वभौम सत्ता सौपकर चलते बने।

भारत खण्डित तो हुआ, विभाजन की विभीषिका से अभिशप्त भी हुआ, पर धन्य हो उठा। इतना बडा भूमि-खण्ड कभी एक झण्डे के नीचे इस देश के पुरातन इतिहास मे भी समाविष्ट नही हुआ था। भारतीय जनता आनन्द विभोर हो उठी। खुशी के मारे नाच उठी, पागल हो गई।

उसी वातावरण मे आई अगस्त सन् १९४७ की १४-१५ की मध्यरात्रि, जब गवर्नमेंट हाउस के समारोह मे सत्ता-हस्तान्तरण का कार्य सम्पन्न हुआ । इसके पहले भी पूरणचन्द्र जोशी का मन्त्रिमण्डल अधिकाररूढ था, पर वह स्वतन्त्र भारत के प्रदेश का मन्त्रिमण्डल नही था। इसलिए जाने के लिए उस मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दिया, और फिर दुबारा स्वतन्त्र भारत के अन्तर्गत उस प्रदेश के प्रथम मन्त्रिमण्डल के रूप मे शपथ ग्रहण की। पूरणचन्द्र अपने इस अपूर्व गौरव को देखकर गद्गद हो गए । सारी जनता उन्हे सर-आखो लेकर घूमा करती । स्वतन्त्रता की कल्पना उनके व्यक्तित्व मे साकार हो उठी । भारत की जनता स्वभाव से वीर-पूजक है, व्यक्ति-पूजक है। किसी न किसी व्यक्ति को अपने स्वप्नो और आदर्शो का प्रतीक बनाकर वह उसकी अभ्यर्थना करती है। इस श्रद्धा-भावना मे फिर वह उसके दुर्गुणो या कमजोरियो का विस्मरण कर देती है। प्रेम की तरह

उनकी श्रद्धा भी अन्धी होती है। उसीका लाभ पण्डित पूरणचन्द्र जोशी के व्यक्तित्व को मिला। उनकी शक्ति, सत्ता और प्रतिष्ठा मुगल बादशाहो से कम नही थी। जहा कही वे नजर उठाते, वहा उन्हे अपने ही नाम का बोलबाला सुनाई देता। बडे से बडे राजनीतिक कार्यकर्ता और सरकारी कर्मचारी उन्हीके चरण छूने मे अपनी धन्यता अनुभव करने लगे। वे कहते थे कि इसमे क्या हर्ज है? आखिर पण्डित जी बुजुर्ग हैं, हम सबके पिता के समान हैं। भारत की तो यही परम्परा रही है कि वह सदा-सर्वदा गुरुजनो का आदर करता आ रहा है। फिर हम उनके सामने झुक गए तो इसमे हमारा स्वार्थ कैसा, दोष कैसा?

पण्डित पूरणचन्द्र जब जेल के कैदी थे या ब्रिटिश शासन के जमाने मे उपेक्षित थे, अरण्यवासी थे, तब कितने लोग उनके चरण छूने और भारतीय परम्परा का निर्वाह करने आते थे, यह प्रश्न पूछने की और उसका उत्तर ढूढने की आज किसीको जरूरत न थी, फुर्सत भी नही थी। वर्तमान इतना जग मग है, इतना स्वर्णमय है कि भूतकाल के भूतो का और भविष्य की अनिश्चितताओ का विचार करने की आवश्यकता ही क्या है? आज तो पण्डित पूरणचन्द्र की ही चलती हे, और चलती का नाम गाडी है। सो इस समय तो इस लोक और परलोक का कल्याण साधने का एक मात्र नारा यही है कि 'बोलो पण्डित पूरणचन्द्र महाराज की जय।' सियाराम की जय और राधाकृष्ण की जय के साथ ही साथ यह नारा युग का प्रतीक बन गया। स्वय पण्डित पूरणचन्द्र जी ने कभी स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी कि द्वापर और त्रेतायुग मे भगवान रामचन्द्र और भगवान कृष्ण का जो सम्मान हुआ था उसीकी बराबरी का सम्मान उन्हे भी कलियुग मे प्राप्त होगा। सन् बयालीस की लम्बी जेलयात्रा के दौरान मे तो यह चिन्ता थी कि यह शरीर कभी जीवितावस्था मे जेल के बाहर जा सकेगा या नही। पर आज तो सजीव शरीर केवल बाहर ही नही है, सिहासन पर विराजमान है। भाग्य ने कहा से कहा पलटा खाया! स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को जब स्वय भगवान ही नही जानते तो मनुष्य की क्या कथा है?

३

गवर्नमेंट हाउस के मध्यरात्रि के समारोह मे प्रदेश के कतिपय प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। उसके निमन्त्रण पाने की भी भीतर ही भीतर बडी कोशिशे हुई। न जाने कहा-कहा के जोड-तोड मिलाए गए। पर आखिर कामयाबी हासिल हुई और श्री रघुनाथ सहाय तथा उनकी पत्नी श्रीमती तारामती देवी को भी निमन्त्रण-पत्र मिला। वे लोक-कर्म विभाग के डिप्टी सेक्रेटरी थे और बडे क्रियाशील व्यक्ति माने जाते थे। उनकी पत्नी लिपस्टिक और रेशम की साडी के बिना बात नही किया करती थी। असली सोने के गहने और मोतियो की माला के बिना वे बाहर नही निकलती। रघुनाथ सहाय यदि एक मामूली असिस्टेंट इजिनियर से डिप्टी सेक्रेटरी तक बढे तो इसका श्रेय श्रीमती सहाय को कम मात्रा मे नही था। अग्रेजी राज मे क्लब और डिनर पार्टियो मे वे बराबर अपने पति का साथ देती थी और अग्रेजी अधिकारियो से बडी निस्सकोच हो और खुलेपन से मिलती। परदे मे या अपनी घर-गृहस्थी मे लिप्त रहने वाली हिन्दुस्तानी स्त्रिया बैकवर्ड (पिछडी) है, इस देश के लोग डर्टी (गदे) है, इनमे कैरेक्टर (चरित्र) नही, सिविलिज़ेशन (सभ्यता) नही, इसी प्रकार के प्रगतिशील विचारो से वे अपने गोरे अधिकारियो तथा उनकी मेमो का मनोरजन किया करती थी। उनका जन्म केवल हिन्दुस्तान मे हुआ था पर लिबास, रहन-सहन, तहजीब से क्या मजाल कि वे अग्रेज़ो को न लजा दे! होली, दिवाली की बजाय क्रिसमस डे का उनके सामने अधिक महत्व था। बडे दिन की केक और ग्रीटिंग्स कार्ड को वे नियमित भेजा करती अपने अग्रेज या ईसाई आकाओ के यहा। एक बच्ची थी उसे कनवेण्ट मे पढने के लिए भेजती जो अग्रेजी छोडकर दूसरी भाषा बोल नही सकती थी। किताबे अग्रेजी साहित्य की ही रहा करती। अखबार और सचित्र पत्र केवल ऐंग्लो इडियनो के ही होते और दीवारो पर लेक डिस्ट्रिक्ट या टॉवर ऑफ लन्दन या टेम्स नदी के पुल के ही चित्र होते, या यूरोपियन आल्प्स के। यानी अग्रेजी राज की भावना और प्रकृति से वे इस तरह समरस हो गई थी जैसे दूध मे पानी। उनके पति उनका लोहा मानते थे और जानते थे कि उनकी पत्नी की मदद न होती तो उन्हे वह सामाजिक प्रतिष्ठा नही मिलती जो अब मिली है और जिसके बल पर वे अपने कई सहयोगी अधिकारियो को सुपरसीड कर (पीछे छोडकर)

डिप्टी सेक्रेटरी पद पर पहुच गए थे। वे बेचारे हारे हुए अधिकारी कहते कि हमारी इतनी खुशकिस्मती कहा कि हमे तारामती देवी जैसी पत्नी मिलती।

श्रीमती सहाय देखने-सुनने मे भी अच्छी थी। उनके काले-काले लम्बे बाल रेशम की तरह चमकते थे। विशाल आखे और सुन्दर दतपक्ति जो लाल-भड-कीली लिपस्टिक की पृष्ठभूमि पर मोतियो की लडी की तरह चमक उठती, बडी आकर्षक लगती। उनके चाहने वालो मे एक नया भरतीशुदा अग्रेज आई० सी० एस० असिस्टेंट कमिश्नर था जो कहता था कि श्रीमती सहाय मे जबर्दस्त आक-र्षण है। श्रीमती सहाय को इस प्रकार स्तुति से ज़रा भी सकोच न होता, बल्कि खुशी होती, गर्व होता। जो हिन्दुस्तानी औरत अग्रेजो को भी आकर्षित कर सके उसके सौन्दर्य के बारे मे और किस सर्टीफिकेट की जरूरत है?

मिस्टर और मिसेज सहाय ने तो स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी कि एक दिन अग्रेज भारत से चले जाएगे और हुकूमत उन 'नेटिव' हिन्दुस्तानियो के हाथ आ जाएगी जिनको कोसते-कोसते और हिकारत की नजरो से देखते उनकी तमाम जिन्दगी बीती थी। गाधी उनके लिए एक पागल था जो अपने खब्त के लिए लोगो को गुमराह करता था। उसका लिबास भी इतना असभ्य और अशोभनीय रहता था कि सभ्य समाज की स्त्रियो को उसके सामने जाने मे भी सकोच होता। और ये राष्ट्रीय आन्दोलन मे काम करने वाले और जेल जाने वाले नौजवान तो एकदम बेहूदा लोग है जो अग्रेजो द्वारा भारत मे निर्माण किए गए स्वर्ग मे अप-शकुन पैदा करते है। भला इनकी गीदड-भभकियो से या वानर-चेष्टाओ से कही स्वराज्य मिल सकता है?

पर वक्त का फेर देखिए कि एकदम अचित्य और अकल्पित घटना हो गई और स्वराज्य मिल गया। इसका सबसे बडा धक्का तो मिस्टर और मिसेज सहाय जैसे लोगो को लगा, पर वे दुनियादारी जानने वाले लोग थे, इसलिए विचलित नही हुए, हालाकि चिन्तित ज़रूर थे। फिर भी चतुर और व्यवहार-कुशल थे, जीवन-कला के तत्वो को घोलकर पी चुके थे, इसलिए उन्होने फौरन ही परि-स्थिति से रुख मिलाया, नई आबोहवा मे उसी तरह घुल-मिल गए जैसे कि अग्रेजो के ज़माने मे। स्वातत्र्य समारभ के दो दिन पहले ही उन्होने अपने शिष्टाचार का तन्त्र बदला और कपडे भी बदल डाले। एकदम खद्दर पर तो नही आए पर सूट और पतलून की जगह सफेद चूडीदार पैजामा और काली अचकन आ गई और

सिर पर सफेद टोपी। श्रीमती सहाय भी एक मामूली किन्तु शुभ्र साडी पहन-कर समारभ मे उपस्थित थी। लिपस्टिक भी गायब थी और उसकी जगह सादी वेश-भूषा और स्वाभाविक वर्ण ने ले ली थी। उन्हीकी कतार मे और भी अनेक उच्च सरकारी अधिकारियो की पत्निया बैठी थी। पर उनमे भी बनाव-सिगार का भडकीलापन नही था जो अग्रेजो के जमाने मे प्रदर्शित होता था। लेकिन जन्म भर की आदत कहा जाती ? सादगी आती तो कहा तक आती ? उनकी जो वेश-भूषा थी, और सौन्दर्य प्रसाधन का ढग था वह बरबस लोगो को आकर्षित कर लेता था, खासकर राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ और नेताओ को जो उस वातावरण से एकदम नावाकिफ थे। गाधीजी के नेतृत्व मे उन्हे सादगी का पाठ पढाया गया था। स्त्रियो और पुरुषो मे एक प्रकार का आत्मनियन्त्रण था, आचारो का और विचारो का। त्याग और कष्ट-सहन पर विशेष जोर था। मोटे खद्दर की साडी ही स्त्रियो का सबसे बडा आभूषण था। और इसमे उन्हे आन्तरिक सुख था, सतोष था। ऐसे लोगो की समाज मे प्रतिष्ठा थी, सरकारी तबको मे भी मान था। राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ के त्याग के लिए सबके मन मे आदर था और सरकारी अधिका-रियो मे ऐसे कई लोग थे जो गुप्त रूप से उन्हे अप्रत्यक्ष मदद भी किया करते थे।

पर आज तो समय ने ही पलटा खाया था और हिन्दुस्तान का नक्शा ही बदल रहा था, तमाम मान्यताए ही तब्दील हो रही थी। जो जेलखानो मे थे, वे सिहा-सन पर बैठ गए। जो विदेशी हुकूमत के द्वारा सताए जाते थे वे खुद सत्ता पर आरूढ हो गए। जो नौकरशाही उनपर जुल्म ढाती थी वह अब से उन्हीकी आश्रित हो गई, उनसे दबने लगी। जिन्होने केवल त्याग, मितव्ययिता, सादगी एव प्रखरता का जीवन देखा था उनके हाथ मे शासन की बागडोर आ गई। उसके साथ ही साथ आराम और सुख-भोग की सामग्री भी मिली। जेल मे तो एक छोटे-से 'सेल' मे रहना पडता, या बाहर दो-तीन कमरे वाले साधारण मकान मे, और अब तो एक-एक लाख की लागत से बने मिनिस्टरो के बगले रहने के लिए मिलने लगे, जिनके एक-एक कमरे मे उनका पहले का पूरा का पूरा घर समा जाता था। बिजली, पानी, फर्नीचर, चपरासी मुफ्त, यानी सरकार की ओर से। मिनिस्टरो को ताजी से ताजी घटनाओ से वाकिफ रहना चाहिए इसलिए रेडियो लगे, सेहत अच्छी रहनी चाहिए और गर्मी से परेशानी नही होनी चाहिए ताकि काम अच्छा हो इसलिए रेफ्रिजरेटर आए। अधिक से अधिक क्षेत्रो मे भ्रमण किया जा सके तथा

जनता से सम्पर्क रखा जा सके इसके लिए मोटरे आ गई। ड्राइवर और पेट्रोल सरकार देती थी। जनता से सम्पर्क रखे बिना भला उनके दुख-सुख की बात कैसे समझ मे आएगी, और उसका समाधान कैसे होगा ? बाग-बगीचे की रखवाली के लिए माली और दूसरे चाकर भी होने चाहिए क्योकि बगले की सजावट सुन्दर होनी चाहिए। फर्नीचर तो आला दर्जे का होना इसलिए जरूरी है कि यदि कोई विदेशी हमारे मन्त्री से मिलने के लिए आए तो उसपर कुछ रौब तो पडना चाहिए। स्वतत्रता के साथ विभाजन हुआ, मार-पीट हुई, दगे-फिसाद हुए, अराजकतावादी शक्तियो ने सिर उठाया, इसलिए जरूरी हुआ कि मन्त्रियो की सुरक्षा के लिए व्यक्तिगत बॉडीगार्ड चाहिए जो हमेशा बगल मे भरी पिस्तौल लिए साथ चलते रहे। बगले के आसपास भी सगीनधारी सिपाहियो का पहरा होना चाहिए, जो आने-जाने वालो को 'अटेन्शन' होकर सलाम करते रहे और मिनिस्टर साहब जब भी बरामदे मे या बगले के अहाते मे दिखे तो उन्हे भी चुस्त सलामी झाड दे। इससे मिनिस्टर की प्रतिष्ठा तो बढती है ही, पर उनके यहा आने-जाने वाले लोगो पर भी रौब जमता है, प्रभाव पडता है। यह ख्याल भी कम तसल्ली और खुशी नही देता कि अग्रेजी जमाने मे देहात मे प्रचार करते समय जिस पुलिस सिपाही को देखकर दिल मे, जरा-सा ही क्यो न हो, खौफ छा जाता, आज वही सामने खडा होकर अदब के साथ हमे सलाम कर रहा है और हम जरा-सी गर्दन झुकाकर उस-पर इनायत करते नजर आते है। चुनाव-क्षेत्रो से आने वाले कार्यकर्ताओ पर इसका बडा गहरा असर पडता है और वे अपने पुराने साथी के वैभव और शान-शौकत की कहानिया नमक-मिर्च लगाकर देहात-देहात मे पहुचाया करते है।

ऐसे लोगो को पहली बार स्वातत्र्य समारोह के दिन गवर्नमेट हाउस मे एक नई दुनिया दिखी, सरकारी अफसरो की खुशहाल दुनिया, जिनकी मोटी तनख्वाहें, निश्चिन्तता और सुरक्षा के वातावरण मे पले स्वस्थ शरीर, ऊचे दर्जे के कपडे तथा सभ्य एव साफ-सुथरी एव सुन्दर दिखनेवाली स्त्रिया थी।

इन सरकारी नौकरो ने भी एक नई दुनिया देखी, खद्दर पहने, सफेद टोपी लगाए दुबले-पतले आदमी, जिनके गालो पर झुर्रिया है, जो कष्ट-सहन की अग्नि-परीक्षा मे दग्ध है, जिनके बदन पर आजादी के जगे मैदान के जख्म लगे है, और जिन्होने जिन्दगी को एक सतत सघर्ष, एक सतत आदर्श और एक सतत रणक्षेत्र माना है, आराम और भोग-विलास की क्रीडास्थली नही। अग्रेजी शासको के अब

ये ही उत्तराधिकारी थे।

ये दोनो दुनियाए थी, एक दूसरे से अलग, बहुत दूर, जिन्होने एक दूसरे के बारे मे कही दूर से कुछ सुन रखा हो, पर प्रत्यक्ष आज ही देखा हो, गवर्नमेट हाउस के इस ऐतिहासिक समारोह मे जब वहा ध्वजस्तभ से यूनियन जैक को उतरना पडा था और राष्ट्रीय तिरगे झण्डे को अपनी शान की जगह लेनी पडी थी, और जब अग्रेजी सत्ता भारतीय सत्ता के पक्ष मे अवकाश ग्रहण कर रही थी, रगमच से विलीन हो रही थी।

रघुनाथ सहाय तथा उनकी पत्नी तारामती देवी ने, तथा उनकी श्रेणी के अनेक लोगो ने सुराजियो की उस नई दुनिया को देखा जो अब एक हकीकत बन गई थी।

सुराजियो ने भी अपने बगल मे बैठी सरकारी अधिकारियो की और अग्रेजी राज्य के पुराने आश्रितो और आधारस्तभो की इस चकाचौध और जगमगाहट से भरी दुनिया को देखा। उनमे थे मन्त्रिमण्डल के सबसे तरुण सदस्य मनमोहन बाबू, जिनकी आयु तीस वर्ष की थी, पर जो मन्त्रिमण्डल मे केवल इसीलिए लिए गए थे कि वे एक विशिष्ट जाति के प्रतिनिधि थे, जिनकी सख्या इस प्रदेश मे काफी मात्रा मे थी। उन्होने अपनी विस्फारित आखो से इस नई दुनिया की तरफ नजर डाली जो उन्होने किसी जमाने मे उपन्यासो मे पढी थी। और उन्हे लगा कि जिन्दगी सचमुच एक नियामत है, एक परम सौभाग्य है जिसमे शान, इज्जत, प्रभाव और आनन्द को छोडकर और कुछ नही है। ठीक भी तो है। आखिर हमने स्वतन्त्रता की लडाई मे क्या कम कुर्बानिया की हैं? हमीने क्या ठेका लिया है कि जिन्दगी भर मुफलिसी मे, दारिद्रय और अभाव मे सडते रहे। ईश्वर के दरबार मे न्याय तो होता ही है, और दुर्दिन भी आखिर बदलते ही है। यदि आज हमारी मुसीबतो और कष्टो का परिमार्जन हुआ है तो इसमे कौन-सी बेजा बात हुई?

रघुनाथ सहाय तथा उनकी पत्नी एकटक मनमोहन बाबू की तरफ देख रहे थे क्योकि उनके हाथ मे पी० डब्ल्यू० डी० महकमा आ गया था और वे स्वय उसी महकमे मे डिप्टी सेक्रेटरी थे। अब से तो वही उनके विधाता बनने वाले थे। उनकी एक-एक अदा पर वे फिदा थे। किस तरह वह शपथ लेने के लिए उठे, किस तरह मच तक आए, गवर्नर साहब के शब्दो को उन्होने किस स्पष्टता और लहजे से दुहराया, और कैसे मुसकराए— हर चीज़ निहायत शानदार और असरदार!

'देखो डियर, अपने मिनिस्टर साहब कैसे स्मार्ट (चुस्त) दिखते है?'—रघु-

नाथ बाबू ने अपनी पत्नी से कान लगाकर धीरे मे कहा।

'हा, डार्लिग, मे भी वही मार्क (लक्ष्य) कर रही थी। पर्सनेलिटी (व्यक्तित्व) भी अच्छी दिखती हे। सबमे कल्चर्ड (सुसस्कृत) तो वही दिखाई देते हैं।' तारामती देवी ने ताईद की।

सुराजियो की पक्ति मे मिनिस्टर मनमोहन बाबू की पत्नी भी बैठी थी जो जिन्दगी मे पहली बार इस प्रकार के समारोह मे सम्मिलित हुई थी। देहात मे रहती थी, एक अक्षर भी नही पढ पाई थी, और अपनी जन्म-जाति के सतत आभास के कारण कुछ हीनता की भावना लिए हुए थी। इसलिए वह करीब-करीब घूघट काढे ही बैठी थी, पर अपने पति के इस असाधारण उत्थान को देखकर फूली नही समाती थी।

४

धनजय जब अपने प्रवास से दोपहर को घर लौटा तब उसकी पत्नी गीता ने उसे अपने हाथ से काते हुए सूत की धोती का जोडा भेट करते हुए कहा

'हमारे देश के इतिहास मे आज यह स्वर्ण दिन हे, पर्वदिवस है। इसको सत्य-सृष्टि मे लाने के लिए तुम जैसे देशभक्तो ने अपना रक्त दिया, कष्ट सहन किया। उसीके सम्मान मे मेरा यह प्रेम-उपहार लो। मे तुम्हारी पत्नी हू इस भाग्य पर तो मै फूली नही समाती हू।'

'इसमे क्या तो मेरा रक्त-दान और क्या मेरा कष्ट-सहन? तीन-चार बरस जेल मे काटे और अग्रेजी सल्तनत के हाथो कुछ यन्त्रणाए सहन कर ली तो क्या हो गया? हमारे देश के लाखो स्त्री-पुरुषो ने मुझसे कई गुना अधिक त्याग किया हे। कई लोग फासी पर चढ गए हैं, हजारो लोगो ने कालेपानी मे जीवन सडा डाला, आराम और सुख का एक क्षण नही देखा। उनके सामने क्या मेरा त्याग, और क्या मेरी सेवाए? पर हा, इतना जरूर हे कि जब अपनी मातृभूमि के दास्य विमोचन का सग्राम चल रहा था उसमे मेरा भी, स्वल्प-सा ही क्यो न हो, योगदान रहा। यही मेरे लिए परम सन्तोष की वस्तु है। और तुमने उसका महत्व

दिया, यही मेरा सबसे बडा सुख है। तुम्हारी प्रेरणा नही होती, तुम्हारा हार्दिक सहयोग न मिलता तो भला मै यह सब कर पाता ?'

'इसमे कौन-सी बडी बात हो गई ? ऐसे आदर्शप्रिय, कर्तव्यनिष्ठ और चरित्रवान पति को पाकर भला कौन-सी स्त्री धन्य नही हो उठेगी ? और इन सबके अलावा तुम्हारा जो अनन्य प्रेम है उसकी बराबरी भला इन्द्र का सिहासन भी क्या करेगा ?' गीता ने कहा।

धनजय भीतर ही भीतर गद्‌गद हो गया। यह पहली बार नही है जब गीता ने इस प्रकार के विचार व्यक्त किए हो। आज उनके विवाह के दस वर्ष हो चुके है। और उससे भी पहले यानी शादी के सात-आठ साल पहले से उसने धनजय को देखा था, और धनजय ने उसे। सन् तीस के सत्याग्रह-आन्दोलन मे धनजय ने कॉलेज छोडा था और गीता तब स्कूल मे पढती थी, जुलूस के सामने की पक्ति मे अन्य बालिकाओ के साथ राष्ट्रीय गीत गाया करती थी

पहन लो केसरी बाना हुआ फर्मान है जारी।

वे महिला विद्यालय की बालिकाए ! उनकी प्रधानाध्यापिका स्वय राष्ट्रीय सग्राम मे कूद पडी थी। उन्हीके आदर्श को लेकर ये बालिकाए भी राष्ट्रीयता से ओतप्रोत थी। गीता का ग्रूप स्वय केसरी रग की साडी पहने रहता। वही उसकी कप्तान थी। उसका कण्ठ सुरीला था और वह अपने गीत मे हृदय की भावनाओ को इस कदर साकार कर दिया करती कि सुनकर लोग अभिभूत हो जाते। ऐसा लगता जैसे गीता स्वय राष्ट्रीयता की प्रतिमूर्ति हो।

धनजय उसके इस दिव्य स्वरूप को दूर से ही निहारा करता, उससे बडा प्रभावित होता। ऐसा लगता जैसे यह बालिका औरो से भिन्न है। देशभक्ति, आदर्श और महत्वाकाक्षा का यह एक स्फुल्लिग है। मन ही मन उसे बडा कौतुक हुआ, अनायास उसकी ओर आकर्षण भी हुआ। पर दूर ही दूर से।

धनजय कॉलेज छोडकर आया था और राष्ट्रीय आन्दोलन मे कूद पडा था। उस समय नगर के मुख्य-मुख्य नेता और कार्यकर्ता गिरफ्तार हो चुके थे। बाहर कार्यकर्ताओ की कमी थी। सो उसके हाथ मे ही नगर के आन्दोलन की बागडोर थमा दी गई। इस ज़िम्मेदारी से वह पहले तो घबडाया— उन्नीस-बीस साल का लडका जो ठहरा, पर स्वभाव से ही वह ज़िम्मेदारियो से मुह मोडना नही जानता था। बुद्धिमान तो था ही, वक्तृत्व भी अच्छा था, व्यक्तित्व भी असरदार था,

फौरन नेतृत्व के पद पर शोभने लगा। गीता ने उसे इस नये नेता के रूप मे ही देखा, एक कर्तृत्ववान युवक जो किसी महान ध्येय को लेकर अपना कैरियर (भविष्य) खतरे मे डालकर इस सग्राम-ज्वाला मे कूद पडा है।

गीता की आयु उस समय चौदह-पन्द्रह साल की होगी पर वह भी बडी बुद्धिमान लडकी थी। वह देखती थी कि उसके चचेरे-ममेरे भाई और उनके मित्र जो धनजय की उम्र के ही थे, हमेशा हॉकी-क्रिकेट या सिनेमा को छोडकर और किसी बात मे दिलचस्पी नही लेते थे, नफीस कपडा और नफीस खाने के लिए लालायित रहा करते थे। हल्की और सस्ती कथा-कहानियो के पढने मे और छुट्टी के दिन सारी दोपहर सोने मे बिता देते थे—उन सबसे धनजय कितना भिन्न था ! जैसे वह इन सबसे अलग किसी और साचे मे ढला हो।

यही भिन्नत्व गीता के हृदय को स्पर्श कर गया और वह भी धनजय के प्रति अनायास ही एक सूक्ष्म आकर्षण अनुभव करने लगी। उस आकर्षण के आधार मे मूलत आदरबुद्धि थी, यही धारणा उसकी कई दिनो तक बनी रही। पर ब्राह्म मुहूर्त का अन्धकार धीरे-धीरे प्रभात के प्रकाश मे अनजाने और अनायास कैसे परिवर्तित हो जाता है ? ठीक उसी तरह इस आदर ने स्नेह का, और स्नेह ने प्रीति का रूप ग्रहण कर लिया, इसका स्वय गीता को भी पता नही लगा।

गीता को पहली बार पता तब चला जब सत्याग्रह-सग्राम की घटनाओ के सात-आठ वर्षों बाद धनजय की बहिन ने, जो गीता के साथ पढती थी एक दिन अकस्मात पूछ डाला

'क्या तुम मेरी भाभी बनोगी गीता ?'

गीता हडबडा गई, अकचका गई। सारा शरीर पसीने से तर हो उठा—कम्पायमान हो गया। समूचे शरीर का रोम-रोम खिल उठा। बोली, 'ऐसा कैसे पूछती है री ? यह सवाल तो पहले उनसे पूछने का है।' गीता अपना साहस बटोरकर बोली

'भैया के दिल मे तो जाने कब से तू छिपकर जा बैठी है। तेरे मन मे क्या है सो बता।'

गीता उससे लिपट पडी, उसकी आखो मे आसू आ गए। वह गद्‌गद होकर बोली

'भाग्य मेरे सिर पर इस तरह अमृत वर्षा करेगा, ऐसी स्वप्न मे भी कल्पना

नही थी बहिन। मै तो समझती थी कि उनके बारे मे विचार तक करना चन्द्रमा पाने की इच्छा रखने जैसा है। पर आज तो स्वय चन्द्रमा ही मेरे हृदयाकाश मे खिल उठा है। मै तो तर गई, दीदी।'

और इस तरह गीता और धनजय का वरण हुआ। पर उनके विवाह के पहले एक दुर्घटना हुई।

वह बहिन, जिसके कारण इन दोनो की भावनाए इतनी साकार हुई, एकाएक चल बसी। एक साधारण-सी बीमारी थी, बाद मे चलकर वह तीन-चार महीने को लम्बा गई, और उसीमे उसका अन्त हो गया। धनजय की वह पीठ की बहिन थी। उसे गहरा धक्का लगा। जीवन मे पहली मृत्यु अपनी आखो के सामने देखी और वह भी ऐसे प्रिय जन की जो अपने कलेजे का टुकडा हो।

देखते-देखते वह जा रही है और फूट-फूटकर रोने के सिवा और कुछ करते नही बनता है। ऐसी असहायता, ऐसी बेबसी, ऐसी दर्दनाक पीडा!

वह चली गई पर धनजय को गीता दे गई, और गीता को धनजय! दोनो के मिलन मे उस अभागी बहिन की याद ने एक प्रकार का दिव्यत्व ला दिया, एक प्रकार की अपूर्व पवित्रता!

गीता के सगे-सम्बन्धियो ने उसे बहुत समझाया कि तू इस लडके मे शादी मत कर, यह तो हमेशा अग्रेजी हुकूमत से लडता ही रहता है। जेल जाएगा, गरीबी भोगेगा, भूखो मरेगा—इसके साथ तुझे दुख के सिवा और कुछ मिलने वाला नही है।

गीता के सगे-सम्बन्धी अधिकतर सरकारी कर्मचारी थे या अग्रेजी शासन के दबदबे से प्रभावित थे। उन दिनो तो वह दबदबा बडा जमा हुआ था। चन्द्र और सूर्य की तरह भारत मे अग्रेजी राज्य अटल है, ऐसी ही उन लोगो की धारणा थी। जीवन की जितनी भी सुख-समृद्धि है वह ब्रिटिश सरकार के आश्रय और सहयोग मात्र से मिल सकती है, उसके बाहर जो है वह है मुफलिसी, गरीबी, अप्रतिष्ठा और अपमान, पीडा और लाछन! यह धारणा प्राय सभी पढे-लिखे लोगो मे एक अटूट विश्वास की तरह घर कर गई थी।

उनका सोचना सही हो या गलत, पर उनके दिल मे गीता के कल्याण को छोडकर और कोई भावना नही थी।

पर गीता थी कि उसकी कल्याण की कल्पना इन सबसे एकदम भिन्न थी,

इसलिए उसने बात तो सबकी सुनी, पर गुनी अपने मन की। निरादर किसीका नही किया, लडाई-झगडा भी नही किया। केवल उनके चरणो पर सिर रखकर बोली, 'गुरुजनो के आशीर्वाद से भला क्या नही हो सकता ? सावित्री को उसका पति वापस मिल गया, तो क्या आप लोगो के आशीर्वाद से मुझे मेरा सुख और मागल्य नही मिलेगा ? बस, आप मुझपर इतनी ही दया करे और अपने अन्त करण से मुझे आशीर्वाद दे, मुझे सब कुछ मिल जाएगा।'

वे लोग जानते थे कि गीता कितनी दृढ निश्चयी है। उन्होने उसे अन्त करण से आशीर्वाद दिया

'अखण्ड सौभाग्यवती भव।'

और गीता उठी और धनजय के जीवन मे विलीन होने के लिए निकल पडी। तन से, मन से, धन से—जैसे प्राणो से प्राण मिले, ज्योति से ज्योति मिली।

धनजय धन्य हो उठा। जैसे वह दुनिया की सार्वभौम सत्ता पा गया। जानता था कि गीता असाधारण नारी है। और वही उसकी जीवन-सगिनी है, उसकी प्रेरणा है, उसकी शक्ति का स्रोत है। वह साथ है तो विश्व का सारा सौन्दर्य, विश्व का सारा सुख और पुरुषार्थ उसके साथ है। पुरुषार्थ बाह्य परिस्थितियो और उपकरणो पर अवलम्बित नही रहता। धन सम्पदा, शस्त्रास्त्र या सत्ताबल पर वह आधारित नही हे। वह तो अपने मन की आन्तरिक प्रेरणा और शक्ति पर अवलम्बित रहता है। मन की दुर्दम्य अपराजेय इच्छाशक्ति ही समस्त पुरुषार्थ और कर्तृत्व की आधारशिला हे। जो मन के पिण्ड मे उठता है वही ब्रह्माण्ड मे छा जाता हे। आदि पुरुष ने कहा, मै एक हू, अनेक बनना चाहता हू। और वह अनेक बन गया। यह उसकी विराट इच्छाशक्ति की लीला मात्र है। पुरुष और प्रकृति के सयोग से ही तो इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। वह, धनजय, पुरुष हे, गीता प्रकृति हे। क्या उनके सयोग से, सयुक्त मानव का, उनके अपने विश्व का निर्माण नही होगा ? ऐसे विश्व का, जिसमे भारत स्वतत्र हो, मानव मानव की तरह प्रतिष्ठा पाए, और विश्व मे भारतीय सस्कृति का प्रभाव फैले और विश्व मे रामराज्य का स्वप्न साकार हो ? इस विशाल स्वप्न के सामने, इस दिगन्तव्यापी ध्येय की पृष्ठभूमि मे गरीबी, व्यक्तिगत प्रताडना, कारावास और लाछन से क्या बनता-बिगडता है ?

धनजय ने कभी नही माना कि इन बातो से कभी भी, कुछ भी बनता-

बिगडता हो ।

और गीता ? उसे तो लगा कि जीवन की इस भव्यता और असीमता मे उसे चाहने या मागने को क्या रह जाता है ?

इसलिए वह धनजय के आजानबाहुओ मे इस तरह समा गई जैसे सागर मे सरिता । जैसे यात्री अपने तीर्थ को पहुच गया, भक्त ने इष्टदेव को पा लिया, और अब विराट सुख और शाति को छोडकर और कुछ नही बच रहा ।

'आज आनन्द का दिवस तो है गीता, पर जाने क्यो मेरा मन रह-रहकर नोआखाली मे जाकर अटक जाता है जहा गाधीजी पीडितो और निराश्रितो के बीच मे घूम रहे है,' धनजय ने कहा । 'दिल्ली मे रोशनी है, आतिशबाजी है, वडे-बडे जुलूस और भोज चल रहे है, क्योकि आज स्वाधीनता का पर्व है । पर गाधी वहा नही है, उसका मन इस मौज-शौक मे रमता नही हे । असल मे भारत स्वतन्त्र हुआ तो मुख्यत गाधी के कारण ही । पर वह उसका यश लेने के लिए राजधानी मे नही है । त्रस्त और सतप्त मानवता का यह मसीहा पैदल घूम रहा है, उन अभागे भाई-बहनो के बीच मे जिनके घर-बार उजड गए है, सगे-सम्बन्धी मारे गए है, विभाजन की राक्षसी विभीषिका मे, खण्डित भारत की शोणित धारा मे । मानो वह कह रहा है कि इस आनन्द और उल्लास मे पागल होने का वक्त नही है, कर्तव्य की प्रखरता को मत भूलो । रह-रहकर गीता, मुझे गाधी की ही याद बेचैन कर रही है ।'

रात के ग्यारह बज चुके थे, और दिन भर के कार्यक्रमो की धूमधाम के बाद थके हुए शरीरो को शय्या पर टिकाकर वे, धनजय और गीता, सोने का प्रयत्न कर रहे थे । पर जाहिर था कि धनजय का मन अशान्त था अस्वस्थ था ।

यो धनजय सचमुच बहुत थक गया था । पिछली रात का वह जागरण, मध्य-रात्रि का राजभवन का सत्ता के हस्तातरण का समारोह ! उसके बाद वह साठ मील की यात्रा और भाषण, तथा उतनी ही दूरी का वापसी प्रवास । घर आने के बाद अग्रलेख लिखना और शहर के कई स्थानीय कार्यक्रम । और मिलने-जुलने वालो का ताता, बधाई और धन्यवाद की झडी ! इन सबमे सारा दिन बीत गया—एक क्षण की फुर्सत नही मिली । और दिन होता तो इतनी मेहनत के बाद बिस्तर पर पीठ टिकाते ही उसे नीद आ जाती । पर आज उसकी भावनाए विच-लित हो गई थी । आनन्द की, गर्व की, कृतज्ञता की, भगवान के प्रति धन्यता की,

प्रार्थना की।

और अब यह गाधी की याद !

गीता समझ गई, आज हृदयमथन की रात्रि है, और धनजय की नीद धोखा दिए बिना रहेगी नही। वह एक भावुक युवक है, उसका हृदय अत्यन्त सवेदनशील और कोमल है, घटनाओ और विचारो की प्रतिक्रिया उसके हृदय पर इतनी उत्कटता और तीव्रता से होती है जैसे वह भूकप के स्पन्दन को भापनेवाला यन्त्र हो। इसलिए अक्सर उसके स्नायुओ पर एक प्रकार का तनाव ही रहता है। विचित्र है यह धनजय का स्वभाव। अपने व्यक्तिगत प्रश्नो और सुखो के बारे मे एकदम बेलाग और अछूता-सा, पर समष्टि, देश या मानवता के प्रश्नो मे इतना उलझा हुआ, इतना समरस जैसे वे सब उसके हृदय के प्रागण मे ही बीत रही हो। वह किस मकान मे रहता है, किस प्रकार का भोजन करता है, किस प्रकार के कपडे पहनता है इसके प्रति उसे कोई विशेष दिलचस्पी नही है। एक झोपडी ही सही, पर वहा यदि गीता साथ है और सम्मान की ज़िन्दगी है तो वही उसके लिए नदनवन है। खाने के लिए गीता के हाथ से पककर जो सामने आ गया वही अमृत है। और खद्दर का फटा-मोटा जो भी कपडा मिल गया वही उसका अलकार और आभूषण है, बशर्ते कि वह शुभ्र हो। समाचारपत्र का सपादक है इसलिए लिखने-पढने की सामग्री तो चाहिए ही, जो उसे आसानी से मयस्सर हो जाती थी। बस, इसके अलावा उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताए और कुछ नही है। पर हा, समाज का जरा-सा भी अन्याय, देश की कोई समस्या, कोई राष्ट्रीय अपमान या मानवता का पतन, ये ऐसी बाते थी जो उसे जड से हिला देती। वह उनसे इतना बेचैन हो जाता, इतना छटपटाता कि शुरू-शुरू मे तो गीता समझ न पाती, असमजस मे पड जाती। आखिर दुनिया मे यह सब जो हो रहा है इसकी जिम्मेदारी अकेले धनजय पर ही कैसे है?

पर धीरे-धीरे वह उसका स्वभाव जान गई, उसकी आत्मा की छटपटाहट का मर्म समझ गई। सुसस्कृत भारतीय समाज मे हमेशा ही एक वर्ग ऐसा रहता था जो अपने उदर पोषण की चिन्ताओ से मुक्त रहकर हमेशा समाज के कल्याण और मागल्य की बात ही सोचा करता था। समाज को धारण करने वाला नीति-तत्व जो धर्म है उसका वह प्रतीक था। समाज के ज्ञान को, चिन्तन को, आचरण को विशिष्ट दिशा देना उसका काम था। समाज मे दुर्व्यवस्था न हो, अनाचार न फैले, और

उसपर अत्याचार न हो, न राजा की ओर से न प्रजा की ओर मे, यह देखना भी इसी वर्ग का काम था। उसका रहन-सहन अत्यन्त सरल था सादा जीवन और ऊचे चिन्तन का प्रतीक था। उसकी जीवन की आवश्यकताए बडी परिमित थी, जो समाज की ओर से अनायास ही पूरी हो जाती थी, मधुकरी के रूप मे हो या दक्षिणा के रूप मे। वह स्वय मुह से किसीसे कुछ मागता नही था। वह तो इस श्रद्धा से काम करता था कि समाज के कल्याण की चिन्तना और सेवा मात्र उसका धर्म है, और यदि वह अपने धर्म का पालन करता रहा तो उसे कभी भी आजीविका की विवचना नही होगी। उसकी आस्था सशक्त थी, सबल थी और वह कभी भी अकारथ नही गई, अपूर्ण नही रही।

राजा दशरथ के यहा वसिष्ठ मुनि रहा करते थे, या महाराजा जनक के यहा याज्ञवल्क्य ऋषि थे वे इसी वर्ग के प्रतिनिधि थे। वन मे रहा करते थे। कद-मूल-फल पर जीते थे, तपस्या करते थे, आत्मज्ञान की साधना करते थे, और राजा को अपनी स्पष्ट और निर्भीक सलाह दिया करते थे ताकि उसके हाथ से दुर्नीति न हो और धर्म-चक्र का प्रवर्तन व्यवस्थित रूप से होता रहे। राजाओ पर इन धर्म-गुरुओ का नैतिक अकुश था, जिसका वे आदर करते थे। धर्म समाज का सर्वश्रेष्ठ तत्व है, उसीसे अर्थ की तथा अन्य कामनाओ की प्राप्ति होती है। ऐसा उनका चरम विश्वास था। इसलिए धर्म के सामने झुकने मे, धर्म-गुरुओ के चरणो मे नत-मस्तक होने मे वे अपना गौरव समझते थे। राजा क्षात्र तत्व का प्रतीक था तो धर्म-गुरु ब्रह्म तत्व का। इन दोनो मे समन्वय हो, सघर्ष न हो, और दोनो एक दूसरे की सगति मे चले तो समाज समुन्नत और सुसस्कृत हो सकता है, ऐसी धारणा थी। यजुर्वेद का ऋषि कहता है, 'यत्र ब्रह्म च क्षत्र च सम्यञ्चौ चरत सह। तँल्लोक पुण्य प्रज्ञेष यत्र देवा सहाग्निना।' अर्थात् मै उस विश्व को जानना चाहता हू जहा अध्यात्म तत्व (ब्रह्म) तथा भौतिक एव शासकीय तत्व (क्षत्र) परस्पर सहयोग से रहते है, और जहा अग्नि के साथ देवताओ का निवास रहता है।'

जब-जब इन तत्वो मे सतुलन रहा है तब-तब समाज आगे बढा है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जमाने के राज्य को रामराज्य कहा गया है और उस राज्य की व्यवस्था आदर्श राज्य-व्यवस्था मानी गई है। गाधीजी ने विश्वशाति की कल्पना रखी तो उसका आधार भी रामराज्य ही था। उसका कारण यही है कि वहा

राजा धर्म के शासन को मानता था। जब राजा स्वय धर्म-मार्तण्ड बन जाता था और धर्म-सत्ता को अपने आप मे केन्द्रित कर लेता था तब समाज मे अनाचार फैल जाता था और उसके स्थायित्व मे न्यूनता आ जाती थी।

पर यह धर्म की कल्पना धार्मिक पाखण्ड, कट्टरता, अन्धश्रद्धा या सकीर्णता से भिन्न थी। कालान्तर से अच्छे तत्वो मे भी बुराई आ जाती है। मानव का स्वभाव ढलान की तरफ जाने का है, फिसलन से उसे बडा आकर्षण होता है, हालाकि वह हमेशा गिरकर भी उठने की कोशिश करता रहता है। इसलिए स्वार्थ के कारण हो या कर्तव्य-भ्रष्टता के कारण, जिस प्रकार जीवन के अन्य क्षेत्रो मे भ्रष्टता आ गई उसी प्रकार धर्म के क्षेत्र मे भी आ गई। पर उसके कारण धर्म की मूल भावना को कोई धक्का नही लगता। वह तो एक व्यापक प्रेरणा है जो जीवन को श्रद्धा और शक्ति प्रदान करती है, जो जीवन को दिशा और आदर्श देती है, एक ऐसी चेतना देती हे जिसके नाम पर मर मिटने के लिए भी आदमी तैयार हो जाता है, जो हृदय और आत्मा को गहराई तक स्पर्श करती है, प्रभावित करती है। उसके कारण मानव को अपने भीतर बसने वाले दानव का दलन कर देवत्व की ओर जाने की प्रेरणा मिलती है। चारित्र्य बल का वह एक बडा आधार है।

इस प्रकार के धर्म का प्रवर्तन करने वाले लोग हमेशा हर युग मे रहे है। कभी उनकी आवाज क्षीण हो जाती है तो कभी बुलन्द रहती है। वे व्यक्तिनिष्ठ नही होते, समाजनिष्ठ होते है, आत्मरत नही रहते, पर-रत रहते है, जो अपना भला-बुरा नही सोचते, औरो का भला-बुरा सोचते रहते है। उनकी सख्या भले ही कम हो, उनकी वाणी भी दब जाती हो, पर उनका अस्तित्व जरूर रहता है।

गीता मानती थी कि धनजय इन्ही व्यक्तियो की परम्परा का व्यक्ति है। वह उसका स्वभाव है, प्रकृति है। और मनुष्य की मूल प्रकृति को कह-सुनकर बदला नही जा सकता। वह तो गगा के प्रवाह की तरह अखण्ड है, अपराजेय और अपरि-वर्तनीय हे। उसको तो वह जैसा हे उसी तरह स्वीकार कर लेने मे सार हे। गीता ने भी यही माना था।

पर धनजय के इसी स्वभाव का उसे अद्भुत आकर्षण था। वह अक्सर भाव-नाओ या विचारो की दुनिया मे रहता। कई बार जड भौतिक जगत की बाते उसे छू ही नही पाती जैसे वह बाहरी दुनिया से अलग कही अपने अन्तर्जगत मे रहता हो। सामाजिक आन्दोलनो की, विचारो के प्रवाहो की, राष्ट्रीय जीवन की उठती-

गिरती लहरो की उसके हृदय ओर मस्तिष्क पर तुरन्त प्रतिक्रिया होती। सफलता और विफलता, आशा और निराशा, आनन्द और उदासी, उत्साह और हताशा, जो जिस समय उसे अनुभव होता वह तुरन्त उसके चेहरे पर, व्यक्तित्व मे दिखाई पड जाता था। एक तरह से वह बच्चो की तरह निर्मल और अकृत्रिम था। दुनिया के छल-छद्म मानो उसे स्पर्श ही नही कर गए। उसे कोई बनाना चाहे तो फौरन बना सकता हे। वह सबकी नीयत पर विश्वास करके चलता था, जब तक उसका अनुभव विपरीत न हो। मित्रो का सच्चा मित्र था, पर शत्रुओ का सच्चा शत्रु नही था क्योकि वह शत्रु व्यक्तियो का नही सिद्धान्तो का हो जाता था।

पर एक बात थी। जब कभी उसे अनुभव होता कि जिसपर उसने समूचा विश्वास कर अपने हृदय का समस्त स्नेह और श्रद्धा समर्पित की, उसीने उसका विश्वासघात किया, तो फिर वह कुसुम-सा कोमल व्यक्ति वज्र जेसा कठोर हो जाता था। इस आघात से पहले तो उसका हृदय विदीर्ण हो जाता, भयकर निराशा और विफलता होती, शरीर भी लडखडा उठता, पर ऐसा लगता कि उसके भीतर न जाने कौन-सी सुप्त जीवन-शक्ति थी, अथाह, अज्ञेय, जो न जाने कहा से आकर उसे अदम्य साहस और असीम निर्भयता प्रदान कर देती जिसके सामने लगता कि पहाड भी हिल उठे, और धरती भी कप जाए। लोग उससे प्रेम करते, उसे आदर देते, पर भीतर ही भीतर उससे भय भी खाते।

गीता इसी प्रकार के धनजय पर फिदा है, उसके लिए सर्वस्व समर्पण करने के लिए हमेशा तैयार रहती है। धनजय मे प्रतिभा है, व्यक्तित्व हे, एक अद्भुत तेज और पराक्रम है जो सूरज की प्रभा से टक्कर लेता-सा नजर आता हे। और यही गीता धनजय की सबसे बडी कमजोरी हे। इतना भावुक, इतना कोमल व्यक्ति नारी के प्रेम के बिना जीवित रह सकता था ?

गीता उसकी सखी थी, प्रेयसी थी, मन्त्री थी, माता थी। गीता जानती थी कि वह यदि उसकी सार-सभाल के लिए पास न होती तो धनजय की जीवन-नैया कठोर दुनिया की छोटी-सी चट्टान पर टकरा कर न जाने कब छिन्न-विच्छिन्न हो जाती।

वह धनजय के लिए आवश्यक है। उसके बिना धनजय पूर्ण नही है, यह वह जानती है।

धनजय भी यही मानता है। अपने इस विचित्र सघर्षमय जीवन मे गीता का

साथ न होता तो वह पागल हो जाता, लडखडा जाता, हार जाता, ऐसी उसकी निश्चित धारणा थी।

अपमान हो या अन्तर्व्यथा हो, पराजय हो या विफलता हो, रात्रि की नीरवता मे जब वह गीता के वक्ष मे अपना सिर छिपाकर बच्चो की तरह रो नही लेता था और अपनी भावनाओ के विराट आवेग को बहा नही डालता था तब तक उसका मन शात नही होता।

यह गीता ही उसकी सबसे बडी कमज़ोरी थी, और सबसे बडी शक्ति थी।

दिल्ली मे स्वतत्रता के उपलक्ष्य मे आतिशबाजी हो रही है, भोज उडाए जा रहे हैं, यहा भी उसके नगर मे उत्सव मनाया जा रहा है, पर इसमे उसका मन नही रमा।

उसका मन दौड-दौडकर गाधी के पास जाता है जो लाठी उठाकर, पैदल प्रवास मे, नोआखाली के अरण्यको मे, मसीहा की तरह सात्वना और राहत का सदेश दे रहा है।

और एकाएक उसके दिल मे विचार आया, यह गाधी औरो को सात्वना और राहत दे रहा है या अपने आपको ? वह दूसरो के आसू पोछ रहा है या अपने आपके आसुओ को रोक रहा है ?

अकस्मात उसके अन्तर्मन ने उससे कहा कि गाधी का हृदय इस समय विदीर्ण है, दारुण व्यथा से पीडित है।

किस बात की उसे व्यथा थी ? वह कौन-सा आघात था जो उसे इस मगल-पर्व मे शरीक होने से रोके हुए था। उसके दिल पर कौन-सा ज़ख्म है, किस बात की चोट पहुची है ?

धनजय यह स्पष्ट रीति से तो नही जान सका, पर उसका मन गहरी विषण्णता से भर गया और बरबस उसकी आखो मे आसू आ गए।

यह भारतीय स्वतत्रता का पर्व-दिवस था, और धनजय अपनी प्राणप्रिया की गोद मे सोया हुआ था, पर उसकी आखे झर-झर बह रही थी।

गीता ने भी धीरे से अपनी आखो को आचल लगा लिया।

५

गीता का विवाह हुए दस वर्ष हो चुके है, और उसे धनजय का स्वभाव भीतर-बाहर से पूरा-पूरा मालूम है। उसके जीवन को उसने निकट से देखा ही क्या, उसके सुख-दुख का प्रसाद पूर्ण मात्रा मे ग्रहण किया है। कितना प्रखर उसका जीवन था ? बाहरी दुनिया को उसकी कल्पना करना भी कठिन है।

धनजय एक राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र 'युगान्तर' का सपादक था, और गीता के सगे-सम्बन्धी जानते थे कि इस धन्धे मे सामाजिक प्रतिष्ठा जो भी हो, आर्थिक दृष्टि से फाकेकशी को छोडकर और कुछ हाथ लगने वाला नही है। खासकर जब कि पत्र विशुद्ध राष्ट्रीयता का प्रचारक था, और अग्रेजी साम्राज्य के मजबूत अस्तित्व का कट्टर विरोधी था।

पत्र सचमुच बडा लोकप्रिय था, क्योकि धनजय के विचार बडे निर्भीक और तर्कशुद्ध रहा करते थे, उनमे तेजस्विता थी, जो उन दिनो की सबसे बडी आवश्यकता थी। अन्य समाचारपत्र सरकार की मरजी सम्हालकर ही राष्ट्रीय विचारो का प्रतिनिधित्व करने का आभास मात्र निर्माण करते थे, पर उनकी मर्यादा यही थी कि अग्रेजी शासको की नाराजी का जरा भी खतरा हुआ कि अपने विचारो को फौरन मोड दे दिया करते। आखिर कलम बडी लचीली होती है, उससे जो लिखाना हो वह लिख देती है—राम की गुणगाथा भी, और रावण की भी। वह तो लिखने वाले की करामात पर अवलम्बित रहता है। प्रबुद्ध पाठक जान जाते कि यह तार पर की कसरत क्यो कर चल रही है। पर उन पत्रों के सपादक समझते कि वे अपनी और जनता की आखो में इस प्रकार अजन लगा सकते हैं ताकि उनकी कमजोरी पर किसीकी नज़र न टिके।

पर जनता ऐसी बेवकूफ कभी नही रही है—न तब थी और न अब है। वह तो अपने सच्चे सेवक को पहचानती थी, सेवा का नाटक करने वालो को भी जानती थी।

और इस सब वातावरण मे धनजय एक देदीप्यमान नक्षत्र की तरह चमक उठता। उसका समाचारपत्र स्वातत्र्य सग्राम का प्रहरी था। वह न सरकारी शक्तियो को अपने शब्द-बाणो के आक्रमण से छोडता और न उन भारतीय पचम स्तभियो को जो विदेशी शासन की छत्रछाया मे फल-फूलकर अपनी मातृभूमि की दासता की जजीरो को और भी मजबूती से जकडवाने मे मदद करते। समस्त

राष्ट्रीय जागरण के आन्दोलनो और प्रवृत्तियो की सेवा मे उसका साप्ताहिक पत्र 'युगान्तर' सकटमोचन हनुमान जी की तरह अडिग खडा रहता। राष्ट्रीय तत्व के लोग उस पर नाज करते, अराष्ट्रीय तत्व उससे हमेशा भय खाते, उसे अपने मार्ग का काटा समझते। शासन के ऊचे से ऊचे अधिकारियो पर, फिर वे गवर्नर हो या चीफ सेक्रेटरी हो, उसका सदैव बडा आतक रहता।

धनजय ने कही नेपोलियन का यह विचार पढा था कि वह चार रेजिमेण्टो से उतना नही घबडाता जितना एक समाचारपत्र से। अग्रेज साहित्यिक और चिन्तक टॉमस कार्लाइल के यह विचार भी उसे बडे आकर्षक लगते कि एक सुयोग्य सपादक एक बादशाह से किस प्रकार कम है ? फर्क इतना है कि उसकी बादशाहत वर्ग मीलो की सख्या से नही उसके पाठको की सख्या से कूती जाती है।

धनजय इसी बादशाहत की शान-शौकत मे मस्त रहता। अपनी सपादकीय कुर्सी के सामने उसने सत कबीर का यह वचन लगाया था

चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बेपरवाह।
जिनको कछु ना चाहिए, सोई साहसाह॥

पत्र-सपादन उसके लिए रोजगार नही था, एक मिशन था। वह व्यक्तिगत उन्नति का, स्वार्थसाधन का या नेतागिरी कमाने का जरिया नही था, जनसेवा का देशसेवा का पवित्र माध्यम था जिसकी विशुद्धता को बनाए रखना सब समय आवश्यक था। इस मार्ग मे खतरा है, बाधाओ की कमी नही है, प्रलोभनो की भरमार है, कण्टक है, तो सुविधाए भी है। उन सबसे बचकर अपने कर्तव्य-पथ से क्षण भर के लिए भी विचलित या भ्रष्ट न होना सरल काम नही है, बडी साधना और तपस्या है। वह भगवान से निरतर यही प्रार्थना करता रहता कि वह उसे इस मार्ग पर अडिग और निर्भय चलने की शक्ति देता रहे।

उस जमाने की पत्रकारिता भी कितनी कठिन थी ! पास मे कोई पूजी नही, प्रेस की छपाई का बिल भी नियमित रूप से देना मुश्किल। सरकार से तो खुली लडाई थी इसलिए सरकारी विज्ञापन भी मिलने से रहे। ग्राहक-सख्या ठीक थी, पर समय से चन्दा वसूल होना कठिन था। एक प्रति दस-दस, बीस-बीस लोग पढ लेते थे।

अलग से खरीदकर पढने वाले कम थे। उन दिनो यानी सन् १९३५-३६ मे काग्रेस की बडी प्रतिष्ठा थी, और वही सस्था राष्ट्रीय जागरण और आन्दोलन की एकमात्र प्रतीक थी। इसीलिए स्वभावत सभी राष्ट्रीय पत्रो का उसे सम-

र्थन रहता। 'युगान्तर' से भी सबसे अधिक शक्ति काग्रेस दल को ही मिली। पर अधिकाश मे काग्रेस नेताओ और कार्यकर्ताओ की आर्थिक स्थिति ऐसी नही थी कि वे ज्यादा अखबार खरीदकर पढे। फिर भी वे 'युगान्तर' के प्रचार मे थोडी-बहुत मदद जरूर करते, और पूरी सहानुभूति जताते। उनके अन्त करण मे धनजय के लिए बडा आदर था। उसकी प्रखर राष्ट्रीयता, निर्भीकता तथा तेजस्विता के कारण वे उसकी बडी इज्जत करते थे। स्वेच्छा से उसके पत्र की थोडी-बहुत सहायता भी करते थे। पर पत्र का घाटा किसी तरह पूरा ही नही होता था। प्रेस की उधारी या कागज वालो की सहलियतो से और अन्त मे चलकर अपना पेट काटकर ही वह किसी कदर अपना काम चलाया करता था। प्रेस के मालिक और कर्मचारी भी अधिकत राष्ट्रीय वृत्ति के ही थे। उस जमाने मे तो देशभक्ति की भावना घर-घर मे कूट-कूटकर भरी थी। गाधीजी का जबर्दस्त प्रभाव था, उन्होने समूची की समूची पीढी की जीवन-दिशा ही बदल दी थी। इसलिए वे सब कर्मचारी भी 'युगान्तर' के प्रकाशन मे पूरा योग देते थे, जैसे किसी यज्ञ मे आहुति दे रहे हो। 'युगान्तर' सबके हृदयो मे घर कर गया था और सबकी शुभकामनाए और सद्भावनाए उसे बडा बल देती थी।

बस, इसके नशे मे धनजय अलमस्त रहता और उसकी मस्ती का ससर्ग गीता पर भी छा जाता। दाल-भात-रोटी नही मिली तो खिचडी तो कही नही गई। सोने के लिए पलग नही मिला तो धरती और चटाई कौन छीन सकता था? कपडे मे पैबद भले ही लगे हो पर जब घर मे दोनों ही चरखा चलाते है तब वस्त्र की समस्या का क्या डर है? गीता का ध्यान भी अपनी फटी साडी की तरफ न जाता। उसके रिश्तेदार जब उससे मिलने आते तो उनकी छाती फट जाती। पर गीता की समझ मे ही नही आता कि आखिर उन्हे इतनी परेशानी क्यो होती है। उसके दिल से पूछे तो वह कहता कि उसका सुख-वैभव किसी महारानी से क्या कम है? वह अपने पति के दिल की सम्राज्ञी जो है। पति का अनन्य प्रेम ही नारी का सबसे बडा अलकार है, आभूषण है। उसके अभाव मे सोने की थाली मे परोसा हुआ पच पकवानो से युक्त भोजन भी विष के समान है, और रेशम के गद्दे-तकियो की शय्या भी शर-शय्या है। अपना-अपना दृष्टिकोण ही तो ठहरा! कोई काहू मे मगन, कोई काहू मे मगन!!

पर इतने से ही उसकी तपस्या पूरी नही हुई। ब्रिटिश शासन ने प्रेस ऐक्ट के अन्तर्गत युगान्तर के एक अग्रलेख से नाराज होकर दो हजार रुपये की जमानत माग

ली। घर मे तो बीस रुपये नही थे, दो हजार कहा से आए। सरकारी हुक्म था कि दस दिन के भीतर जमानत नही दाखिल की तो प्रेस पर ताला लग जाएगा। अखबार भी बन्द हो जाता, और प्रेस के कर्मचारी बेकार हो जाते सो अलग।

यह आघात जबर्दस्त था। जाहिर है कि यह वार जान-बूझकर इसी नीयत से किया गया था कि समाचारपत्र की कमर ही तोड दी जाए ताकि वह फिर उठ ही न सके। पहली बार धनजय के पैर लडखडा उठे। जिस पत्र को अपने रक्त की स्याही मे लिख-लिखकर चलाया उसे इस निर्मम प्रहार के कारण बन्द करना पडे इससे बढकर मर्मान्तक चोट क्या हो सकती है? धनजय को लगा जैसे वह अपनी ही आखो अपना मरण देख रहा है।

दस दिन के भीतर दो हजार कहा से लाए? धनजय बिस्तर पर धम्म से जा गिरा और तडप उठा। रात भर उसकी तिलमिलाहट जारी थी। वह व्याकुल था। इस घने अन्धकार मे, हे भगवान, कैसे रास्ता सूझे!

गीता ने ढाढस दिया, 'मेरे राजा। यह तो अपनी अग्नि-परीक्षा है। जो वीर-बहादुर होते है उन्हीकी तो परीक्षा होती है। जिस भगवान ने यह परिस्थिति लाई है वही इसका निर्वाह भी करेगा। हमने किसीका अकल्याण तो किया नही, किसीका घर नही उजाडा, किसीका दिल नही दुखाया। भारत माता की भक्ति मे कोई खोट नही आने दी। भगवान का भी कभी विस्मरण नही किया। द्रौपदी की लाज रखने वाला योगेश्वर हमारी लाज क्यो जाने देगा? क्या तुम उसका यह आश्वासन भूल गए?

अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जना पर्युपासते।
तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम्॥

'इसलिए अपना सब भार उस चतुर्भुज चक्रधर पर छोडकर निश्चिन्त क्यो नही हो जाते? इतनी अश्रद्धा क्यो?'

गीता के शब्दो ने अमृत का काम किया और धनजय का धीरज लौट आया। दूसरे दिन जब लोगो ने समाचारपत्रो मे जमानत की खबर पढी तो 'युगान्तर' के लिए उनके मन मे सहानुभूति उमड पडी। कई लोगो ने स्वयस्फूर्त होकर जमानत-फण्ड मे चदा देना शुरू किया। पर नौ दिन मे एक हजार से ज्यादा इकट्ठा नही हुआ। अब बचे हुए एक दिन मे एक हज़ार कहा से आएगा? हरएक दाता सोचता कि युगान्तर के प्रेमियो की तो कमी नही है। मैने यदि पाच रुपये की जगह दो

रुपये ही दिए तो क्या बिगड जाएगा ? इतने लोग जो है ।

मसल वही हुई कि एक राजा ने ऐलान किया कि महल के सामने के हौद मे रात को हर एक नागरिक एक-एक लोटा दूध छोड जाए, क्योकि कल राजा का दुग्ध-स्नान होगा । प्रत्येक नागरिक ने सोचा, सब लोग तो दूध डालने ही वाले है, मै ही अकेला एक लोटा पानी छोड दू तो क्या होगा ? सुबह उठकर देखा तो हौद मे एक बूद दूध नही निकला, सब पानी ही पानी भरा पाया । राजा के शुद्धोदक-स्नान की व्यवस्था हो गई ।

'युगान्तर' का हाल उस राजा जैसा बुरा नही था । उसके कोष मे तो हज़ार रुपये आ चुके थे । पर बाकी के हजार नही आए तो कल प्रेस का ताला कैसे टलेगा ?

गीता ने कहा, 'विवाह के समय मेरी मा ने कुछ गहने दिए थे । वे आखिर किस दिन काम आएगे ?'

धनजय की आखो मे आसू आ गए । रुधे हुए कण्ठ से बोला

'गीता, तुम्हारे लिए नये गहने तो नही बना सका, पर तुम्हारे अपने जो गहने थे वे भी जाने को तैयार दीखते है । इतना बडा शल्य भला मै किस प्रकार बर्दाश्त कर सकूगा ?'

'ऐसी पागलपन की बात क्यो करते हो मेरे राजा', गीता उसके समीप आकर बोली । उसके दोनो हाथ अपने हाथो मे लेकर अपने गले मे डालते हुए बोली, 'तुम्हारी ये भुजाए तो मेरा सबसे मूल्यवान आभूषण है, जिनके सामने रत्नजटित गलहार की क्या कीमत है ? इन भुजाओ की शक्ति सुरक्षित रहे तो मेरे सौभाग्य और अलकारो मे कभी भी कोई क्षति नही हो सकती ।'

धनजय ने गद्गद होकर गीता को हृदय से लगाते हुए कहा

'गीता, तुम नारी नही भगवती हो, व्यक्ति नही आदिशक्ति हो । गजब की तुम्हारी हिम्मत है । सचमुच तुम साथ हो इसीलिए आसमान के तारे तोड लाना भी मेरे लिए कठिन नही है ।'

जमानत समय पर दाखिल कर दी गई, और युगान्तर प्रेस मे ताला नही लगा और न उसकी कलम पर कोई जजीर ही लगी । इस अग्नि-परीक्षा के बाद जैसे उसकी लेखनी और भी प्रज्ज्वलित हो उठी हो, और वह पहले की अपेक्षा अधिक आग बरसाने लगी । ब्रिटिश नौकरशाही थर्रा उठी, और जमानत ज़ब्त

करने की साजिश करने लगी।

पर जिसकी रखवाली करने वाला सुदर्शनधारी हो उसे कौन मार सकता है ? उसने लाज रख ली। पहला काग्रेस मन्त्रिमण्डल बना और उसने फौरन जमानत वापस करने का हुक्म दे दिया।

धनजय ने खजाने से रुपये उठाए तो जिन लोगो ने जमानत के कोष मे चन्दा दिया था उनके रुपये वापस करता चला। वे शर्मिन्दा हो गए क्योकि उनकी धारणा थी कि अखबार के लिए जो पैसा ले जाता है वह वापस नही करता, भले ही वह कर्ज के रूप मे हो। पर यह तो दान था, और वह भी वापस मिल रहा है। एकदम अनपेक्षित और अभूतपूर्व घटना !

दो-एक आदमियो ने कहा भी कि हमने वापस करने के लिए थोडे ही पैसा दिया था ?

धनजय ने नम्रता से जवाब दिया, 'यह तो आपकी महान उदारता है। पर यह पैसा तो मैने जमानत के लिए ही लिया था। सौभाग्य से वह वापस मिल गई, सो आपका रुपया लौटा रहा हू।'

कई लोगो को पश्चात्ताप हुआ कि दो रुपये की जगह दो सौ दे देते तो रुपये भी वापस आ जाते और सौ गुना यश भी मिलता। दान देने के पहले ज्योतिषियो से पूछ लेते तो अच्छा होता।

गीता के गहने भी वापस आ गए।

काग्रेस मन्त्रिमण्डल बनने के बाद 'युगान्तर' के लिए दो-ढाई वर्ष तो कुछ अच्छे गए पर फिर दूसरा महायुद्ध छिड गया और एक-एक कर सभी प्रान्तो के मन्त्रिमण्डलो ने युद्ध-कार्य से अपना असहयोग व्यक्त करने के लिए स्तीफा दे दिया। राष्ट्रीय विचारो के व्यक्तियो के लिए फिर दुर्दिन आए। व्यक्तिगत सत्याग्रह हुआ, गिरफ्तारिया हुई, दमन शुरू हुआ, और गाधी जी ने सन् बयालीस का 'भारत छोडो' आन्दोलन छेड दिया।

इतनी बडी आधी मे बेचारा 'युगान्तर' कैसे टिकता ? उसकी उज्ज्वल किंतु क्षीण ज्योति टिमटिमाने लगी। उसका कर्ता-धर्ता सपादक धनजय गिरफ्तार कर लिया गया और साढे तीन वर्ष के लिए जेल मे ठूस दिया गया। गीता अकेली रह गई। वह अब करे तो क्या करे ?

पर इस विराट चुनौती के सामने उसमे जाने कहा से शक्ति आ गई ? वह सोई

हुई शक्ति थी या साक्षात भगवती ने उसे प्रदान की थी यह कौन कह सकता है ? गीता जैसे चण्डी का अवतार बन गई। वह समझ गई कि यह स्वतन्त्रता की अन्तिम लडाई है, इस पार या उस पार ! इस पार तो रहना नही है, उसी पार जाना है, इसके लिए गाधी दृढ प्रतिज्ञ है, देश भी दृढ प्रतिज्ञ है। फिर भले ही बीच मझधार मे रसातल मे गोता लगाना पडे। यह जल-समाधि ही जीवन है, मोक्ष है, और निष्क्रिय होकर परिस्थिति के सामने घुटने टेक देना ही मरण है, बन्धन है। सारे देश मे क्रान्ति की ज्वाला भडक उठी है। बस, उसमे आहुति देकर उसे अधिकाधिक प्रज्ज्वलित करने के सिवा और कोई काम नही है। इस ज्वाला मे जलकर मर जाना हो तो भी चिन्ता नही। देखने-सम्हालने वाले साक्षात परमेश्वर जो ऊपर बैठे है। जो कुछ कर गुजरना है, इसी क्षण कर गुजरना है। अपने पति के नाम को यदि बट्टा नही लगाना है तो अब कदम वापस नही लौट सकते। जो शमशेर म्यान मे निकल चुकी है वह वापस म्यान मे नही जा सकती। बस, अब तो हरहर महादेव कर आगे कूच करने के सिवा और कोई काम नही है।

गीता ने कमर कस ली और 'युगान्तर' की सारी बागडोर अपने हाथ मे सभाल ली। महिला विद्यापीठ की वह स्नातिका थी, और अपने विवाहित जीवन के सात-आठ वर्षों मे, धनजय के सान्निध्य मे, उसकी सहचरी के रूप मे वह उसका काम बहुत कुछ जान गई थी। उसने सोचा, दो का काम एक ही को करना होगा न ? घर-बार की चिन्ता छोडकर अब पूरी ताकत इसी काम मे लगाने के सिवा गति नही है। और न जाने कहा से उसकी भुजाओं मे असख्य भुजाओं की शक्ति आ गई।

'युगान्तर' बराबर निकलता रहा। अग्रलेख धनजय के नही रहने, गीता के रहते। उसके भाव, भाषा से वह इतना समरस था कि लोगो को कई दिनो तक खास फर्क नही मालूम पडा। पर एक नारी साहसपूर्वक एक समाचारपत्र चला रही है और ब्रिटिश सरकार की उग्र दमन नीति से टक्कर लोहा ले रही है, इसी बात ने उसके लिए सहानुभूति और सहायता के अनेक साधन जुटा दिए। आखिर पराक्रम करने वालो के लिए ही तो वसुन्धरा अपना वरदान देती है। उद्योगशील व्यक्तियो का ही वरण तो लक्ष्मी करती है।

पर इस अविश्रान्त और अखण्ड परिश्रम के सामने गीता का शरीर-बल कमजोर पडने लगा। उसकी हिम्मत तो गजब की थी, पर शरीर पिछडने लगा। मह-

गाई खूब बढ गई थी । आमदनी मे उस परिमाण मे वृद्ध नही थी । जीवन की आवश्यकताए भी खूब महगी हो गई थी, कागज, छपाई, मजदूरी सभी बढ गई थी। लडाई के कारण घी-दूध, अनाज, साग-सब्जी सभी के भाव तेज हो गए थे। बडे कष्ट की जिन्दगी थी । जो लोग लडाई के कामो मे या उसमे सलग्न रोजगार-धधो मे लगे हुए थे वे तो चादी कमा रहे थे, मजे लूट रहे थे, पर जो लोग आदर्शो को छाती से लगाए बैठे थे उनकी तो मौत थी ।

गीता नारी थी, पर उसका हृदय कभी-कभी इस्पात की तरह कडा हो जाता था। कर्त्तव्य-दक्ष इतनी कि चाहे जो हो जाए, 'युगान्तर' का झण्डा नीचे न होने देगी। धनजय ने जेल जाने के पहले उसपर जो जिम्मेदारी सौपी थी वह अवश्य पूरी करेगी । रोज बारह या चौदह घण्टे परिश्रम करना पडता । जिस दिन साप्ताहिक पत्र का अक निकलता उसके अगले दिन तो लगातार अठारह घण्टे तक काम करना पडता । आर्थिक चिन्ताए अलग थी । सरकार की धमकिया अलग । स्वास्थ्य इतना बोझ उठाने से इन्कार करता था। पर वह धुन की पक्की थी । काम मे लगी थी सो लगी रही ।

पर रात को जब वह बिस्तर पर पडती तो थककर चूर हो जाती। कोई सात्वना देने वाला नही, धीरज बधाने वाला नही, स्नेह से पीठ थपथपाने वाला नही। धनजय की याद मे वह रो-रो पडती। अपनी एकान्त शय्या मे वह फिर अपनी भावनाओ को नही रोकती । उस समय उसका पुरुषार्थ और सघर्षवृत्ति न जाने कहा चली जाती और एक असहाय एकाकी नारी की तरह आसू बहाने लगती। धनजय का वियोग अब उसे अखरने लगा था । जब से विवाह हुआ तब से दस-पाच दिन से ज्यादा वे कभी अलग नही रहे । पर यह वियोग तो दिनो नही, हफ्तो नही, महीनो नही, वर्षो तक चलता रहा। न जाने कब लडाई बन्द होगी और कब धनजय छूटकर आएगा ।

पर यह सब नारीत्व का रोदन और विलाप हो जाने के बाद उसका जी हल्का हो जाता और उसका मन धनजय के लिए, अपने स्वय के लिए अभिमान से भर जाता। यह भारतीय स्वतन्त्रता की प्रसूति की पर्व-वेला है । उसमे उन दोनो का सक्रिय सहयोग है, उनकी आहुति है, यह क्या कम सौभाग्य की बात थी ?

उधर धनजय भी जेल मे पडा-पडा छटपटाता। पहले पाच-छ महीने तो उसे बाहर पत्र लिखने की इजाज़त नही थी। पर बाद मे वह लिख सकता था।

वह गीता को भरसक ढाढस बधाने की कोशिश करता, सेन्सर किए गए पत्रो के ज़रिये जितना भी प्रीति का भाव व्यक्त किया जा सकता था उतना दर्शाने की कोशिश करता था ताकि उसके कठोर मरु-प्रवास मे कुछ तो हरियाली दिखाई दे। उसके लिखने का आशय यही रहता

'मै जेल मे तो हू, पर मेरा सारा चित्त बाहर है, तुममे केन्द्रित है। सस्था की सारी जिम्मेदारी अकेले तुम्हारे कधो पर आ पडी है—तुम्हे क्या-क्या भोगना पडता होगा इसकी कुछ-कुछ कल्पना कर सकता हू। इसीका खेद है कि तुम्हारा भार हल्का करने के लिए मै तुम्हारे पास नही हू। असल मे त्याग और कर्तृत्व तो तुम्हारा है—मेरा तो कुछ भी नही है। यहा जेल मे तो बहुत आराम है। काम धधा कुछ नही है, निकम्मी जिन्दगी है। कुछ पढ-लिख लेता हू, अपने स्वास्थ्य की तरफ ध्यान देता हू, प्रार्थना-प्रवचन मे शरीक हो जाता हू, कुछ भले लोगो का साथ है, सब ठीक है। एक ही बात ठीक नही है, कि जब मुझे तुम्हारे साथ कधे से कधा मिलाकर परिस्थितियो से लडना चाहिए, और पूरी जिम्मेदारी उठानी चाहिए, वही नही कर पाता। लेकिन भरोसा रखो रानी, हमारे ये दिन भी फिरेगे। हमसे अधिक तकलीफ बर्दाश्त करने वाले लाखो लोग देश मे है। उनके सामने हमारा कष्ट कुछ भी नही है। भगवान ज़रूर इस देश की कोटि-कोटि त्रस्त और सतप्त जनता की पुकार सुनेगे, हमारी गुलामी की दीर्घ रात्रि समाप्त होगी, और हमारे गौरवमय देश मे स्वाधीनता के स्वर्ण प्रभात का उदय होगा, उसका भाग्य जाग उठेगा। मेरी यह दृढ धारणा है, श्रद्धा है जिससे मै क्षण-भर के लिए भी विचलित नही होता।'

धनजय के पत्रो से गीता को राहत मिलती, सतोष होता। वह भी अपने पत्रो से धनजय का उत्साह बनाए रखने का प्रयत्न करती थी। उनके दिल मजबूत थे, पर उनकी बाहरी बुलन्दगी के भीतर उनके शरीर क्षीण हो रहे थे। गीता ईश्वर से बडी आर्तता से प्रार्थना करती कि उनके छूटने तक बीमार न पडू यही चाहती हू। बाद मे जो हो जाए वह मुझे मजूर है।

अकस्मात् एक रात को एकाएक 'युगान्तर' प्रेस को आग लग गई और सारा प्रेस जलकर राख हो गया। कैसे लगी, किसने लगाई, यह कहना कठिन था। पहले तो सोचा कि 'युगान्तर' की जानी दुश्मन तो पुलिस है, उसे छोडकर और किसकी कार्रवाई हो सकती है? पर बात यह नही थी। बिजली के करट फट पडने के

कारण यह दुर्घटना हुई थी। गीता की तो मानो कमर ही टूट गई। वह हाय खाकर बिस्तर पर आ पडी। दैव के इस आघात ने उसे हताश कर दिया। उसे चारो तरफ अधेरा ही अधेरा नजर आने लगा। अब 'युगान्तर' का प्रकाशन कैसे होगा ? और वह बद हो गया तो फिर मेरे जिन्दा रहने का क्या मतलब है ? मा भगवती ! मेरे किन पापो का यह फल है जो इस भयकर परीक्षा मे मुझे उतारा ? तुम्ही यदि अपनी करुणा से वचित कर दोगी तो फिर मेरा कौन-सा सहारा है ? फिर इन अग्नि-ज्वालाओ को मेरी चिता ही क्यो न बना डाला ताकि प्रेस के साथ ही साथ मै भी भस्म हो जाती।

पर गीता अकेली नही थी। 'युगान्तर' ने तो जनता के सहस्र-सहस्र हृदयो मे स्थान बना लिया था। पास-पडोस के लोग ही नही, रास्ते के राही भी लोटा-बाल्टी लिए आग बुझाने दौडे। जिसके हाथ मे जो लगा उसीका उपयोग उसने अग्नि देवता को शात करने के लिए किया। पर उनके प्रयत्न प्रेस की कोई विशेष सामग्री नही बचा सके।

बडी रात तक लोग गीता के पास सहानुभूति जताने के लिए आते रहे पर कोई खाली हाथ नही आया। स्वय स्फूर्ति से लोगो ने प्रेस के पुर्ननिर्माण के लिए एक फण्ड खोला, और उसमे रुपया जमा होने लगा। आठ दिन के भीतर पाच-छ हजार रुपया जमा हो गया। धनजय के साथी बन्दियो ने भी अपनी ओर से एक फण्ड खोला और जेल से भी रुपया भिजवाने की व्यवस्था की। प्रेस के कर्मचारियो ने दिन-रात एक कर दिया और पन्द्रह दिन के भीतर ही प्रेस फिर खडा हो गया। लोग दातो तले उगली दबाकर यह अद्भुत घटना देखते रहे। गीता को अपने मकान और प्रेस के बाहर एक कदम नही रखना पडा।

मित्रो ने कहा, 'यह अग्नि-परीक्षा अन्तिम परीक्षा होती है। इसमे जो उत्तीर्ण होता है, बाजी उसीके हाथ लगती है। बहिन जी, अब चिन्ता मत करो। कालचक्र के परिवर्तन मे अब देर नही।'

धनजय ने जब जेल मे नये प्रेस मे छपे हुए 'युगान्तर' का पहला अक देखा तो खुशी के मारे पागल हो उछल पडा। पहले अपनी आखो पर विश्वास नही कर सका। फिर गीता के लिए उसकी सारी श्रद्धा और भक्ति उमड आई। गीता, सचमुच तुम धन्य हो। भारतीय नारीत्व तुम्हे पाकर गर्व करता है !

उसके जेल के साथियो ने कहा, गीता जी साक्षात भगवती का ही अवतार

है। आपके सौभाग्य अजर और अमर है जो ऐसी जीवन-सगिनी पाई।

धनजय ने गीता को बधाई का पत्र भेजा जिसमे उसके जेल के सभी साथियो की बधाइया भी शामिल थी और उनका आदर और शुभकामनाए व्यक्त की गई थी। गीता उसे पढकर अपनी सारी चिन्ताए भूल गई।

इसी प्रकार सघर्ष के साथ दिन बीतते चले और काग्रेस के नेताओ की रिहाई हुई। लडाई खत्म हुई। धनजय छूटा। उसके सब साथी भी रिहा हुए। गीता का स्वास्थ्य देखकर धनजय का दिल ही बैठ गया। पर मिलन के आनन्द ने उसकी चिन्ताओ पर विजय प्राप्त की। दोनो एक दूसरे को देखकर हरे हो गए। गीता ने कहा, 'अब मै देखते-देखते चगी हो जाऊगी।'

और इसके शीघ्र ही बाद देश का राजनीतिक वातावरण बदला, ब्रिटिश सरकार ने भारत से हटने का निश्चय कर लिया, सत्ता के हस्तानरण की चर्चाए शुरू हुई और भारत खण्डित तो हुआ पर स्वतत्र हो गया।

पन्द्रह अगस्त सन् उन्नीस सो सैंतालीस का ऐतिहासिक दिन आया। सारा देश खुशी मे झूम उठा। सारे भारत मे जशन मनाया गया। भारत माता की जय। आजाद हिन्दुस्तान की जय। इन नारो से आसमान गूज उठा। ये नारे आसमान मे उठे, हिमालय से टकराए और टकराकर वापिस लौटकर देश के कोने कोने मे प्रतिध्वनित हो उठे।

६

डिप्टी सेक्रेटरी रघुनाथ सहाय के यहा आज उनकी बेबी की बर्थ-डे पार्टी थी। पाच-सात दिनो से तैयारिया हो रही थी क्योकि उसमे शरीक होने के लिए उनके विभाग के मन्त्री माननीय श्री मनमोहन बाबू ने स्वीकृति दे दी थी। श्रीमती सहाय के उत्साह का आज क्या पूछना? जैसे साक्षात भगवान घर चलकर आ रहे हो। वैसे भगवान मे तो उनका कोई खास विश्वास नही था। सिर्फ एक बार उन्हे याद आता है कि बचपन मे उनकी बेबी जब सख्त बीमार पड गई थी, और एक रात तो उसके जीने की आशा नही रही थी, तब

दफ्तर के किसी क्लर्क के कहने-सुनने से उन्होने एक पण्डित को बुलाकर कुछ पूजा-पाठ कराया था। वह भी बगले मे नही, वरन् उसके पिछवाडे की नौकर की खोलियो मे चुपचाप कि कही उनके अग्रेज अधिकारियो को इसका पता न चल जाए और वे उन्हे पुरातनवादी और ढकोसलापन्थी न करार दे दे। किस्मत से बेबी अच्छी हो गई तो उसका श्रेय उन्होने उस पूजा को नही दिया अपितु 'पेनिसिलीन' को दिया जो लडाई के दौरान मे नई-नई हिन्दुस्तान मे आई थी और थोडी मात्रा मे मिलने लगी थी।

लेकिन अब जमाना बदल गया है, भारत स्वतन्त्र हो गया हे, इसलिए मान्यताओ मे फर्क होना अवश्यम्भावी हे। समय की गति को देखकर जो नही बदलते वे प्रगतिवादी नही हे, प्रतिक्रियावादी हैं। इसलिए अब भगवान को भी जिन्दगी मे स्थान देना लाजिमी है। और हमारे लिए हमारे महकमे के मिनिस्टर साहब को छोडकर भला और कौन भगवान हो सकता है? मिस्टर और मिसेज सहाय का सीधा सवाल था।

बेबी का नाम उसकी नानी ने बडे प्यार से दुर्गा रखा था, हालाकि यह बात उसकी मा को एकदम नापसन्द थी। उनकी इच्छा थी कि इसका नाम 'डेजी' या 'डॉली' रखा जाए। समझौता यह हुआ कि जाप्ते के लिए नाम तो दुर्गा ही बना रहे पर प्रत्यक्ष व्यवहार मे 'डॉली' ही चलेगा। आखिर बडे-बूढो का कुछ तो ख्याल रखना जरूरी हे! नानी बेचारी कितने दिन साथ देने वाली हे? वे तो हमेशा ठाकुरजी से प्रार्थना करती थी कि आजकल का यह भ्रष्टाचार, अण्डे-मुर्गी का खान-पान उनसे नही देखा जाता था इसलिए वे उन्हे जितनी जल्दी अपने चरणो मे बुला ले उतना ही अच्छा। मिसेज सहाय की पक्की धारणा थी कि नानी इतनी पूजा-पाठ करती हैं तो ठाकुरजी जरूर ही उनकी 'प्रेयर' सुन लेगे और तब 'डॉली' का नाम ही कायम करने मे कोई अडचन नही होगी।

नानी बेचारी अपने समय से प्रभु-पद मे लीन हो गई और तारामती देवी ने बाकायदा अपनी बच्ची का नाम कॉन्वेन्ट मे 'डॉली' ही दर्ज कराया। आठ वर्ष की आयु मे ही 'डॉली' इतनी साफ-सुथरी अग्रेजी बोलती थी जैसे वह उसकी मातृभाषा हो। क्या उसका बोलने का लहजा, कैसे उसके स्पष्ट उच्चारण! अग्रेज अफसरो और उनकी मेमो से बोलती तो वे बाग-बाग हो जाते। जब वे प्रसन्न-वदन होकर कहती, 'व्हाट ए स्वीट किड!' (कैसी प्यारी बच्ची है!) तो मिस्टर

और मिसेज सहाय का दिल बासो उछलने लगता। और जब अग्रेज चीफ इन्जीनियर की बन्ध्या पत्नी ने कहा कि मै तो इसे इग्लैण्ड ले जाना चाहती हू, वही इसको ट्रेण्ड करूगी, तब तो 'डॉली' के माता-पिता धन्य हो उठे। बोले, स्वर्ग अब दूर नही है।

लेकिन इस कम्बख्त स्वतत्रता-प्राप्ति ने तो सारा नक्शा ही बदल दिया और जिन्दगी भर की तमाम मेहनत बेकार गई। स्वर्ग की सीढी की कोई कीमत ही नही रही क्योकि अब तो इस नये जमाने मे स्वर्ग की मान्यता भी बदल गई। अब तो फिर नये सिरे से अलिफ-बे करनी होगी।

लेकिन सहाय-दम्पति बडे अनुभवी और व्यवहार-कुशल थे। आखिर सीढी पर चढने की तरकीब और सिद्धात तो वही है। सिर्फ उनकी दिशा भर बदलने की जरूरत है। हमे क्या ? अग्रेज गए तो उनकी जगह सुराजी आ गए। आखिर ये भी तो आदमी ही है। यदि हम बुद्धिमान विदेशियो को खुश कर सके तो इन स्वदेशियो को खुश करने मे क्या देर लगेगी ? जब खुद अग्रेजो ने ही हथियार डाल दिए और भारत छोडने की ठान ली तो हमने ही क्या ठेका लिया हे कि हमी उनके लिए रोते-पीटते रहे ? क्या हमारे दिल मे देशभक्ति नही है ? आखिर हम भी तो हिन्दुस्तानी है ? हम इन्ही मिनिस्टरो की सर्विस मे अपना जीवन-अर्पण कर देगे।

तीन दिन के भीतर ही बगले की रौनक बदल गई। आखिर वे लोक-कर्म-विभाग (पी० डब्ल्यू० डी) के डिप्टी सेक्रेटरी थे। सफेदी पुताई, लाल मुरूम की सडक, फाटक-अहाता सब चकमक। ड्राइग रूम मे सोफासेट पर खद्दर चढ गया। दीवार पर किग जॉर्ज और क्वीन मेरी के चित्रो की जगह महात्मा गाधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल आदि के चित्र आ गए। रेडियो के ऊपर भगवान बुद्ध की प्रस्तर-प्रतिमा आ गई। किताबो की दराज मे गाधी जी तथा नेहरू जी की आत्मकथाए, 'डिसकवरी ऑफ इण्डिया,' वैन्डेल विल्की का 'वन वर्ल्ड,' लुई फिशर की किताबे, तथा दो-एक स्वामी रामकृष्ण, विवेकानन्द के ग्रन्थ आ गए। अर्थात् ये सब किताबे काच की अलमारी मे रखी हुई थी, और उनके भीतर के कई पन्ने जुडे हुए थे—इस प्रतीक्षा मे कि कोई महापुरुष आए और उन्हे पढने की कोशिश मे उन पन्नो को अलग करे। पर अभी उनका भाग्य नही जागा था। और उनके मालिको की रुचि देखते हुए उसके जागने की सभावना भी बहुत कम

दिखाई देती थी। लेकिन उन पुस्तको के नाम उस काच की अलमारी मे से छत पर चढकर बोलते थे ।

लगभग सात दिन से सहाय-परिवार मे मिनिस्टर मनमोहन बाबू को छोड-कर और कोई चर्चा नही है। राजभवन के शपथ-विधि समारोह की एक-एक अदा याद की जा रही है। उनकी मोटर यदि बगले के सामने के रास्ते से झण्डा फर-फराती निकल जाती तो तीनो एकटक उसकी ओर तब तक देखते रहते जब तक वह आखो से ओझल नही हो जाती। कहते—शायद मुख्य मत्री जी के बगले पर जा रहे हैं। सी० एम० के वे खास कृपापात्र है। एक बार मनमोहन बाबू के बगले का चपरासी आया तो मिसेज सहाय ने उसे बडे प्रेम से चाय-समोसे खिलाए और घण्टे भर तक उससे घुल-घुलकर बाते करके मिनिस्टर साहब की दिनचर्या, आदत, खाने-पीने की रुचि आदि का पता लगाया। शाम को यदि वे लोग 'डॉली' को लेकर घूमने जाते या सदर बाजार जाते तो मोटर हर हालत मे मिनिस्टर साहब के बगले के पास से ले जाते हालाकि वह उनके रास्ते से जरा अलग था। वहा हर समय दो-चार मोटरे और पाच-सात तागे रिक्शे खडे रहते जिन्हे देखकर वे कहते, हमारे मिनिस्टर साहब बडे लोकप्रिय हैं। आज तीस साल की उम्र मे ही यदि उनका यह हाल है तो आगे चलकर वे अपने प्रदेश के ही क्या भारत सर-कार के भी प्रधान मत्री बन सकते हैं। अभी तो उनके लिए काफी लम्बी जिन्दगी पडी है।

याने कि सहाय-परिवार की सारी बुद्धि, कर्तृत्व-शक्ति और योजना-कुशलता एकमात्र इसी लक्ष्य पर केन्द्रित थी कि किस तरह मनमोहन बाबू को अपने प्रभाव की परिधि मे लाया जाए और उनकी कृपादृष्टि मे सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया जाए।

पार्टी के लिए रघुनाथ सहाय ने अपने विभाग के प्राय सभी बडे-बडे कर्म-चारियो को निमन्त्रित किया था, जिनमे सेक्रेटरी, चीफ इन्जीनियर और उनके कुछ खास ठेकेदार लोग थे। और चूकि उनके मिनिस्टर साहब स्वय पधारने वाले थे, वे सब लोग उत्साह से आए। नये मन्त्री महोदय से नजदीकी सम्पर्क स्थापित करने का मौका मिलने की सभावना थी और फिर कभी कार्यवश उनसे दुबारा मिलने का मौका आता तो यह कहने की गुजाइश थी कि जी, सहाय साहब की पार्टी मे आपके दर्शनो का सौभाग्य मिल चुका था।—बस, इतने मे ही आधा

काम बन जाने की आशा थी। इधर रघुनाथ सहाय भी सोचते थे कि यह पार्टी इन लोगो पर अपना 'इम्प्रेशन' डालने का और रौब गाठने का सुनहला जरिया है। धन्य है आप मिनिस्टर साहब ! धन्य है मनमोहन बाबू, जो उन्होने इस कदीम की दावत कुबूल फरमाने की मेहरबानी की !

'मनमोहन बाबू ! माननीय मनमोहन बाबू !! क्या सुन्दर नाम है ! सचमुच कैसे मन को मोह लेता है ? बिलकुल किशन भगवान का ही नाम तो है ! वाकई, डियर, हमारे बुजुर्ग भी कितने अक्लमन्द थे कि बच्चो के नाम भगवान के नाम पर ही रखते थे ताकि नाम का नाम हो जाए और पुण्य का पुण्य। अनायास ही नाम-जाप का श्रेय मिल जाता।'—रघुनाथ सहाय ने एक गभीर चिन्तन-मुद्रा मे अपनी पत्नी से कहा, जैसे किसी अपूर्व तत्व का उन्होने अन्वेषण किया हो।

पत्नी पार्टी की तैयारी मे अपने ओठो पर लिपस्टिक लगाती जाती और अपने पति के अर्थपूर्ण विवेचन से सहमति दर्शाती जाती। आज उनके बनाव-शृगार का क्या पूछना ? पैतीस-छत्तीस वर्ष की उम्र थी, पर आज उनका सारा प्रयत्न यही था कि चौबीस-पचीस की कैसे लगे ? जब वे अपने शृगार-गृह से निकली तो उनके पति भी, जिन्होने उनके इस प्रकार के कई अवतारो को देखा था, आश्चर्य से दग रह गए। और सहसा उनके मुह से निकल पडा, 'ब्यूटी !'

तारामती देवी ने पति पर एक ऐसा मर्मभेदी कटाक्ष फेंका जैसे वे ही उनके प्रियपात्र हो जिनके रिझाने के लिए उन्होने इतना अपूर्व लावण्य-शृगार किया है।

पर उनके अन्तश्चक्षुओ के सामने इस समय मनमोहन बाबू की मूर्ति ही नाच रही थी। मानो उनका समस्त उभरा हुआ यौवन एव सौन्दर्य-परिष्कार यह चुनौती दे रहा था कि देखे, यह खद्दरधारी सफेदपोश विश्वामित्र मेरी मोहिनी की जादू मे कैसे बच निकलता है ?

रघुनाथ सहाय के शरीर मे एक मधुर सिहरन काप उठी। उनकी आखो मे उन्माद छा गया और वे एक क्षुधार्त प्राणी की तरह अपनी पत्नी की ओर बढे।

'दूर भी रहो जी। न वक्त देखते हो न प्रसग ! अपने मेक-अप को मै थोडे ही बिगडने दूगी'—कहकर श्रीमती सहाय तपाक से कमरे के बाहर निकल गई।

रघुनाथ सहाय अपनी पत्नी की फटकार खाकर चुपचाप अपनी अचकन चढाने लगे। उनके लिए यह कोई नई बात नही थी।

ठीक समय पर मिनिस्टर साहब की गाडी आई—वही शानदार झण्डा, वही चमचमाती मोटर, और उसका बुलन्द भोपू जो आसपास के वातावरण मे गूज उठे और स्पष्टत ऐलान करे कि मिनिस्टर साहब की सवारी आ रही है।

रघुनाथ सहाय ने मोटर का फाटक खोला और नमस्कार कर अपनी पत्नी और बच्ची का परिचय कराया। मनमोहन बाबू मुग्ध आखो से श्रीमती सहाय का नयनाभिराम लावण्य देख रहे थे, देखकर कुछ चकाचौध अनुभव कर रहे थे। रघुनाथ सहाय जी पर उनका ध्यान ही नही गया।

श्रीमती तारामती सहाय के चेहरे पर और विशेषकर नेत्रो मे ऐसा आकर्षक, ऐसी लुभावनी स्मिति थी कि उसके प्रभाव की परिधि से बडे से बडे तपस्वी का निकल भागना कठिन था। एक बार आखो से आखे लडने भर की देर थी। फिर तीस वर्ष की आयु वाले तरुण मनमोहन बाबू की बात ही क्या, जो तबीयत से ही जरा रगीन थे। मिसेज सहाय एक क्षण मे समझ गई कि जादू चल गया और तीर ठिकाने जा पहुचा।

उन्होने बच्ची को आगे बढाते हुए कहा

'बेबी, मिनिस्टर साहब को नमस्ते करो।'

'नमस्टे ! ' बेबी ने कहा।

'आज इसीका वर्थ-डे है,' श्रीमती सहाय ने उसी आकर्षक स्मिति के साथ कहा जो उनके हुक्मनामे पर जब चाहे तब खिल उठती थी, ऐसी स्मिति जो निमन्त्रण जैसी लगती जिसमे उनकी बडी-बडी काली-काली आखे और शुभ्र दन्त-पक्तिया गजब ढा देती।

'अच्छाऽऽ ! ' मिनिस्टर साहब ने बडे स्नेह से बेबी की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा। 'बधाई है, हार्दिक बधाई।'

'ढन्यवाड' बेबी ने हाथ जोडकर, जैसा सिखाया था वैसा कह दिया।

'तुम्हारा क्या नाम है, बेबी ?' मिनिस्टर साहब ने 'धन्यवाद' शब्द के खटकने वाले उच्चारण को बिसराते हुए कहा।

'डुर्गा'—बेबी ने तत्परता से जवाब दिया। मा की ओर से उसे सख्त हिदायत थी कि बदले हुए भारतीय वातावरण मे उसका 'डॉली' नाम का अवतार अब समाप्त हो गया है।

'क्या यह बच्ची कॉनवेन्ट मे पढती है ?' मिनिस्टर साहब ने सस्मित पूछा।

'जी हा, जी हा'—दोनो पति-पत्नी ने साथ ही कहा और फिर एक दूसरे की तरफ इस अभिमान से देखा कि देखो, मन्त्री महोदय कितने बुद्धिमान हैं जो विना बताए ही बात समझ गए ।

इसी बीच नजर बचाकर, मिसेज सहाय ने एक ऐंग्लो-इण्डियन तरुणी की ओर देखकर इशारा किया । वह आगे बढ आई ।

उसका परिचय कराते हुए मिसेज सहाय ने कहा, 'ये है दुर्गा की इंग्लिश टीचर, मिस रूबी पैटर्सन । आप कॉन्वेन्ट मे पढाती हैं और दुर्गा ने अपनी शिक्षा मे जो प्रवीणता प्राप्त की है उसका श्रेय इन्हीको है ।'

'हाउ डू यू डू ? (आप कैसी हैं ?)', मन्त्री महोदय ने अंग्रेजी तहजीब के मुताबिक प्रश्न किया ।

'हाउ डू यू डू ?' मिस पैटर्सन ने कहा, जैसे कोयल बोल रही हो और मिलाने के लिए हाथ बढाया ।

मिनिस्टर साहब ने भी उसकी आखो से आखे मिलाते हुए बडे स्नेह से हाथ मिलाया । इस स्पर्श की मृदुता और भावोत्कटता अजीब थी । मिस पैटर्सन के गौर वर्ण चेहरे पर नीली-नीली आखे उन्हे बहुत ही मोहक लगी । मिस पैटर्सन के सारे व्यक्तित्व मे एक प्रकार की ढिठाई थी, विचित्र-सी क्रीडा-वृत्ति थी और मन्त्री महोदय उसकी ओर देखते ही रहे । उसके हस्त-स्पर्श के कारण उनके शरीर मे बिजली की-सी जो उर्मिया बह निकली थी वे उनके शरीर को किंचित पुलकित किए हुए थी । उस वातावरण मे अधिक ठहरना उचित न जानकर मिनिस्टर साहब अन्य अतिथियो के पास आगे बढे ।

कहना न होगा कि पार्टी एकदम सफल रही और जब रात्रि को वे अकेले रह गए तब रघुनाथ सहाय जी ने अपनी पत्नी से कहा

'आज तुमने कमाल कर दिया डियर । मिनिस्टर साहब पर ऐसा जाल फेका कि अब वे बाहर नही निकल सकते । तुम पुरुषो का स्वभाव तो खूब जानती हो । पर मन की बात कहू तो तुम मिनिस्टर साहब से जिस तरह व्यवहार कर रही थी उससे तो मुझे डाह होने लगा था । कम से कम तुम्हे वह फोटो तो नही खिचवाना चाहिए था, जो पार्टी के अन्त मे तुमने निकलवाया '

'इसमे क्या बडी बात हो गई डार्लिंग ।' तारामती देवी ने बडे प्यार से कहा । 'मैं होस्टेस (मेजबान) थी, और मिनिस्टर साहब चीफ गेस्ट (प्रधान अतिथि) थे,

और बेबी का था बर्थ-डे। इसलिए हमने तीनो का एक फोटो खिचवा लिया तो इसमे क्या एतराज हो गया ? तुम देखना तो, इसका आगे चलकर कितना फायदा होगा।'

'पर उससे मालूम पडता है कि जैसे मेरी कोई हस्ती ही नही है।'—उन्होने शिकायतभरे स्वर मे कहा।

'तुम्हारी हस्ती कैसे नही है, माई स्वीट डार्लिंग (मेरे प्रियतम) ! तुम तो मेरे दिल के राजा हो यह तो तमाम दुनिया जानती है। तुम्हारे प्रम के बिना मैं भला एक क्षण भी जी सकती हू ?'

और फिर मिसेज सहाय ने अपने प्रेम का जो इजहार किया उसमे उनके पति महाशय सारी ईर्ष्या और सारी शिकायत भूल गए। वे जानती थी कि इस तरह की ईर्ष्या और इस तरह की शिकायत तो जिदगी मे पचीसो बार हुई है। पर उसकी परवाह यदि की जाती तो क्या सहाय साहब की आज जो तरक्की हुई है वह हो पाती ? इस कठोर सत्य को जितना वह जानती थी उतना उनके पति भी जानते थे। इसलिए वे शात भाव से अपनी कर्तृत्ववान पत्नी का प्रश्रय पाकर घोर निद्रा मे सो गए, जैसा कि वे हमेशा ही करते आए थे।

७

प्रदेश के मुख्यमन्त्री पण्डित पूरणचन्द्र जोशी कुशल राजनीतिज्ञ तो थे ही, सत्तात्मक राजनीति की अखाडेबाजी के सिद्धहस्त पहलवान भी थे, और साथ ही साथ विधायक वृत्ति के व्यक्ति भी थे। नई-नई सस्थाओ के निर्माण करने मे उन्हे बडी दिलचस्पी थी। फिर वे शिक्षण सस्थाए हो, समाज-सेवा की सस्थाए हो, महिलाओ की हो, या साहित्य तथा अन्य कला विषयक सस्थाए हो। इसमे लोक-सग्रह होता है, और समाज मे सत्प्रवृत्तियो का प्रचार होता है। उनका यह कई दिनो का स्वप्न था कि इस प्रदेश मे एक राष्ट्रीय वृत्ति का जोरदार समाचार-पत्र रहे जिसकी धाक प्रदेश के सार्वजनिक जीवन पर तो रहे ही, पर जो उनके मन्त्रिमण्डल का कट्टर समर्थक हो। प्रजातन्त्र मे समाचारपत्र का महत्व सर्वोपरि

है। जनमत को बनाने-बिगाडने मे उनका बहुत बडा हाथ रहता है। ऐसे समाचार-पत्र के सस्थापक के रूप मे दुनिया उन्हे जाने यह उनकी हविस थी। इस स्वप्न के पीछे उन्होने काफी रुपया बर्बाद किया था। जेल जाने के पहले उन्होने इस क्षेत्र मे काफी प्रयोग किए थे पर वे सब असफल रहे क्योकि समाचारपत्र के दैनिक सचालन के लिए उन्हे कोई योग्य और कुशल व्यक्ति नही मिलता था। यह सब काम उनका भाजा देखता था, पर वह साधारण हाई स्कूल तक ही पढा था, और उसका ज्ञान और अनुभव बहुत सीमित था। वह उनका विश्वासपात्र जरूर था, और यही उसका सबसे बडा गुण था। उन्हे पूरा भरोसा था कि वह बडे से बडे गोप्य को सुरक्षित रख सकता ह, और किसी मस्था के सचालक मे यह आवश्यक गुण है। पर केवल उसीमे तो काम चलने वाला नही हे। दैनिक समाचारपत्र के सचालन के लिए तो इससे कही अधिक सर्वदर्शी और व्यापक प्रतिभा की आवश्यकता है। इसलिए जोशी जी की मन ही मन धारणा हो गई कि उनके भाजे के हाथ मे यदि अखबार रहा तो वह किसी कदर टुटरू-टू चलता तो रहेगा, पर मुख्यमन्त्री के व्यक्तित्व के अनुकूल प्रतिष्ठा नही पा सकेगा। इसलिए उन्होने एक दिन अपने भाजे को बुलाकर कहा

'गिरधारी, यह अखबार का धन्धा तुम छोड दो। इसमे तुम्हे कुछ पडता नही। साढे तीन सौ मे अपने बाल-बच्चो का पेट कैसे पालोगे ? और फिर आगे चलकर लडकियो के शादी-ब्याह तो हे ही।'

गिरधारी को तनख्वाह के अलावा अखबार के लाभ मे से दस प्रतिशत हिस्सा भी मिलने वाला था, पर चूकि अब तक लाभ हुआ ही नही था तो उसका यह हिस्सा केवल कागज पर लिखा धरा था।

गिरधारी को कुछ अच्छा लगा और कुछ बुरा। अच्छा इसलिए कि मामाजी उसके भविष्य की इतनी चिन्ता करते हे और बुरा इसलिए कि अखबार हाथ से चला जाने का डर हे। अखबार के धन्धे मे आर्थिक दृष्टि मे कोई फायदा भले ही न हो लेकिन जो सामाजिक प्रतिष्ठा है वह तो किसी लखपति की प्रतिष्ठा से भी कही अधिक हे। और खासकर जब वह मुख्य मन्त्री का अखबार हो।

'तब फिर मै क्या करू ? पहले कागज की एजेन्सी थी। वह आपने छुडा दी। आप जेल गए तो मैने जगल का ठेका ले लिया और किसी कदर अपना काम चलाता रहा। फिर आपके मन मे अखबार चलाने की इच्छा हुई तो वह छुडवाकर

आपने मुझे यहा बुला लिया। आप जेल चले गए और जमानत न दे सकने के कारण अखबार बन्द हो गया तो मेरे घर मे तो फाके पडने लगे। अब आप फिर मुख्य मन्त्री बन गए तो मैने सोचा कि अब तो कम से कम चैन से कटेगी, तो आप कहते है कि यह धन्धा छोड दो। फिर मै करू तो क्या करू ? या जिन्दगी भर फुटबाल की तरह यहा से वहा ठोकरे खाता ही फिरता रहू ' गिरधारी ने कुड-मुडाकर कहा।

गिरधारी पर जोशी जी का प्यार था, और जो बात वह कह रहा था उसमे तथ्य का अभाव भी ता नही था इसलिए वे थोडे सहम गए। जरा नरम आवाज से बोले

'नही, मेरा भाजा ठोकरे खाता क्यो फिरेगा ? आखिर मै यहा किसलिए बैठा हू ? मै तुम्हे किसी और अच्छे रोजगार मे लगा दूगा। तुम चाहो तो खदानो का काम कर लो, या कोई मोटर-सर्विस चला लो, या फिर वापस जगल के ठेके पर चले जाओ। अपनी दुनिया अलग-अलग बसा लेना। स्वतत्र हो जाओगे, अपना मकान बना लोगे, बाल-बच्चो के भविष्य की और अपने बुढापे की चिन्ता नही रहेगी। ठीक से ध्यान देकर अपना रोजगार चलाओगे तो मालामाल हो जाओगे। कोई तकलीफ होगी तो मै तो हू ही।' जोशी जी ने ढाढस दिया।

गिरधारी की आखो के सामने उसका यह नया भविष्य चौध गया। खदानो के मालिक, गिरधारी मोटर-सर्विस के मैनेजिग डायरेक्टर, इमारती लकडी के ठेकेदार, स्वतत्र बगला, मोटर, धन और वैभव की जगमगाहट। भीतर ही भीतर ललचा गया पर ऊपर से रुआसा होकर बोला

'इस अखबार के लिए मैने अपना खून दिया है। जब आप जेल मे थे तब मैने आधी तनख्वाह पर भूखा रहकर इसे चलाने की कोशिश की है। और उन सेवाओ का आज यह प्रसाद मिला।'

जोशी जी समझ गए कि बात अब गले तो उतर गई है पर मान-मनुहार पर आ गई है। मनुष्य स्वभाव को खूब जानते थे। बोले

'नही, मै कोई जबर्दस्ती थोडे ही करता हू ? तुम समझते हो कि यही अच्छे हो तो बने रहो। मै तो तुम्हारे ही भले की बात कर रहा था।'

गिरधारी हडबडा उठा। एक ही क्षण मे मोटर बगले का धन-वैभव शेख-चिल्ली के साम्राज्य की तरह काफूर होने को देख रहा है। फौरन बोला

'मैने कब आपकी इच्छा के खिलाफ काम किया है ? पिताजी के मरने के बाद तो आप ही ने मेरा पालन-पोषण किया। आपकी अवज्ञा कैसे कर सकता हू ? आप जो कहते है, मुझे मजूर है।'

मनुष्य-स्वभाव भी बडा विचित्र है। जो उसके हाथ मे रहता है उसकी उसे कद्र नही होती। और जो हाथ से चला जाता है उसके लिए बडा आकर्षण रहता है। जो है उससे सतोष नही होता, जो नही है उसकी हाय-हाय मे मन तरसता रहता है। अपना सुख कोई नही गुनता, दूसरे का सब गुनते है। दूसरे का दुख कोई नही देखता, अपना दुख सब देखते है। और इसी चक्र मे जीवन की शाति नष्ट हो जाती है, और एक शाश्वत अतृप्ति, एक चिर असतोष मन मे घर कर लेता है। वही सारे असुख का कारण बन जाता है। जो मन की शाति और सतोष पा लेता है वही असल मे जीता है, वही जीवन-सग्राम का विजेता है। फिर उसके पास बगला, मोटर या धन-सम्पदा हो या न हो। और यह मन की शाति न रही तो सारे सुख-वैभव के बाद भी वह आदमी एक शापित व्यक्ति की तरह सतप्त है, सुख-हीन है। जीवन का समस्त धर्म, आत्मज्ञान, और नीतिशास्त्र इसी एकमात्र हेतु के लिए, मन की शान्ति की कुजी खोज निकालने के लिए प्रयत्नशील रहते है। वह जिसे मिल गई वही आत्मज्ञानी है, वही साधक है।

गिरधारी को जोशी जी की सलाह मानने के सिवा गति नही थी, इसलिए उसने वह मान तो ली पर उसके मन मे एक गाठ बध गई। मुख्य मन्त्री के दैनिक समाचारपत्र की मैनेजरी मे जो शान और इज्जत थी वह इमारती लकडी के ठेकेदार को कैसे नसीब होगी ? मुख्य मन्त्री से हजार लोगो के काम पडते है—नौकरी की तलाश, तरक्की-तबादला, स्कूल-कॉलेज की भर्तिया, सस्थाओ के अनुदान, रोज-गार-धन्धो मे सरकार का आश्रय। इन कामो की कोई गिनती नही। और इन कामो मे किसीको कोई जरिया न मिलता तो वह पहले गिरधारी को ही टटोलता। गिरधारी की शक्ति इन्ही तरह के कामो मे ज्यादा खर्च होती, अखबार की मैनेजरी मे कम। और जब वह किसी बडे सरकारी अधिकारी की तरक्की या तबादला करा देने के बाद उसके घर जाता तो उसकी कितनी आवभगत होती, कितनी खातिरदारी ! मानो साक्षात् मुख्य मन्त्री ही पधारे हो। वह अधिकारी और उसका सारा का सारा परिवार गिरधारी बाबू को सर-आखो लिए नाचता फिरता। मैट्रिक की परीक्षा मे तीन बार बैठकर उसे लात मारकर बाहर निकल आने वाले

गिरधारी के लिए इतना मान-सम्मान मिलना कोई छोटी बात थी ? उसके स्कूल के सडियल मास्टरो ने उसकी इज्जत नही की तो क्या हुआ, आज ये बडे-बडे अधिकारी, राजनीतिज्ञ, प्रतिष्ठित नागरिक तो कर रहे है !

पर जोशी जी ने पाच मिनट के भीतर ही उसकी यह सारी शान-शौकत खतम कर दी। उसको नये जीवन मे ज्यादा आराम मिलेगा, रेडियो, रेफ्रिजरेटर रहेगा, पत्नी और लडकियो के शरीर पर सोने के आभूषण रहेगे, बच्चो के बदन पर सिल्क और नायलॉन के कपडे रहेगे। पर यह मान-प्रतिष्ठा नही रहेगी।

और इसी मान-प्रतिष्ठा की वचितता से उसके हृदय मे एक गाठ बध गई। लेकिन क्या करता ? इस समय तो कोई उपाय था ही नही। उसकी सारी उछल-कूद ही मामाजी के बल पर थी। उनको नाराज करे तो वह तो कही का नही रहेगा। यह वह भली भाति जानता था। व्यवहार-कुशल था, अपना भला-बुरा खूब समझता था, इसलिए वह जानता था कि केवल अपनी योग्यता के बल पर ही यदि दुनिया मे खडा होना हो तो साइकिल सुधारने की दुकान को छोडकर और कोई रोजगार नही कर सकेगा। पर मामाजी के कारण तो वह खदान-मालिक, मोटर-सर्विस का मालिक, जगल ठेको का मालिक बन सकता है। इसपर पानी फेरने से बढकर कोई मूर्खता नही होगी, यह वह जानता था। और गिरधारी मूर्ख नही था। हवा के रुख को पहचानता था, सो उसने ऊपरी मन से ही क्यो न सही, चलती बयार के सामने अपना सिर झुका दिया।

गिरधारी को विदा करते ही जोशी जी ने धनजय को टेलीफोन किया और बताया कि वे उसके घर गीता जी से मिलने आना चाहते है।

जोशी जी और धनजय जेल के साथी थे। जेल मे आदमी की जो पहचान होती है वह बाहर नही हो पाती। वहा तो चौबीसो घण्टो का साथ रहता है। इतना तो पति-पत्नी भी साथ नही रहते क्योकि पति को बाहर रोजी कमाने के लिए जाना पडता है। पर जेल मे न घर है, न बाहर है, और न रोजी कमाने का सवाल है। मानव का अतरग और बहिरग दोनो ही साफ-साफ दिखाई देने लगते है। मानव-स्वभाव की अच्छाई और बुराई दोनो ही वहा नही छिपती है। जो स्वाभाविक रग है वही उभरकर सामने आ जाता है। राजनीतिक जीवन की क्षुद्रताए, मनुष्य का स्वार्थ, आदर्शो का उथलापन, चरित्र की कमजोरिया यह सब वहा निखरकर सामने आ जाता है। धनजय का जेलयात्रा का यह पहला ही मौका था। और

उसकी मियाद तीन-साढे तीन साल तक लम्बी हो गई। उसमे तो उसे न जाने राजनीतिक कैदियो के कितने भाति-भाति के रागरग देखने को मिले। कई बार तो ऐसा लगा कि इनसे वह दूर रहता तो बडा अच्छा होता। कम से कम उसकी श्रद्धा तो बनी रहती। दूर के ढोल सुहावने लगते है, पर पास से देखो तो पोल ही दिखाई देती है।

फिर भी, वे घर-बार छोडकर आए है, अपने रोजगार-पेशे को खतरे मे डालकर जेल मे सड रहे है, यह छोटी बात नही है। प्रियजनो से विरह है, खाने-कमाने का जरिया ठप है, घर मे बीमारी-मृत्यु का चक्र चलता ही रहता है, उत्सव-समारोह उदास हो जाते है, शादी-ब्याह आदि मगल-कार्य टलते जाते है, घर का मालिक वापस आ जाए तभी वे सपन्न हो सकेगे। यह न्यूनता, यह अकुलाहट, जिन्होने भोगी नही है वे उसकी व्यथा नही जानते। बाद मे कोई मन्त्री बन गया, विधान-सभा का सदस्य बन गया या और कोई पद पा गया इसलिए उसके कारावास का कष्ट या महत्व कम नही हो जाता। जब कष्ट भोगा था तब कल्पना भी नही होगी कि उसका कोई मुआवजा भी मिलेगा। सन् बयालीस की क्रान्ति की जेल तो थी भी भयकर। कब छूटेगे इसका कोई भरोसा नही, क्योकि रिहाई लडाई के साथ लगी हुई है। विश्व महायुद्ध जब खतम होगा तभी तो उसमे विघ्न उपस्थित करने वाले लोग छोडे जा सकेगे। इसके पहले उम्मीद करना भी बेकार है।

धनजय का प्रत्यक्ष राजनीति से कोई सम्बन्ध नही था, इसलिए वह किसी भी दलबन्दी मे शामिल नही था। वह तो पत्रकार था, और राजनीति से उसका सम्बन्ध केवल अप्रत्यक्ष था। पत्रकार के नाते सभी दल के लोग उसकी मित्रता और सद्भावना पाने को इच्छुक थे। और स्वभाव से वह छिद्रान्वेषी नही था, दूसरे के दुर्गुणो की बजाय सद्गुणो की ओर देखने का प्रयत्न करता था, इसलिए वह सर्वप्रिय था।

जोशी जी उसकी प्रखर देशभक्ति और निर्भीकता से बडे खुश थे। वे स्वय सच्ची राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत थे, और निर्भीक तो थे ही। दोनो ही समानशील थे, हालाकि उन दोनो मे एक पीढी का अन्तर था। धनजय जोशी जी का आदर एक बुजुर्ग के नाते करता था। और जोशी जी उसे एक होनहार युवक के रूप मे देखते थे। और जब उन्हे पता चला कि उसकी गिरफ्तारी के बाद उसकी पत्नी गीता साप्ताहिक चला रही है तो उन्हे बडा कुतूहल हुआ। 'आप लोग बहुत बहादुर है। आप ही जैसे लोग हमारे सग्राम मे है इसीलिए हमे स्वतत्रता-प्राप्ति की

आशा है ' उन्होने एक बार सच्चे अन्त करण से कहा था।

पर एक विशेष कारण और था, जिसने जोशी जी और धनजय को और भी निकट ला दिया। जोशी जी उम्र मे सबसे बडे थे, और बाकी सब राजनीतिक बदी उनसे छोटे थे। और इधर जेल मे उनका स्वास्थ्य काफी बिगड गया था। एकाध ऑपरेशन भी हुआ। वे अपने स्वास्थ्य को सम्हालकर बाहर निकल भी सकेगे या नही इसका शक था। ऐसी अवस्था मे सब राजबदी उन्हे टाला करते थे। कुछ तो इसलिए टालते थे कि बूढा अलग दल का नेता था, जिसके नेतृत्व को हथियाने के लिए वे प्रयत्नशील थे। और बाकी इस ख्याल से टालते थे कि अब इस बूढे की खुशामद मे क्या धरा है क्योकि यह जिदा बचकर बाहर निकलेगा या नही इसका क्या विश्वास ? और निकला भी तो उसका स्वास्थ्य इतना गिरा हुआ होगा कि वह राजनीतिक जीवन की झझा और कोलाहल को बर्दाश्त नही कर सकेगा। उगते हुए सूरज को सब प्रणाम करते है, डूबते हुए से पीठ फेर लेते है। वही बात जोशी जी के बारे मे भी हुई।

केवल धनजय ही ऐसा व्यक्ति था जो इन कारणो से बिलकुल अछूता था। एक बुजुर्ग के नाते वह उनकी इज्जत करता था, उनके त्याग और निडरता के लिए उसे आदर था, इसलिए वह उनकी ओर से कभी उदासीन और बेपरवाह नही हुआ। राजनीतिक राग-द्वेप से वह मुक्त था। इसलिए केवल मानवीय गुणो और प्रेरणाओ के कारण ही वह जोशी जी का जितना भी बने साथ देता था।

एक बार जोशी जी बहुत बीमार पड गए। उन्हे हटाकर एक अलग सेल मे रख दिया गया। डॉक्टर तो बराबर सेवा-परिचर्या करते ही रहते थे क्योकि जोशी जी के प्रान्तव्यापी प्रभाव और व्यक्तित्व के कारण उस ओर से उपेक्षा करना कठिन थी पर रुग्णावस्था मे केवल परिचर्या और ओषधियो से ही आराम नही होता, ममता की भी आवश्यकता होती है। और इसका अभाव तो वही पूरा कर सकता है जिसके हृदय मे नि स्वार्थ ममता हो।

उस रात धनजय रातभर उनके बिस्तर के पास बैठा जागता रहा। बुखार तेज था, १०५ डिग्री से थोडा अधिक था, और उन्हे बहुत परेशानी थी। बदन मे बडा दर्द था। धनजय ने उनके हाथ-पैर दबा दिए। एक बार कै हो उठी, तो बर्तन लेकर सामने कर दिया और उसे फेक आया। दो-एक बार बेड-पैन लगाने की जरूरत पडी तो वह भी किया। मदद के लिए डॉक्टर ने एक सफैया (जुर्म मे सजायाफ्ता

लम्बी मियादवाला कैदी जो राजनीतिक बन्दियो की सेवा-टहल के लिए तेनात किया जाता है) रख छोडा था, पर वह बेचारा थर्मामीटर लगाना या बेड-पैन देना क्या जाने ? सुबह बुखार कम हो गया और फिर धीरे-धीरे उन्हे आराम होने लगा। घटना केवल एक रात की थी पर जोशी जी का हृदय धनजय के लिए कृतज्ञता और स्नेह से भर गया।

धनजय की समझ मे भी नही आया कि इस छोटी-सी स्वाभाविक मानवीय भावना के लिए इतनी कृतज्ञता मानने की क्या जरूरत थी ? यह तो किसी भी साधारण मानव का साधारण कर्तव्य है।

पर मानव आजकल गिरावट के मार्ग पर है, और साधारण सतह से नीचे जा रहा है। इसलिए उसका साधारण कर्तव्य भी असाधारण लगने लगता है।

समय ने पलटा खाया जोशी जी न केवल स्वस्थ होकर जेल से बाहर ही छूटे बल्कि राजनीतिक काल-चक्र के परिवर्तन के कारण स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रादेशिक मन्त्रिमण्डल के नेता भी हो गए। और यह अद्भुत गौरव पाने के बाद उनका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा हो गया। सत्ता के कारण सब समय मन मे एक अपूर्व उल्लास और उत्साह बना रहना। फूलमालाए, जयजयकार, तालिया, फोटो, समाचारपत्रो की पब्लिसिटी, सब कुछ मानो उनके लिए एक जबर्दस्त टानिक का काम करते थे। दिन-ब-दिन बूढे होने की बजाय जवान होने लगे। उनके राजनीतिक प्रतिस्पर्धी यह सब देखकर दग रह गए, निराश भी हो गए।

धनजय खुश था क्योकि उसकी धारणा थी कि प्रान्त का नेतृत्व सम्हालने के लिए उनके जैसा व्यक्तित्व नही है। यदि देश का पुनर्निर्माण करना है, उसके स्वर्णिम स्वप्नो को साकार करना है, उसे धन-धान्य-समृद्धि से पूरित करना हे तो उसके लिए जोशी जी जैसे कर्मठ और कुशल नेता के नेतृत्व की आवश्यकना हे। उनके हाथ मजबूत करना यही अब प्रत्येक राष्ट्रवादी व्यक्ति का कर्तव्य है। और जो बात कर्तव्य के रूप मे सामने आती है उसमे तन-मन-धन अर्पण करना यह धनजय का स्वभाव है। और वह जोशी-मन्त्रिमण्डल का सबसे बडा समर्थक बन गया। लेने-देने की कोई बात नही थी। वही नीति ठीक है ऐसी उसकी अन्त करण की श्रद्धा थी। और श्रद्धा को कर्तृत्व मे परिवर्तित करना ही पुरुषार्थ का लक्षण ह।

इसलिए जब उस दिन सुबह जोशी जी का टेलीफोन आया कि वे गीता जी

से मिलने के लिए उसके घर आना चाहते हैं तो वह तुरन्त बोल उठा

'आइए, हार्दिक स्वागत है।'

८

जोशी जी ने देखा, 'युगान्तर' कार्यालय क्या था, एक टीन के कच्चे किन्तु लम्बे झोपडे मे प्रेस था। बस उसीसे लगे एक कमरे मे उसका दफ्तर था। वही सम्पादक की मेज-कुर्सी थी, और उसीपर उसका टेलीफोन लगा था। उसीके अहाते मे बीस कदम पर एक मकान के हिस्से के तीन कमरे उसने अपने रहने के लिए ले लिए थे। वही उसका निवासस्थान था, और वही उसकी तथा गीता की अलमस्त दुनिया बसती थी। घर दफ्तर लगे हुए थे इसलिए धनजय बाबू के काम के घण्टो की कोई गिनती नही थी। खुद ही लेख लिखता, सपादन करता, प्रूफ पढता, छपाई की देख-रेख करता, डिस्पैच तथा विज्ञापन विभाग पर नजर रखता। गीता तो इन सब कामो मे उसे मदद करती ही, इसके अलावा एक-दो कर्मचारी और थे। पाच-छ कम्पोजीटर थे, एक मशीनमैन था, और एक ऐसा ही ऊपरी मदद करने वाला सहायक था, जो मशीन मे स्याही लगाना, प्रूफ निकालना, टाइप लाना आदि मुतफर्रकात काम कर देता था। एक चपरासी भी था जो डाक लाने-ले जाने का काम करता था। पर सब बडी निष्ठा से काम करते थे। धनजय को वे बाबूजी कहते और गीता को माताजी। उन दोनो को परिश्रम करते देखते तो फिर किसीको आलस करने की इच्छा नही होती। जो कर्मचारी बीमारी या अन्य किसी करण से गैरहाजिर रहता, उसकी जगह धनजय स्वय जा बैठता। कभी 'युगान्तर' की प्रतिया फोल्डिग करने बैठ जाता, तो कभी उनपर डाक के टिकट चिपकाता। एकाध बार उसे मशीन पर भी बैठना पडता। उसका और उसके कर्मचारियो का सम्बन्ध पारिवारिक जैसा था। कही डाट-फटकार की या मालिक मजदूर के रिश्ते की बात ही नही थी।

जोशी जी ने पहले तो युगान्तर प्रेस पर एक नजर दौडाई। देखने को विशेष कुछ नही था क्योकि 'युगान्तर' की प्रतिभा और शक्ति उसकी पुरानी मशीन या

कच्चे झोपडे या कर्मचारियो की परिमित सख्या पर निर्भर नही थी। जब उसका अक प्रकाशित होता तो शहर मे दिन भर बडी सनसनी बनी रहती। धनजय की लेखनी मे जादू था, उसकी भाषा मे प्रसाद गुण था, तेजस्विता थी, लोक-मागल्य की भावना थी, निर्भीकता थी, स्पष्टवादिता थी। प्रान्त के बडे-बडे दैनिको का जो प्रभाव नही था वह इस छोटे-से साप्ताहिक का था, क्योकि यह पत्र एक खरे साधक एव तपस्वी पत्रकार की आत्मा का आविष्कार था। बाकी ये धन्धे-पानी वाले ममाचारपत्र, जिनमे व्यावमायिकता की दृष्टि और मात्रा ही प्रमुख रहा करती थी। वे राष्ट्रीय नीति के समर्थक तो कहलाते थे, पर स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद यह नीति नफे मे पडती थी इसलिए उसके समर्थक थे, आतरिक निष्ठा उनमे नही थी। जब अग्रेजो से मुठभेड का सवाल था तब जमानत के डर से और प्रेस मे ताला पड जाने की आशका से इनकी राष्ट्रीय नीति मे शक्कर की मधुरता और अर्जीनबीसो की नम्रता आ जाती थी। उनके सम्पादक अग्रेज गवर्नरो की कोठियो मे तथा सरकारी अफसरो के बगलो मे भी जाते और उनके आधुनिक ढग से सजे हुए ड्राइग रूम के एकान्त मे अपनी विधायक और वैधानिक प्रवृत्तियो का इजहार करते। और बाहर निकलकर राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ से मिलकर उन्हे भी बताने की कोशिश करते कि विदेशी सरकार की क्रूर दमननीति के वातावरण मे उनकी जैसी तार की कसरत करने वाला और कोई नही। उनके अखबार यदि बन्द हो जाए तो राष्ट्रीय आन्दोलनो को कितना भयकर धक्का लगेगा ? फिर तो नौकरशाही बेताब हो जाएगी। उसे लगाम लगाने का काम हमी करते है। शायद अकबर के लीडरो की तरह वे हुक्कामो के साथ डिनर भी खाते थे, और देश की हालत पर रज भी करते थे पर उनका रज जरा आराम के साथ होता था।

'युगान्तर' की यह बात नही थी। उसकी कलम को बाधने की अग्रेजी हुकूमत ने हजार कोशिशे की। पहले तो जजीर से बाधने की, और जब वह असफल रही तो रेशम की डोर से। पर 'युगान्तर' की कलम नही बधी, उसकी वाणी क्षीण नही हुई। प्रान्त के पत्र-जगत् मे 'युगान्तर' सूर्य की तरह चमकता था। बाकी सब नक्षत्र थे, जो सूर्य के प्रकाश के सामने फीके और निस्तेज दीखने लगते थे। इसी कारण वे भीतर ही भीतर 'युगान्तर' और उसके कर्मनिष्ठ सम्पादक धनजय से ईर्ष्या ही करते। मूर्खों की मण्डली मे मूर्खहीनता ही सबसे बडा दूषण है, और भ्रष्टाचार से भरे हुए वातावरण मे चरित्रसपन्न व्यक्ति का चरित्र ही सबसे बडा

दुश्मनी का कारण होता है।

प्रेस देखने के बाद जोशी जी धनजय के मकान मे आए। वही तीन कमरे-वाला पुराना मकान, जहा गीता ने उनका हार्दिक स्वागत किया। गीता शुभ्र खद्दर की साडी पहने हुए थी। अपने सादे और सौम्य व्यक्तित्व के कारण वह चारो तरफ एक सात्विक प्रकाश-सा फैलाती थी, जिसके प्रभाव से बचना मुश्किल था। गीता ने सस्मित जोशी जी को नम्रतापूर्वक झुककर नमस्कार किया जैसा कि सभ्रान्त परिवार की नारिया अपने बुजुर्गो को किया करती है। जोशी जी समझ गए कि इस अभिवादन का उनके मुख्य मन्त्रित्व से रत्तीभर भी सम्बन्ध नही है। यह तो भारत की अतिथि-सत्कार की तथा गुरुजनो के प्रति स्वाभाविक आदर व्यक्त करने की परम्परा का निर्वाह मात्र था।

जोशी जी सहृदय व्यक्ति थे, गीता के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए। धन-जय की सारी शक्ति और कर्तृत्व का स्रोत कहा है यह उनकी समझ मे तत्काल आ गया। वे बुद्धिमान तो थे ही, आदमी के स्वभाव को पढने-समझने मे अक्सर गलती नही करते थे।

'आपसे मिलने की कई दिनो से इच्छा थी, पर मौका ही नही आया। आज सहसा प्रेरणा हो गई इसलिए तुरन्त चला आया। रात की गाडी से लम्बे दौरे पर जाना है, आज न आ पाता तो कई दिनो के लिए बात टल जाती।' जोशी जी ने चटाई पर बैठते हुए कहा। उसीके एक कोने पर धनजय बैठ गया, और गीता सामने जरा दूर जमीन पर ही बैठ गई।

जमीन बहुत साफ थी, सारा कमरा ही स्वच्छ था, एक मन्दिर की तरह पवित्र लग रहा था। कमरे मे कोई फर्नीचर नही था। एक कोने मे छोटी-सी डेस्क रखी थी जिसपर जमीन पर बैठकर ही लिखना होता था। पुस्तको की दो अलमारिया थी, जिनपर पत्रकारिता की तथा राजनीति, अर्थशास्त्र समाज-शास्त्र आदि की पुस्तके, शब्दकोष, महापुरुषो के जीवन-चरित्र आदि ग्रन्थ रखे हुए थे। दीवाल पर गाधीजी का चित्र था, एक कृष्ण भगवान का था, एक स्वामी रामकृष्ण का था, और एक किसी औलिया सत महाराज का था जिसे जोशी जी पहचान न सके। वे पूछना तो चाहते थे कि वह चित्र किसका है, पर सकोचवश पूछ न सके। पर एक ही क्षण मे वे समझ गए कि यह दुनिया ही कुछ न्यारी है।

'धनजय बाबू की गैरहाजिरी मे आपने जिस कौशल और निडरता से 'युगान्तर' चलाया उसके लिए मै आपका अभिनन्दन करने आया हू । आप जैसी स्त्रियो से ही तो हमारा समाज समृद्धि और गौरव प्राप्त करता है,' जोशी जी ने सच्चे मन से कहा ।

'यह तो आपकी बडी दया है । जो कुछ भी मै कर सकी उसका श्रेय तो आप जैसे गुरुजनो के आशीर्वाद को ही है ।' गीता ने शालीनता से उत्तर दिया ।

'अरे हमारे आशीर्वाद से क्या होता-जाता है ? वह तो आपका अपना कर्तृत्व है । आशीर्वाद तो हम सबको देते है, पर वह सबको कहा फलता है ?' जोशी जी बोले ।

अपनी प्रशसा से गीता सकुचा गई और बोली, 'मै अभी चाय बनाकर लाती हू ।'

एकान्त पाकर जोशी जी ने कहा, 'धनजय बाबू, 'युगान्तर' ने तो राष्ट्रीय-सग्राम मे बहुत बडा योग दिया है। उसकी सेवाए चिरस्मरणीय है, इसमे कोई शक नही । पर क्या आप यह नही मानते कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के इस नवीन पर्व मे उसका कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक होना जरूरी है ?'

'सो कैसे ?' धनजय ने पूछा ।

'हमे स्वतन्त्रता मिल गई । हमारा इतिहास बदल गया । अब हमे अपने देश को दृढ और मजबूत बनाना है । इसमे हमे ऐसी परम्पराए और मान्यताए स्थिर करनी है जिससे आनेवाली पीढियो का सही-सही मार्ग-दर्शन हो सके और उन्हे ऐसी बनी-बनाई चीज मिल जाए, जिसका वे सरलता से उपयोग कर सके ।'

'सो तो ठीक है, पर इसमे मै क्या कर सकता हू ?'

'आप बहुत कुछ कर सकते है । आप एक विधायक-वृत्ति के राष्ट्रसेवी व्यक्ति है, निर्माण के कार्यो मे आपकी स्वाभाविक दिलचस्पी है । आज शासन अपने हाथ मे है । प्रजा का बहुमत हमे प्राप्त है । हमारा मन्त्रिमडल स्थिर और मजबूत है। मणिलालभाई का जो दल है वह गत चुनावो मे परास्त हो गया है । देश के नेताओ ने प्रान्त की बागडोर मेरे ही हाथो सौपी है । इस प्रान्त का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल हो सकता है । यह प्रदेश धन-धान्य से पूर्ण है, नदियो और वन-प्रदेशो से समृद्ध है । यहा खनिज द्रव्य भी विपुल मात्रा मे है । इसका औद्योगीकरण बहुत बडे पैमाने पर हो सकता है । यहा की जनता शान्तिप्रिय और खुशहाल है । हम सब

मिलकर काम करे तो इस प्रदेश को हम आदर्श बना सकते है। भारत का नन्दनवन बना सकते है।'

धनजय पर जोशी जी की बातो का अच्छा प्रभाव पडा। स्वय आदर्शवादी तो था ही, आदर्शो की बातो से उसे हमेशा बडी दिलचस्पी रहती थी।

'बात तो आप ठीक कहते है। आप यह सब अवश्य करे, मेरी इससे पूरी सहानुभूति है।' उसने कहा।

'केवल सहानुभूति से क्या होगा ? वह काम तो अकेले का है नही। आपको इसमे सक्रिय सहायता करनी होगी।' जोशी जी बोले।

'आपका मतलब ?'

'मै चाहता हू कि आप असेम्बली मे आ जाए और उसके बाद पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी के रूप मे मेरी मदद करे। थोडे दिनो के बाद ही मन्त्रिमण्डल मे भी आने का मौका मिल सकता है।'

'मन्त्रिमण्डल मे ?' धनजय ने चौककर पूछा, जैसे उसके सामने कोई भूत आकर कूद पडा हो। 'मै भला मन्त्रिमण्डल मे आकर क्या करूगा ? वह तो मेरा काम नही है।'

'क्यो ? आपकी लेखनी मजबूत है, वाणी मे जोर है, आपमे वक्तृत्व-शक्ति है, व्यक्तित्व हे, त्याग है, राष्ट्रीयता की भावना है, योग्यता है। मन्त्रिमण्डल के लायक आप नही होगे तो कौन होगा ?'

'नही जोशी जी, वह मेरा 'स्वधर्म' नही है।' धनजय ने घबडाकर अपना पल्ला झाडते हुए कहा, 'जिस गाव हमे नही जाना है उसका नाम भी नही पूछते। भला मन्त्रिपद से मुझे क्या लेना-देना ?'

जोशी जी धनजय की प्रतिक्रिया देखकर हक्का-बक्का रह गए। उसके स्वभाव को थोडा-बहुत जानते तो थे, क्योकि जेल मे जरा नजदीक से उसे देखा था। वे सच्चे दिल से उसकी सद्भावना का ऋण चुकाना चाहते थे और यह भी चाहते थे कि उसके परिवार ने बडे कष्ट भोगे है, इसलिए उसे कुछ अच्छे दिन देखने को मिले। पर उन्होने यह कल्पना नही की थी कि वह इस तरह अपना दामन झटक-कर अलग जा खडा होगा। वे तत्काल हार मानने वाले व्यक्ति नही थे। बोले

'आप यदि नही आना चाहते तो फिर गीता जी को मुझे दे दीजिए। हमे

महिला कार्यकर्ताओ की आवश्यकता है, उन्हे हमे मौका देना चाहिए, ऐसी 'हाई कमान्ड' की हिदायतें भी हैं। मै उन्हे ही असेम्बली मे ले सकता हू।'

'सो आप स्वय गीता से ही पूछ लीजिए। वह आ रही है।'

गीता हाथ मे चाय नाश्ते की तश्तरियो का ट्रे लेकर भीतर से आ रही थी।

'क्या बात है ?' अपना नाम सुनकर उसने पूछा।

'बताइए जोशी जी। आप स्वय गीता से कहिए।' धनजय बोला।

'नही, आप ही बता दीजिए' जोशीजी बोले। 'मैने तो आपको अपना विचार सुना ही दिया है।'

'गीता, जोशी जी तुम्हे असेम्बली मे भेजना चाहते है। जाओगी ?'

'असेम्बली मे ?' गीता अकचकाकर बोली, जैसे उसे कोई कुमार्ग पर जाने की बात कह रहा हो। उसका पैर लडखडा गया और कप-तश्तरिया मुश्किल से गिरते-गिरते बची। उसने ट्रे नीचे रखकर कहा

'यह बात कैसे उठ खडी हुई ?'

धनजय ने कहा, 'मैने इनकार कर दिया, क्योकि वह मेरा 'स्वधर्म' नही है, इसलिए इन्होने तुम्हारे बारे मे पूछा। मैने कहा, उसीसे पूछ लीजिए, उसकी इच्छा हो तो मै उसे नही रोकूगा।'

'वह आपका 'स्वधर्म' नही है और मेरा है ? वाह, यह भी खूब रही। ना बाबा। असेम्बली-वसेम्बली से मुझे बहुत डर लगता है। मैं उस झमेले मे नही पडना चाहती। मै जैसी हू वैसी ही मजे मे हू। मैं भला असेम्बली जाकर क्या करूगी ?' गीता ने जोर देकर कहा।

जोशी जी समझ गए कि ये लोग कुछ दूसरे ही किस्म के हैं। उनके प्रति आदर तो हुआ पर मन ही मन कुछ झुझलाहट भी हुई कि उनका एक भी प्रस्ताव नही माना गया। आखिर बातचीत को कही न कही तो टिकाना ही था। बोले

'खैर, जिस कार्य मे आपकी रुचि नही है उसे करने का मै आग्रह नही करता। पर पत्रकारिता तो आपका स्वधर्म है न ? उसी क्षेत्र मे आप काम क्यो नही करते ?'

'सो तो कर ही रहा हू।' धनजय ने जवाब दिया।

'एक साप्ताहिक के जरिए प्रान्त के पुर्ननिर्माण का इतना व्यापक कार्य भला हो सकेगा, आप ही बताइए ?'—जोशी जी ने पूछा।

'एक साप्ताहिक का प्रभाव तो सीमित है' धनजय को मानना पडा। 'वह तो केवल वैचारिक क्षेत्र मे असर डाल सकता है, पर प्रत्यक्ष दैनिक जीवन मे, शासन पर प्रभाव डालकर उसे कार्यप्रवण करने मे तथा राजनीति मे मनोवाछित परिवर्तन लाने के लिए तो दैनिक पत्र ही कारगर हो सकता है।'

'यही मेरी भी धारणा है। जब स्वतत्रता-सग्राम की बात थी तब वैचारिक क्रान्ति का महत्व था, पर अब चूकि विधायक कार्य करने का प्रसग है इसलिए हमे अपनी पत्रकारिता के माध्यम का भी परिवर्तन करना होगा। प्रजातान्त्रिक युग मे तो दैनिक अखबार ही सबसे बडी शक्ति है, कार्य करने का सबसे प्रभावशाली साधन है। वह सुयोग्य हाथो मे होना आवश्यक है, क्या आप ऐसा नही मानते ?' जोशी जी ने पूछा।

'मानता क्यो नही हू।'

'तो फिर आपसे मै यही कहता हू कि आप मेरा दैनिक अखबार सम्भाल लीजिए।' जोशी जी ने धनजय की बात काटते हुए कहा। वे जानते थे कि इस आदमी से यदि काम लेना है तो लोभ या धाक से नही लिया जा सकता, इसपर जिम्मेदारी डालकर, इसकी सज्जनता को स्पर्श करके ही लिया जा सकता है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जो प्रेम के ही गुलाम होते है, और प्रेम के सौजन्य मे बिना भाव के बिक जाते हे, पर उनसे लाठी से बात करो तो लाठी पहले टूटेगी, उनका सिर बाद मे अकड गए कि ऐसे अकडते है जैसे अडियल टट्टू। एक इच आगे बढने को तैयार नही। चुचकारो-पुचकारो तभी काम चलेगा। पदो का प्रलोभन और चादी की जगमगाहट भी इनके लिए काम नही करती। ये तो बस अपने आदर्शो के कायल है, अपने स्वप्नो की अलमस्त दुनिया मे ही खोए रहते है। पर कर्तृत्व मे सबसे श्रेष्ठ यही लोग होते है।

जोशी जी धनजय की कार्यशक्ति जानते थे। उसकी टक्कर का पत्रकार आज इस प्रदेश मे एक नही था। उसे साधन मिल जाए तो वह एक ज़बर्दस्त दैनिक पत्र का सचालन बडी कुशलता और सफलता के साथ कर सकेगा। जिसमे प्रान्त का कल्याण तो होगा ही पर विशेषत जोशी जी के राजनीतिक दल को भी ताकत मिलेगी। उनका राजनीतिक प्रतिस्पर्धी मणिलालभाई, धनिको की जमात का प्रतिनिधि हे, पूजी उसके हाथ मे सरिता के पानी की तरह बहती है, और वह समूचे प्रदेश में अपने अखबारो का जाल फैला रहा है। अगले चुनाव मे उसीसे ठनकर

रहेगी। चुनाव अभी दूर थे, पर दूरदर्शिता यही सिखाती थी कि अभी से उसकी तैयारिया करने मे ही बुद्धिमानी है। और फिर जोशी जी यह चाहते थे कि कम से कम धनजय तो मणिलालभाई के प्रभाव की परिधि से बाहर रहे। अत वे उसे अपने पक्ष मे ही करना चाहते थे। धनजय को यदि मालूम पडता कि जोशी जी के मन मे यह आशका काम कर रही है तो वह बडा अपमानित अनुभव करता। मणिलालभाई के राजनीतिक हथकण्डे उसे सख्त नापसन्द थे। उससे तो राजनीति गन्दी होने का और भ्रष्टाचार के तत्वो को प्रोत्साहन मिलने का खतरा था। धनजय तो उस गली मे हर्गिज नही जाता। पर जोशी जी को भरोसा हो तब न ? राजनीतिक पुरुष तो हमेशा शक-शुबहे पर चलता है और हर सभावना के खिलाफ पहले से ही पेशबन्दी करना चाहता है। इसलिए वे धनजय के हाथ मे अपने पक्ष की पत्रकारिता सौपने के लिए उत्सुक थे। गिरधारी तो बिल्कुल निकम्मा निकला। यदि धनजय बागडोर सम्हाल ले तो काम बन सकता है।

लेकिन धनजय नौकर बनकर काम नही कर सकता, यह वे समझते थे। रुपये-पैसे के या पद के प्रलोभन से भी नही। हा, प्रान्त के नव निर्माण के आदर्श के नाम पर उसपर जिम्मेदारी डाल दो तो फिर वह सम्हाल लेगा। उसके जैसे व्यक्तियो से बात करने की भाषा ध्येयो और स्वप्नो की है, नोन-तेल-लकडी की दुनियादारी वाली भाषा नही।

धनजय कुछ सोच मे पड गया। एकदम उसने नाही नही की, इसीमे जोशी जी ने आशा की बडी किरण देखी। बात वही छोडकर वे जाने को उठ खडे हुए। बोले

'जल्दी कोई नही है, आप विचार कर लीजिए। मेरा अखबार गिरधारी चलाता था। पर उससे वह नही सम्हला। मै खुद सपादक की कुर्सी पर बैठू तो उसे जमा लू। पर मेरे कधो पर तो अब यह शासन की बागडोर आ पडी है। मुझे तो अब आपको छोडकर और कोई आदमी इसे सम्हालने के लिए नही दिखता। आप यदि तैयार नही होगे तो फिर मै अपना अखबार बन्द कर दूगा। अच्छा नमस्कार। कभी गीता जी को भी मेरे यहा लाइएगा।'

धनजय और गीता उन्हे मोटर तक पहुचाने गए तो देखा कि काफी भीड जम गई है। आसपास मुहल्ले के लोग अपने दरवाजे-खिडकियो से झाक-झाककर देख रहे है कि आखिर मुख्य मन्त्री जी ने धनजय के यहा एक घण्टा बैठकर घुल-

घुलकर क्या बाते की ?

जोशी जी को पहुचाकर जब वह वापस अपने कमरे मे घुस रहा था तो उसके मकान-मालिक बाजू के कमरे से निकले और उन्होने बडे प्रेम से उससे 'नमस्ते' की। उनके व्यवहार की यह आकस्मिक आत्मीयता देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ।

मकान-मालिक से उसका एक हल्का-सा वाद-विवाद चल रहा था। लडाई के बाद मकानो के किराये बढ गए थे। वह फटियल अखबार वाला किरायेदार मकान छोड दे तो दूसरे किरायेदार से मै डबल रकम वसूल कर लू। इसको नोटिस भी देते नही बनता है, क्योकि देर-सबेर वह किराया तो दे ही देता है। तारीख भले ही चूक जाए, महीना नही चूकता। और फिर वह लोगो मे इतना प्रिय है कि उसके खिलाफ कोई कार्रवाई करू तो सारी सहानुभूति उसके साथ, और सारी बदनामी मेरे हाथ लगेगी। कुछ कर नही पाता था, इसीलिए भीतर ही भीतर बडा कुडमुडाया करता। पर आज जब उसने स्वय अपनी आखो से मुख्य मन्त्री को धनजय और उसकी पत्नी से इतनी आत्मीयता से मिलते-जुलते देखा तो उसकी निगाह ही बदल गई। क्या धनजय को इसका श्रेय नही है कि उसीके कारण मुख्य-मन्त्री के चरण उसके मकान को लगे ? असल मे मुख्य मन्त्री के चरणो की उसे उतनी परवाह नही थी जितनी इस बात की आशा थी कि धनजय के कारण कम से कम उसके चरण तो मुख्य मन्त्री के बगले मे घुस सकेगे। अब तो धनजय का मकान-मालिक बनना भी एक गुण हो गया और उसके कारण यदि मुख्य मन्त्री के पास तक पहुच हो गई तो सभव है उसकी जमीन का मामला, जो नज़ूल मे अटका पडा है, वह भी सुलझ जाए। इसलिए उसने अपने आप ही धनजय से कहा

'किराये की कोई जल्दी नही है। इस महीने न हुआ तो अगले मे दे दीजिए। कही भागा थोडे ही जाता है ?'

'आपकी बडी कृपा है। जरूरत पडी तो आपको अवश्य कष्ट दूगा।' उसने उसका मन रखने को कह दिया।

९

धनजय निश्चय नही कर सका कि क्या करना उचित है। बोला, 'बताओ गीता, जोशी जी को क्या जवाब दू ?'

'तुम्हारा मन जो कहता है वही करो। ऐसे मामले मे तो हमे अन्त करण की आवाज ही सुननी चाहिए। जिसमे तुम्हे सुख है, उसीमे मुझे भी है।'

'ऐसी दुविधा पहले कभी नही आई थी,' धनजय बोला, 'पहले तो अग्रेजो से सीधी लडाई थी, सोचने-विचारने की कोई बात ही नही थी। खूब लडो, और जो दुष्परिणाम होगे उन्हे भोगने की तैयारी रखो—बस इतना ही करना था। और दुष्परिणाम क्या थे—यही गरीबी, सघर्ष, दुश्चिन्ता। सिर्फ एक बार मेरी हिम्मत टूटने पर आई थी जब दो हजार की जमानत मागी गई थी और यह अन्देशा पैदा हो गया था कि पत्र बन्द हो जाएगा। उस समय तो पत्र के बन्द होने की सभावना का दु ख ही मरणतुल्य था। पर तुम्हारी हिम्मत ने मुझे भी हिम्मत दे दी और हम बच गए। हा, जेल मे भी तुम्हारे स्वास्थ्य की चिन्ता ने मुझे डावाडोल कर दिया था। पर इस सबमे ईश्वर का सहारा ही हमारा सबसे बडा बल रहा और ईश्वर ने तो हमे कभी नही बिसारा। पर आज की यह समस्या इन सबसे कठिन है। कष्ट और त्याग मे विवेक ठिकाने पर रखना आसान है, पर आराम और सुख-वैभव के जमाने मे उसकी रक्षा करना अत्यन्त कठिन है। इसलिए मन ही मन घबडाता हू।'

'घबडाहट किस बात से होती है ?' गीता ने प्रश्न को अधिक उघाडने की नीयत से पूछा। वह घबडाई तो न थी, पर हा कुछ बुद्धि-भ्रम मे अवश्य पड गई थी।

'घबडाहट इसी बात की कि यह सब कैसे निभेगी।'

'यानी दैनिक पत्र-सचालन की योजना कैसे सफल होगी, यह ?'

'नही, उसका तो डर नही है। पत्र-सचालन के प्रति मुझे आत्मविश्वास है। निष्ठा और परिश्रम से किया जानेवाला कोई भी कार्य असफल नही होता। पर जोशी जी के साथ कैसे निभेगी ? वे राजनीतिक पुरुष है, पर राजनीति परिवर्तनशील है। आज हमारे सम्बन्ध बडे मीठे है, बहुत अच्छे है। जेल मे तो हम लोग इतने निकट थे जैसे पिता और पुत्र। पर जब राजनीति बदल जाएगी, और भिन्न-

भिन्न तनाव पैदा होने लगेगे तब क्या होगा ? उस समय यदि सघर्ष उठ खडा हुआ तो हम लोग कहा रहेगे ?'

'यह तो भविष्य की बात है। आज तो तुम्हे यही सोचना है कि इस योजना मे शामिल होना है या नही। इसमे तुम्हारे स्वधर्म मे बाधा तो नही पडती। आज तुमपर कोई जबर्दस्ती नही कर सकता। पर एक बार तुम उसमे शामिल हो गए तो फिर उससे मुह मोडना नही होगा, फिर चाहे जो हो जाए।'

'स्वधर्म के विपरीत तो वह जाती नही। पत्रकारिता मेरा स्वधर्म है। उसीके माध्यम से जन-जागृति करना और इस देश की सभ्यता और विचारधारा का प्रचार करना जिससे भारत का नव निर्माण शुद्ध और मजबूत पाये पर हो, वह उज्ज्वल और गौरवयुक्त परम्पराओ का निर्माण करे ताकि आने वाली पीढियो को हम एक अच्छी विरासत छोड जाए—यह सब तो हमे करना ही है। और उसके लिए दैनिक पत्र एक साप्ताहिक पत्र की अपेक्षा अधिक कारगर साधन हो सकता है, ऐसा मै मानता हू।'

'तुम अपने स्वतत्र विचार निर्भीकता के साथ रख सकोगे ? जोशी जी से बात-चीत हुई थी ?'

'हा, वे तो कहते है कि तुम उसके सर्वेसर्वा रहोगे। तुम्हे जो करना है करो।' धनजय ने कहा।

'वे इसलिए कहते है कि शर्ते और बधन तुम कभी स्वीकार नही करोग। बात वही टूट जाएगी। और बात वे टूटने नही देना चाहते, इसलिए आज तो तुम जो कहोगे वही होगा। बाद मे परिस्थितिया बदले और आदमी भी बदल जाए तो कह नही सकती। हम भी छाती ठोककर दम नही भर सकते कि हर परिस्थिति मे हम भी अपना सत्व इसी प्रकार टिकाए रहेगे।'

'सो तो ठीक कहती हो गीता। कल रात जोशी जी से देर तक बाते होती रही। बोले, मै अपना अखबार तुम्हे सौप देता हू। फिर तुम जो योजना बनाना चाहो, बना लो।'

"पूजी का क्या होगा ?' मैने पूछा।

"एक कम्पनी बना लो। शेयर्स बिकवाने का जिम्मा मेरा।' वे बोले।

"दैनिक सचालन की जिम्मेदारी किसकी ?' मैने पूछा।

"आपकी, और किसकी ? मै मन्त्रिपद सम्हालूगा या समाचारपत्र के काम से

माथापच्ची करूगा ?'

"आपका इसमे क्या 'इटरेस्ट' रहेगा ?'

"जो आप कहे ।'

"पत्र की नीति क्या रहेगी ?'

"आप तो उसके सपादक रहेगे । नीति वही रहेगी जो सपादक निर्धारित करेगा ।'

"जहा तक पत्र का सम्बन्ध है, आपका-मेरा अधिकार और दर्जा बराबरी का रहेगा । आपका दर्जा अधिक रहे और मेरा न्यून रहे तो मै काम नही कर सकूगा क्योकि वह नौकरी जैसी बात हो जाएगी, और स्वभाव से मै नौकरी कर नही सकता । मेरा दर्जा अधिक रहे यह आपके प्रति अन्याय होगा । इसीलिए जहा तक समाचारपत्र का सम्बन्ध है, हम बराबरी से रहे, यही उचित है ।'

"मैने तो आपसे पहले ही कहा न कि आप जो व्यवस्था चाहे वह करने के लिए मै तैयार हू । मै तो केवल यही चाहता हू कि एक मजबूत और प्रभावशाली पत्र यहा स्थापित हो जिससे प्रान्त की ठोस सेवा हो, और नवनिर्माण का कार्य उत्साह और प्रगति से चले ।"

सारी चर्चा की रिपोर्ट जब धनजय ने गीता को दी तब ऐसा नही मालूम हुआ कि कही भी कोई खोट हो या खटकनेवाली बात हो । फिर इस प्रस्ताव से असहयोग किया जाए तो किस कारण से ? अगर वह इनकार कर दे तो वह कर्तृत्वहीन और निकम्मा है, जिम्मेदारियो से मुह मोडता है, ऐसा साबित न होगा ?

जोशी जी कुशल व्यवहारवादी थे । इतना तो वह जानते थे कि धनजय को राजनीति से कौडी भर दिलचस्पी नही है। इसलिए वह कभी किसी राजनीतिक क्षेत्र या दल मे प्रवेश कर उनके मार्ग मे अडचन नही डालेगा। पत्रकारिता का क्षेत्र वे स्वय सम्हाल नही सकते, और अच्छे जमे हुए समाचारपत्र के समर्थन के बिना उनकी राजनीति टिक नही सकेगी। इसलिए यह क्षेत्र धनजय के हाथ मे सौप देने मे ही बुद्धिमानी है ।

और फिर धनजय का स्वभाव कुछ ऐसा है कि शर्ते डालो या लिखा-पढी करो तो वह कुछ माननेवाला नही है, और बात तब टूट जाएगी। इसमे फायदा किसीका नही, और नुकसान प्रान्त का है । इसलिए पूरी ढील छोड देने मे ही सार है । कुछ लोग ऐसे होते हैं जो निर्बन्ध होकर ही अधिक उपयोगी हो सकते है । बन्धन लगाया

कि वे गए। धनजय ऐसी ही श्रेणी का आदमी था। बात उसीपर छोड दीजिए, वह कभी अन्याय या अनौचित्य की बात नही करेगा।

फिर भी गीता ने कहा कि और दो दिन सोच लो, तभी जवाब दो।

पर दो दिन सोचने के बाद भी ऐसी कोई बात नही दिखाई दी, जिसके कारण प्रस्ताव अस्वीकृत करने की बात हो। जोशी जी ने जिस तरह बात उठाई थी, उसमे मीन-मेख निकालने की गुजाइश ही नही थी।

गिरधारी ने मामाजी से कई बार कहा कि कुछ लिखा-पढी तो कर लीजिए, अपने हितो की कानूनी रक्षा तो कर लीजिए—आखिर यह समाचारपत्र का पौधा मैने अपने खून से सीचा है, वह एकदम पराये हाथ मे सौप देने के पहले फिर एक बार तो सोच लीजिए, पर जोशी जी ने एक न मानी। उलटे उसे फटकार लगा दी कि तुम्हे धन्धे-पानी से लगा दिया है तो तुम उसीकी बात सोचो। मेरे राजनीतिक कामो मे दखल देने की तुम्हे कोई जरूरत नही।

गिरधारी इस घुडकी से तिलमिला उठा और उसके मन की गाठ और भी पक्की हो गई।

दो दिन के बाद ही धनजय ने जोशी जी के बगले पर जाकर स्वीकृति दे दी और उस क्षण से घटनाए इतनी तेजी से बदलने लगी कि स्वय धनजय आश्चर्य-चकित हो गया।

एक कम्पनी बनी, लाखो की पूजी इकट्ठी हो गई। जोशी जी के निजी समाचार-पत्र का सौदा हुआ और उसी पूजी मे से उनकी रकम अदा की गई। धनजय के 'युगान्तर' का भी सौदा हुआ क्योकि उसका भी उस नई कम्पनी मे विलीनीकरण हुआ। उसके उसे पन्द्रह हजार मिले और दोनो के मिले-जुले प्रयत्नो से दैनिक निकला उसका नाम भी 'युगान्तर' ही रखा गया।

धनजय को रुपये मिले तो सीधे उठकर गया और एक दिवगत शहीद नेता के स्मारक-फण्ड मे वह रकम दे आया जिसकी प्रेरणा से उसने 'युगान्तर' की स्थापना की थी।

उसके मित्रो ने पूछा, 'ऐसा क्यो किया?'

'युगान्तर साप्ताहिक तो जनता की सहायता से ही चलता था। उसका घाटा भरने मे, ज़मानत देने मे तथा आग लगने के बाद उसका जो पुनर्निर्माण हुआ उसमे तो जनता का पैसा ही दान के रूप मे मिला था। उसे अपने पास रखने का मुझे

क्या हक है ? वह जनता-जनार्दन की वस्तु है, उसीके पास जानी चाहिए

'त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितम् ।'

'पर इसमे तुम्हारा भी तो पैसा लगा था, गीता भाभी का भी।'

'वह भी जनार्दन को ही समर्पित है। जो अर्घ्य देश की सेवा मे चढ गया उसे वापस लेना कौन-सा धर्म है ?'

धनजय के मित्र निरुत्तर हो गए। स्मारक-फण्ड के लोगो ने कहा, ऐसा उज्ज्वल चरित्र हमने अब तक नही देखा। शहर मे जनता की मदद से कई अखबार निकले पर उनके बारे मे इतनी स्वच्छ और निर्मल वृत्ति और कही देखने को नही मिली। चूकि उसके दान की रकम सबसे बडी थी, फण्ड के सयोजको ने कहा कि हमारे ट्रस्टी बन जाइए। उसने दूर से ही नमस्कार करके क्षमा माग ली कि जो काम नि स्वार्थ और अहेतुक है उसके मुआवजे मे कोई पद ले लेना बडा दोष है। इसलिए वह पद तो आप ही सम्हालिए।

१०

युगान्तर प्रकाशन कपनी का कारोबार देखते-देखते विराट रूप मे चल निकला। धनजय का जीवन-क्रम ही बदल गया। बडा कार्यालय, उसका बडा भवन, बडी जिम्मेदारिया, उसके लम्बे दौरे, नया कर्मचारी वर्ग, नई एजेसिया, सभी कुछ नूतन। युगान्तर की काया ही पलट गई। छपाई-सफाई और सपादन मे आमूल परिवर्तन हो गया। नई मशीनें, अच्छा कागज, उत्तम स्याही, फिर प्रदेश मे यदि युगान्तर का स्टैण्डर्ड सब समाचारपत्रो मे सर्वश्रेष्ठ माना गया तो उसमे क्या आश्चर्य ?

हालाकि मुख्य मन्त्री जोशी जी तथा धनजय के बीच मे कोई लिखा-पढी या दस्तावेज नही था, फिर भी सारा प्रदेश जान गया कि यह अखबार मुख्य मन्त्री का ही है। सर्वोच्च सत्ता और सर्वोच्च पत्रकारिता के कारण प्रदेश मे एक जबर्दस्त शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ जिसके सामने और सब आवाज़े क्षीण पड गई। शासकीय दल का हौसला खूब बढा। प्रदेश के दूसरे समाचारपत्रो मे ईर्ष्या की भावना फैल

शासको के साथ होते ह—नौकरी का तबादला, तरक्किया, कॉलेजो मे प्रवेश, सरकारी ठेके, राजनीतिक पदो की नियुक्तिया, कई तरह की सिफारिशे इत्यादि। धनजय इन सब कामो मे कोई खास दिलचस्पी न लेता बशर्ते कोई साफ अन्याय की बात अपनी नजर मे न आ जाए। बाकी लोगो को वह सीधा मुख्य मन्त्री के बगले का दरवाजा बतला देता।

लेकिन काम करनेवाले लोग भी अजहद होशियार होते है। वे किसी न किसी तरह अपने 'केस' को इस कौशल के साथ प्रस्तुत करते थे कि मानो सचमुच वे दूध के धुले हो और उनपर घोर अन्याय हुआ है। इस अन्याय के कारण जाति-भेद, धर्म-भेद, ईर्ष्या, रिश्तेदारी आदि-आदि बताए जाते। धनजय पहले-पहले तो उनपर विश्वास करता था पर बाद मे शीघ्र ही समझ गया, कि इनमे से अधिकाश लोग बदमाश है, जिनके पास कोरे स्वार्थ को छोडकर और कोई भावना नही। अग्रेजी शासन मे जो भारतीयो से कट्टर द्वेष करने वाले थे वे भी अब राष्ट्रीयता की दुहाई देकर अपना उल्लू सीधा करने की कोशिश करने लगे। लोगो ने अपनी पगडिया बदल ली, पोशाक बदल ली, सफेद टोपी और खादी को प्रश्रय दिया, जैसे बने वैसे अपनी पैठ की कोशिश की।

पर धनजय के ध्यान मे इन लोगो का तौर-तरीका पूरा-पूरा समझ मे आ गया। किसीने उसके अग्रलेख की तारीफ की तो समझ लेता कि बाद मे कोई न कोई काम की बात अवश्य निकलने वाली है। उसके पुराने रिश्तेदार जो पहले उसे फूटी आखो नही देखते थे, अब अपना रिश्ता कायम करके उसके प्रति अपने गर्व और गौरव की गवाही देने लगे। कहते कि हम तो पहले ही से जानते थे कि वह बडा होनहार युवक है, एक न एक दिन नाम निकाले वगैर रहेगा नही। देखो, हमारी भविष्यवाणी कैसे सच निकली ? कोई जोशी जी के गुणगान से बातचीत शुरू करता, तो कोई स्वय धनजय को सातवे आसमान मे चढाने की कोशिश करता। उसके नये-नये गुणो का आविष्कार होने लगा, उसकी प्रशसा मे नये-नये विशेषणो की रेलगाडिया तैयार होने लगी। कुछ लोग तो पहले गीता जी को गाठने की कोशिश करते और उसके जरिये मुख्य मन्त्री तक अपना तीर साधने का स्वप्न देखते। उसके यहा मिलने वालो का ताता लगा रहता। दैनिक अखबार के सिल-सिले मे तो मिलने-जुलने वाले आते ही—लेख या समाचार छपवाने, विज्ञापन देने या नई-नई एजेन्सियो की चर्चा करने, पर उसके अलावा अवातर कामो के लिए

अधिक लोग आते जिनका प्रत्यक्ष पत्रकारिता से कोई सम्बन्ध नही रहता।

धनजय को इन कामो मे कोई उत्साह नही था। पर इनमे कुछ मामले जरूर ऐसे निकलते कि जिनमे सरासर धाधली और ज्यादती नजर आती। ऐसे मामले लेकर वह मुख्य मन्त्री या अन्य मन्त्रियो के पास जरूर जाता, और उनकी सफलता के लिए जी-जान से कोशिश करता। जो शिकायते उसके समाचारपत्र मे प्रकाशनार्थ आती उनके निवारणार्थ भी वह भरसक कोशिश करता। उसकी दौड-धूप खूब बढ गई थी।

पर केवल इतने ही से खैरियत नही थी। कई बार तो स्वय जोशी जी के यहा से ही टेलीफोन आता या लेने के लिए मोटर आ जाती। यो 'युगान्तर' के लिए भी एक छोटी-सी मोटर ले ली गई थी। पर काम जरूरी पड जाता तो जोशी जी अपनी मोटर ही भेज देते। किसी महत्वपूर्ण सरकारी फाइल पर उसकी सलाह लेनी पडती, या किसी राजनीतिक नेता के विचारो को अप्रत्यक्ष रीति से टटोलने का काम आ पडता, या सरकार या जनता के बीच के किसी सघर्ष मे जैसे शिक्षको या मजदूरो की हडताल आदि मे, बीच-बचाव की बात आ जाती। कभी-कभी तो उसे मुख्य मन्त्री के लिए पॉलिसी स्टेटमेन्ट या नीति निर्धारित करने वाला भाषण भी लिखकर देना पडता। कुल मिलाकर उसके समय और शक्ति पर इतना तनाव पडने लगा और उसकी दौड-धूप इतनी बढ गई कि खाना खाने की फुर्सत मिलना भी कठिन हो गया। चौबीस घण्टो मे से सोलह से अठारह घण्टे वह घर से बाहर ही रहता। थका-मादा घर आता तो कोई न कोई खाना खाने के लिए साथ रहता। और चर्चा वही राजनीति की, प्रान्त के नवनिर्माण की, नई-नई योजनाओ की।

गीता तो परेशान हो गई। उससे शाति से बठकर बातचीत करने की भी उसे फुर्सत नही थी। जब देखो तब ऐसी भागदौड जैसे पागल कुत्ता ही पीछे लगा हो। एक दिन वह बोली

'यह युगान्तर दैनिक क्या बन गया, आफत हो गई। मुख्य मन्त्री से दोस्ती क्या हो गई मेरी कम्बख्ती आ गई। न बैठकर सलाह-मशविरा करते हो, न हसी-विनोद। ऐसा क्यो मानकर चलते हो कि सारे सूबे की जिम्मेदारी तुम्हारे ही कन्धो पर है ? शहर के अन्देशे मे काजीजी को इतना दुबला होना जरूरी नही है। और फिर यह सब शक्ति जो खर्च हो रही है उसमे से कितनी ठिकाने से लगती है, और कितनी अकारथ जाती है, इसका भी कोई भरोसा नही। सुबह से शाम तक यह

जो उठा-पटक चलती है आखिर वह किस खातिर ?'

'क्या करू गीता, मुख्य मन्त्री मुझपर इतना विश्वास करते है, इतनी जिम्मेदारी डालते है, कि मुझे उनका लिहाज करना ही होता है। और यह हमारे प्रजातन्त्र की प्रारभिक अवस्था है। हमे नई और स्वस्थ परम्पराओ का निर्माण करना है। इसके लिए पहले-पहले तो परिश्रम करना ही होगा।' धनजय ने जवाब दिया।

'पता नही इसमे से आवश्यक काम कितना है, और बेकार काम कितना। कही ऐसा तो नही है कि जोशी जी की यह धारणा बन गई हो कि उन्हे बोझ ढोने के लिए एक अच्छा गदहा मिल गया है, इसलिए उसका पूरा-पूरा उपयोग किया जाए। मै तुम्हारी नीयत के बारे मे कुछ नही कहती, क्योकि तुम जो कुछ करते हो बडी निष्ठा और प्रामाणिकता से करते हो, यह मै जानती हू। पर इन राजनीतिज्ञ लोगो का कुछ ठिकाना नही होता। किसका कैसे उपयोग करेगे कहा नही जा सकता।'

जिस रात्रि को गीता ने इस तरह टोका उस रात्रि को धनजय को नीद नही आई। सचमुच उसकी जिन्दगी कितनी बदल गई है। पहले का शान्त और सतोषपूर्ण जीवन कहा और यह दिन-रात की भागदौड कहा ? इतने आदमी डिप्टी कमिश्नर बन गए। इतने पुलिस-कप्तान हो गए। इतनो को नौकरिया मिली, अमुक आदमी को अन्याय से बचाया, दूसरे के जुल्म को जाच करवाई, प्रान्तीय उद्योगो के विकास के कार्यक्रम मे फलाने को कागज़ की मिल का परवाना दिलाया या कपडे की मिल चालू करवाई, अमुक आदमी को असेम्बली का टिकट दिलाया, अमुक को मिनिस्ट्री मे स्थान दिलवा दिया, अमुक साहित्यकार की सहायता करा दी, अमुक लेखक की पाण्डुलिपि के प्रकाशन के लिए सरकार से मदद दिलवाई इत्यादि-इत्यादि अनेक काम उसकी आखो के सामने चित्रपट के दृश्यो की तरह घूमने लगे।

पर कुल मिलाकर इसका नतीजा क्या निकला ? राष्ट्र-निर्माण की विशाल पृष्ठभूमि मे, या जीवन के मूलभूत आदर्शों की दृष्टि से इनका क्या मूल्य है ? हा, जिनका लाभ हुआ वे शायद अपना गुण गाते हो, या फिर सभव है कि वे भी कहते हो कि इसे कैसा बुद्धू बनाकर इसका उपयोग किया। जोशी जी के भाषण मे नही लिखता तो और कोई लिख देता—उनका इतना बडा प्रकाशन विभाग जो पडा

है। फाइलो पर सलाह देने की जिम्मेदारी उसपर कैसे आती है ? सचमुच वह कहा से कहा आकर फस गया। क्या यह सब उसके स्वधर्म मे आता है ?

और इस चक्कर मे वह इस तरह कूदा और इस तेजी के साथ इसमे उलझ गया कि सोचने-विचारने की भी फुर्सत नही मिली कि वह कहा जा रहा है। गीता इस नवीन प्रकार के जीवन से खुश नही है, यह वह जानता था, और यह बात उसे थोडी-बहुत खटकती भी थी। पर उसने यही सोचा कि गीता के साथ वह अधिक समय नही बिता पाता इसकी उसे शिकायत होना अत्यन्त स्वाभाविक है। कौन-सी पत्नी अपने पति से इस प्रकार का दुराव सहन कर सकती है ? उसका असतोष उसके प्रेम का निदर्शक है, और उसकी कर्तव्यपरायणता का द्योतक है।

पर गीता की बातचीत ने उसे जोर से झकझोर दिया, मानो उसे सोते से जगाया हो या नशेबाज आदमी का उसके नशे मे ललकारा हो। उसके सामने यह प्रश्न मुह बाकर खडा हो गया कि वह अपने स्वधर्म से कही भटक तो नही गया है ?

गीता उसके प्राण का अश थी, कलेजे का टुकडा थी। उसकी बात को टालना उसके लिए असभव था। उसे धोखा देना अपने आपको धोखा देना था। जान-बूझकर धोखा देने की बात तो स्वप्न मे भी नही उठ सकती थी। पर यह आत्म-वचना, जिसकी ओर उसने उगली उठाई थी ? वह कही अपने आपको झूठे और कृत्रिम आदर्शो के नाम पर भुलावा तो नही दे रहा है ?

माना कि दुनिया शायद उसके कार्य के बारे मे उसकी सफाई मान लेगी। दुनिया जिसे सिर पर चढाती है उसे बाद मे उतारकर सूली पर भी चढा देती है। सत्ता से प्रभावित लोग उसकी सेवाओ की स्तुति करते, पर उसके विरोधी लोग, जो खासकर समाचारपत्रो के जगत् से सम्बन्ध रखते थे, ऐसा मानते थे। कि धनजय सत्ता के हाथ बिक गया। वैसे विरोध का प्रत्यक्ष कारण कोई नही था क्योकि धनजय ने जाने-बूझे किसी एक भी व्यक्ति का अकल्याण नही किया था, पर मनुष्य का यह स्वभाव है कि एक आदमी यदि आगे बढता है तो बाकी सब बिना किसी कारण उसकी टाग पकडकर उसे पीछे खीचने का प्रयत्न करते है। उसका दोष ? उसका दोष सिर्फ यही कि निकम्मो और फिसड्डियो की कतार छोडकर वह आगे बढ रहा है। उस वर्ग मे एक तो उसके प्रतिस्पर्धी दैनिक का सपादक था जिसके प्रभाव और

व्यवसाय पर दैनिक युगान्तर के कारण धक्का लगा था । और दूसरा था एक साप्ताहिक पत्र का सपादक छदामीलाल जो मुख्य मत्री की खुशामद मे अपना सारा करतब और कौशल खर्च करता था, फिर भी उनके विश्वास का पात्र नही बन पाया था। उसे शिकायत थी कि उसके साप्ताहिक 'जागरण' को ही मुख्य मत्री ने क्यो नही अपनाया ? उन्होने 'युगान्तर के साथ गठबन्धन क्यो किया ?

छदामीलाल अग्रेजी की पाच-सात क्लासे पढा था पर हिन्दी अच्छी लिख लेता था। विशारद की परीक्षा मे बैठा था पर फेल हो गया। जब परीक्षा-फल मे उसका नाम नही निकला तो उसने कह दिया कि वह बैठा ही नही। उसके बाप का पान-बरेजे का व्यौपार था, अच्छी कमाई थी। एक बार छदामीलाल ने 'सिगरेट पीने से नुकसान' इस विषय पर लेख लिखा और स्थानीय समाचारपत्र के रविवारीय सस्करण मे छपाने के लिए ले गया। उस लेख के बारे मे उसे बडा आत्म-विश्वास था क्योकि वह उसके प्रत्यक्ष अनुभव की प्रेरणा से निकला था। बात असल मे यह थी कि उसके मकान के ही पास गजाधर तमोली का पान-ठेला था जिसके साथ उसकी दोस्ती हो गई थी। उसका बाप जब पानो की टोकरिया लाने के लिए बरेजे पर जाता और पाच-पाच या सात-सात दिन बाहर रहता तो छदामी चोरी-छिपे गजाधर को सौ-दो सौ पान दे आया करता। छदामी पढ-लिखकर बडा हो रहा है इसलिए बाप सोचता कि पुश्तैनी रोजगार वह सीख लेगा तो पेट भरने के लिए किसीका मुह नही ताकना पडेगा। इसलिए पानो की गिनती मे वह छदामी की मदद लेता । छदामी की तथा बाप की गिनती मे दो-चार सौ पानो का फर्क जरूर पड जाता पर हजारो का मामला था इसलिए बाप भी परवाह नही करता था। देखा-सुना छोड देता था। गजाधर तमोली की दुकान मे उसी रात मे उतने पान पहुच जाते। बदले मे वह छदामी को सिगरेट पिलाता और कभी होटल मे चाय-पकौडी खाने के लिए या सिनेमा के लिए कुछ पैसे दे देता। उस समय छदामी की उम्र चौदह-पन्द्रह साल की थी। घर मे खाना तो मिलता ही था, बाहर सिगरेट, पान, होटल और सिनेमा की जुगत लग जाती। छदामी को इससे अधिक और क्या चाहिए था ? बस, बादशाह बना घूमा फिरता और फिर स्कूल के लौडो का सरदार भी तो था !

लेकिन हिन्दी से उसे प्रेम था इसलिए उसने बहुत-से उपन्यास पढ डाले। तिलस्मी और जासूसी उपन्यासो से उसे विशेष प्रेम था। 'पेरिस की राते', 'लन्दन

की सुन्दरियो के रहस्य' आदि पुस्तको के तो उसने कितने पारायण किए इसकी सीमा नही। सिनेमा साप्ताहिको से उसे विशेष दिलचस्पी थी। अभिनेत्रियो के चित्रो का उसने बडी मेहनत से अपना निजी एलबम बनाया था। और धीरे-धीरे वह काम-विज्ञान और दम्पति-रहस्य आदि शास्त्रो के अध्ययन की ओर बढ रहा था। इतनी पुस्तको के पढने के बाद उसकी भाषा मे कुछ न कुछ निखार आ जाना स्वाभाविक था। सो उसके मन मे लेखक बनने की महत्वाकाक्षा जाग्रत हो गई। उसने अपना पहला लेख बडी मेहनत से तैयार कर लिया, 'सिगरेट पीने से नुकसान।'

लेख लिखने मे उसे पाच दिन लग गए और जब प्रेरणा कुण्ठित हो जाती तो उसे चलाने के लिए वह गजाधर की दुकान मे जाकर एक सिगरेट पी आता। अपने अनुभव से उसने जान लिया कि सिगरेट पीने से क्या बुराई होती है, और वह मानता था कि इतने अनुभव के बाद उसे लेख लिखने का अधिकार प्राप्त हो गया है। उसके लिखने और छपाने मे लोक-मगल की जो भी भावना रही हो, सबसे बडी भावना तो यही थी कि किसी तरह उसका नाम अखबार मे तो छप ही जाए। अखबार मे नाम छपाने की कमज़ोरी मानव की, आज के युग की, सबसे बडी कमजोरी है—शायद नई खोजो का यही विषय रहेगा और इसके अनुसन्धान मे लोगो को डॉक्टरेट भी मिलने लगेगी।

लेकिन वह कम्बख्त सम्पादक इतना बेमुरव्वत निकला कि उसने छदामी का लेख ही वापस कर दिया। वापस कर दिया उसका गुस्सा तो उसे था ही, पर उससे भी अधिक गुस्सा इस बात का था कि सम्पादक ने कम से कम उसके सोलह सिगरेट पिए और उससे दूने पान खाए, और बीसो चक्कर लगवाए। छदामी छटपटा उठा और बोला कि ये सम्पादक बेटे अपने आपको क्या समझते है, मै खुद सम्पादक बनकर बताऊगा! दुनिया की सभी क्रान्तिया व्यथा और अपमान मे जन्म लेती है, उसी तरह इस सिगरेट वाले लेख न छपने की घटना ने 'जागरण' नाम के नये साप्ताहिक को जन्म दिया और देश को छदामीलाल के रूप मे एक नया सम्पादक मिला। छदामी ने बाप की मदद से कही से एक पुरानी ट्रेडल मशीन उठा ली, कुछ टाइप और कागज का प्रबन्ध कर लिया, और देखते-देखते छदामी छदामीलाल बन गया। बाप को बडा अभिमान हुआ। उसे भरोसा हो गया कि पुश्तैनी रोज़गार से भी बडा इज्जतदार पेशा उसके बेटे ने अख्तियार किया है, और वह

कुल-वश की मर्यादा मे वृद्धि किए बिना रहेगा नही। गर्व से उसकी छाती फूल जाती थी।

इतने मे दूसरा महायुद्ध छिड गया। गाधीजी ने अग्रेजो से लडाई छेड दी। कुछ लोगो की तो इसमे तबाही हो गई पर और कई लोगो की बन आई। ऐसी बन आई कि मानो चादी छत फाडकर बरसने लगी। लडाई का सामान जुटाने मे करोडो रुपया खच होता था। रुपयो की तो जैसे गगा बह निकली। पर यह गगा पतित-पावनी और पाप-विमोचिनी नही थी, शोणित की गगा थी, जिसमे देशभक्तो का, आदशवादियो का, स्वप्नद्रष्टाओ का रक्त समाया हुआ था। इस गगा मे स्वार्थ को धर्म मानकर और चादी को परमेश्वर मानकर जीवन की धन्यता मानने वालो का ही पर्वकाल था। इन महाभागो मे 'जागरण' साप्ताहिक के सम्पादक बाबू छदामीलाल भी थे। केवल बाबू शब्द से पूरी प्रतिष्ठा नही मिलती है, इसलिए छदामीलाल ने कलकत्ते के किसी होमियोपैथिक कालेज से छ महीने मे ही डाकखाने के जरिए एक सर्टिफिकेट प्राप्त कर लिया, जिसके बल पर अपने आपको डॉक्टर छदामीलाल कहलाने लगे। अब वाकई जरा प्रतिष्ठा आ गई।

गाधीजी के आन्दोलन के कारण अग्रेज सरकार दोस्तो की तलाश मे थी, दोस्तो मे आदमियो की भी जरूरत थी, अखबारो की भी जरूरत थी, इसलिए डॉ० छदामीलाल तथा उनके साप्ताहिक पत्र 'जागरण' दोनो की ही इज्जत होने लगी। सरकारी क्षेत्रो मे डॉ० छदामीलाल का आना-जाना बढ गया। युद्ध के समाचारो तथा चित्रो को उनके समाचारपत्रो मे प्रधानता मिलने लगी। कभी-कभी सन्तुलन कायम रखने के लिए गाधीजी के फोटो भी छप जाते, पर चूकि गाधीजी जेल मे थे, ऐसे मौके कम आते। चीफ सेक्रेटरी तथा डिप्टी कमिश्नरो के बगलो पर उनके चक्कर कटने लगे, टेलीफोन मिल गया, एक टूटी-फूटी मोटर भी खरीद ली गई। उन दिनो लाइसेन्स परमिट की भरमार थी, जो उन्हे दिला देता, उसकी पाचो उगलिया घी मे और सिर कढाई मे टिक जाता। इस काम मे डॉ० छदामीलाल सिद्धहस्त थे। फौजो को घी, गल्ला, कपडा आदि सप्लाई करने वाले व्यापारियों के साथ अपनी अन्नी-दुअन्नी की पाती रखकर वे उनके काम मिनटो मे करा दिया करते थे। उन्हे ठेके दिलवाने मे तथा माल पहुचाने के बाद जल्दी से जल्दी बिल वसूल करने मे उनकी मदद कारगर होती। जिस व्यापारी के साथ उनकी साझेदारी थी उसके प्रतिस्पर्धी की टाग वे अपने साप्ताहिक पत्र के कालमो

मे खीचते। मार्केट मे उनकी साख नही हे, वे कालाबाजारी करते है, पुलिस की उनपर कडी नजर है, आदि प्रकार के समाचार वे अपने दफ्तर मे बैठकर ही गढ लिया करते थे और उन्हे बडी कुशलता से प्रकाशित किया करते थे। यहा तक कि उस प्रतिस्पर्धी की विधवा पुत्र-वधू को गर्भ रह गया तो उसका पर्दाफाश करने के लिए भी वे समाज और राष्ट्र के हित मे उत्सुक हो जाते। एक अक मे तो उन्होने केवल इतना ही समाचार एक बॉक्स मे प्रकाशित किया

'नगर के एक प्रतिष्ठित माने जानेवाले व्यवसायी के घर मे अनैतिक प्रेम की जो अधम लीलाए चल रही है उसके समाचार हमारे पास विश्वस्त सूत्र से प्राप्त हुए है। हमे अपने सूत्रो पर अविश्वास करने का कोई कारण नही है फिर भी उच्च पत्रकारिता के आदर्शो के पालन की दृष्टि से हम स्वय उसकी जाच-पडताल कर रहे है और पूरी सामग्री हाथ मे आने के बाद हम इस नारकीय काण्ड का भण्डा-फोड करेगे ताकि समाज मे दुराचार फैलाने वाले नर-राक्षसो को नसीहत मिले और समाज के चरित्र का विकास हो। यह काम हमे केवल कर्तव्य-बुद्धि से अत्यन्त दु ख और सकोच के साथ करना पडेगा क्योकि समाज के नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा और सुरक्षा आदर्श पत्रकारिता का प्रथम एव सर्वोच्च कर्तव्य है। हम आशा करते है कि हमे यह अप्रिय कार्य करने का अवसर प्राप्त नही होगा।'

इस प्रकार के समाचार मे नाम-गाम कुछ नही रहता, पर उसकी लाल पेसिल से रेखाकित प्रति सम्बन्धित व्यक्ति के पास भेज दी जाती। वह बेचारा घबडा उठता। अखबार की बिक्री भले ही सौ-दो सौ प्रतियो की हो, पर पढनेवाले को तो लगता कि न जाने कितने हजार लोग इस अखबार को पढते होगे, और केवल इस नगर मे ही नही प्रदेश भर मे घर-घर मे यह पढा जाता होगा। उनके सामने यदि मेरा नाम आ गया तो मेरी इज्जत तो खाक मे मिल जाएगी। आखिर उसमे कुछ न कुछ सत्याश तो है ही। मानवीय कमजोरिया तो घर-घर मे फैली है, किसीके यहा किसी स्वरूप मे तो किसीके यहा और दूसरे रूप मे। और कमजोरिया ही देखने का शौक है तो पहले अपने ही भीतर क्यो न देख लिया जाए जहा पाप, स्वार्थ, क्षुद्रता और वासनाओ का अनन्त खजाना भरा है। बाहर देखने को फुर्सत भी नही मिलेगी।

पर डॉ० छदामीलाल को इन सब बातो को सोचने की फुर्सत नही थी, जरूरत भी नही मालूम पडती थी। उनका व्यावसायिक प्रतिस्पर्धी इस समय चगुल

मे फस गया है, उसे रगडकर पीस डालने मे ही कल्याण है। उसके सिवा घर की तिजोरी नही भरेगी। साथ ही साथ समाज मे नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा भी हो जाए तो क्या बुरा है? समाचार के छापते ही उसी रात समझौते की बातचीत शुरू हो जाती और ले-देकर मामला इस बात पर तय हो जाता कि प्रतिस्पर्धी अपना टेडर वापस ले ले और सपादक जी की पुरानी मोटर बदलकर नई मोटर का इन्तजाम कर दे।

इसी चमचमाती मोटर मे बैठकर डॉ० छदामीलाल दूसरे दिन चीफ सेक्रेटरी के बगले पर जाते तो उनका रौब और भी बढ जाता। पुलिस की खुफिया रिपोर्टो से तो उनके व्यक्तित्व और हलचलो की खबरे सरकार के पास पहुच ही जाया करती पर इस समय तो अग्रेजी सरकार दोस्तो की तलाश मे थी और उन्हे डॉ० छदामीलाल से बढकर वफादार दोस्त और कौन मिल सकता था? इसलिए उन्होने पुलिस की रिपोर्टो की तरफ केवल दुर्लक्ष्य ही नही किया वरन् उन्हे मध्यपूर्व, इटली और दक्षिणी फ्रास के युद्धक्षेत्र का निरीक्षण करने के लिए एक पत्रकार दल के साथ भेज दिया। हवाई जहाज की यात्रा, इसके अलावा एक ऐग्लो इण्डियन युवती का गाइड के रूप मे साथ, विलास की सामग्री से सुसज्जित शानदार होटलो का निवास और सुरा-सुन्दरी के सान्निध्य। पाच सप्ताहो की विदेश-यात्रा मे डॉ० छदामीलाल को साक्षात् स्वग की झाकी देखने को मिली। इस समय वे भूल गए कि उन्हीके देशवासी इस समय अपने अभागे देश की मुक्ति के लिए ब्रिटिश जेलखानो मे सड-सडकर और गल-गलकर जिन्दा कबर मे दफना दिए गए है, और उन्हीके तथाकथित व्यवसाय का बन्धु, 'युगान्तर' साप्ताहिक का सपादक धनजय राष्ट्रीयता की अग्नि मे अपनी आहुति देनेवाली पत्नी के स्वास्थ्य की चिन्ता मे कारागार छटपटा रहा है और उसकी पत्नी प्रेस को आग लग जाने के कारण हताश और हतभाग्य-सी बनकर रक्त के आसू बहा रही है कि मा अम्बिकेश्वरी, अपनी इस असहाय और निराश्रिता कन्या की लाज कैसे रहेगी, तुम्ही जानो।

और उसी 'युगातर' के सम्पादक के साथ जब प्रदेश के मुख्य मन्त्री पण्डित पूरणचन्द्र जी जोशी ने पत्रकारिता का एक बडा और व्यापक प्रयोग शुरू किया तो डॉ० छदामीलाल को लगा कि मुख्य मन्त्री ने ऐसी मूर्खता कैसे कर डाली? असल मे उन्हे तो डॉ० छदामीलाल के साथ पहले बातचीत करनी चाहिए थी

क्योकि पत्रकारिता का व्यवसाय-पक्ष जितना अच्छा वह जानते उतना तो वह कोरा आदर्शवादी बुद्ध सपादक थोडे ही जान सकता है ? सात साल के भीतर मेरी तीन बिल्डिगे खडी हो गई, सौ-दो सौ एकड जमीन हो गई, बडा छापाखाना हो गया, विदेश-यात्रा भी हो गई, मोटर, रेडियो की तो खैर गिनती ही क्या है—इतने बडे प्रमाण के बाद भी पत्रकारिता की सफलता की तरफ उनकी नजर नही जाती तो भला जोशी जी से बढकर महामूर्ख और कौन हो सकता है ? और ऐसे निपट मूढ व्यक्ति के हाथ मे शासन की बागडोर आई है तो इस प्रदेश और देश के दुर्दिनो की कोई सीमा नही है। कहा अग्रेजो का राज्य और कहा स्वराज्य ? वे लोग तो आदमी की कदर करना जानते थे, और यहा तो अन्धेरगर्दी है, अन्धेरगर्दी। डॉ० छदामीलाल 'युगान्तर' और उसके सम्पादक का उत्कर्ष देखकर दात पीसने लगे, जलने लगे, जैसे भीतर ही भीतर उनका शरीर किसीने चिता पर रख दिया हो।

११

एक बार धनजय जोशी जी के बगले पर गया तो जमादार ने बताया कि वे भीतर बैठे है, काशी के पण्डित आए है, उनसे वार्तालाप कर रहे है। धनजय वापस जाने को निकला तो जमादार ने आग्रह किया कि नही, मै महाराज को खबर दिए बगैर आपको वापस नही जाने दूगा। आप आए और उन्हे किसी भी हालत मे खबर न मिले तो वे नाराज हो जाते है। जोशी जी को सब चपरासी और कर्मचारीगण उनकी बुजुर्गी के कारण 'महाराज' कहते थे, यह वह जानता था। उसके बारे मे उनकी हिदायते इसी तरह की थी यह उसे भी मालूम था। फिर भी पण्डितो के साथ कुछ घरेलू बातो की, परिवार के विवाह सस्कारादि कार्यों की चर्चा हो रही होगी उसमे वह क्यो दखल दे, ऐसा सोचकर वह लौटना चाहता था। पर जमादार ने पाच मिनट के भीतर ही लौटकर बताया कि महाराज भीतर ही बुलाते है।

भीतर जाकर धनजय ने देखा कि जोशी जी अपने परिवार सहित नीचे जमीन पर अपनी चादर पसार कर बैठे है और काशी के पाच विद्वान पण्डित उच्चासन

पर बैठकर वेद-मन्त्रयुक्त आशीर्वाद दे रहे है। पण्डितो की मन्त्रध्वनि अत्यन्त स्पष्ट और प्रभावशाली थी, एक-एक ऋचा अत्यन्त व्यवस्थित ढग से स्वरो के आरोह-अवरोहो के साथ उच्चारित की जा रही थी। पाचो पण्डितो की सम्मिलित वाणी का उच्च नाद एक अत्यन्त शुद्ध और पवित्र वातावरण निर्माण कर रहा था। कपूर और उदबत्तियो के जलने के कारण मागलिक सुगन्ध फैली हुई थी। धनजय को यह सब वातावरण देखकर बडी प्रसन्नता हुई। स्वस्ति-पाठ समाप्त हुआ, आशीर्वाद दे दिया गया, फिर शान्ति-पाठ हुआ। ब्राह्मणो को चादी की थालियो मे मधुर मिठाइया दी गई और उसके साथ ही परिवार वालो को तथा धनजय को भी। पास ही एक बीकानेरी पगडी पहने हुए वृद्ध सज्जन बैठे हुए थे, जिनका जोशी जी ने धनजय से परिचय कराया—राजापुर के प्रसिद्ध पटसन के व्यापारी दानशूर सेठ लादूराम जी। वे उस पारिवारिक वातावरण मे इतनी निस्सकोचता और आत्मीयता से बैठे थे जैसे उन्हीमे से एक हो।

ब्राह्मणो को दक्षिणा देने का समय आया तो जोशी जी ने प्रत्येक को इक्कावन-इक्कावन रुपये भेट किए। पण्डितो के अगुआ आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री बोले

'आप यह क्या कर रहे है महाराज! चक्रवर्ती युधिष्ठिर की पत्रिका लेकर जिसका अवतार हुआ है उसकी ओर से यह दक्षिणा? लेने को तो हम एक रुपया भी प्रेम से दो तो ले लेते है पर दक्षिणा तो दाता की पात्रता और प्रतिष्ठा के अनुकूल ही होनी चाहिए।'

'शास्त्री जी ठीक कहते है महाराज' दूसरे पण्डित जी ने दात निपोडते हुए कहा। 'सम्राट अशोक को भी जो वैभव नही प्राप्त हुआ वह आपके प्रारब्ध मे लिखा है, यह हम अपनी अन्तर्दृष्टि से देखकर कह सकते है। आपकी कीर्ति केवल इसी देश मे ही नही किन्तु दिगदिगन्त मे फैलने वाली है। छत्रपति शिवाजी और महाराजा छत्रसाल का अश आप मे अवतरित हुआ है ऐसी हमारी भावना है। ऐसे ऐतिहासिक पुरुष के हाथो हम इतनी स्वल्प दक्षिणा कैसे ले सकते है?'

जोशी जी ब्राह्मणो के शब्दो से गद्गद हो गए। उनकी प्रशसा उनके चेहरे पर खिल उठी। पर बोले, 'यह सब तो ठीक है। पर हम राष्ट्रीय मन्त्रियो को बहुत ही सीमित वेतन मिलता है। हम तो जनता के सेवक है।'

'आपको किस बात की कमी है? आज इस प्रदेश मे ही क्या, सारे देश मे ऐसा कोई व्यक्ति नही है जो आपके शब्द को टाल सके। चक्रवर्ती सम्राट का शब्द!

आप ब्रह्म वृन्द की वाणी को पत्थर की लकीर समझिए, आपका वैभव अन्त तक अखण्ड रहेगा और जब कभी अपने इच्छानुसार आप अपना शरीर छोडने का विचार करेगे तब सार्वभौम सम्राट का सस्कार ही आपको प्राप्त होगा।'

जोशी जी निरुत्तर हो गए। अपने नाती को बुलाकर पचीस-पचीस रुपये और देने के लिए कहा।

चौथे ब्राह्मण तुरन्त बोले, 'महाराज ! आज हमने अन्त करण से आपको अपने हृदयस्थ करके 'जीवेम शरद शतम्' यह आशीर्वाद दिया है। अत आपको अपनी ओर से एक मिलाकर कम से कम शतमुद्रा की दक्षिणा तो देनी ही चाहिए।'

जोशी जी ने गर्दन हिलाई। उनका नाती उठकर बगल के कमरे मे गया, उसके पीछे-पीछे सेठ लादूराम जी भी गए। दो मिनट मे ही वे वापस आ गए और जोशी जी ने काशी के ब्राह्मणो का उनकी मुहमागी दक्षिणा से सत्कार किया। साथ ही साथ उनमे से प्रत्येक को एक-एक रेशमी शाल भी समर्पित की गई। इत्र और गुलाबजल तो खैर था ही।

धनजय ने मन ही मन कहा, पुराने राजा-महाराजाओ के वैभव और दरबारो की कहानिया उसने पुस्तको मे पढी थी पर आज इस प्रकार का वैभव वह स्वय अपनी आखो से देख रहा है। जोशी जी के चेहरे पर परम आनन्द और समाधान के लक्षण दिखाई देते थे। वे उठे और चलने लगे तो सचमुच ऐसा लगा कि जैसे कोई चक्रवर्ती सम्राट ही चल रहा हो। उस कमरे की सजावट, फर्श के कालीन और गालीचे, फर्नीचर, दीवाल पर की तस्वीरे, दरवाजे और खिडकियो के पर्दे, चादी और सुवर्ण के पालिश से युक्त गिलास, थालिया, कटोरिया तथा अन्य उपकरण यह सब देखकर उसे एक क्षण के लिए लगा कि इतिहास के कई वर्ष उलट गए, और मध्ययुगीन सामन्तशाही का नक्शा उसकी आखो के सामने नाच उठा, मानो वह किसी मुगल सम्राट के दरबार मे बैठा हुआ है। एक क्षण के लिए तो उसे आश्चर्य का धक्का लगा, और उस दृश्य की चकाचौध से वह अभिभूत हो गया।

और दूसरे ही क्षण उसका मन एक सूक्ष्म अरुचि से भर गया। ऐसा लगा कि इस वातावरण मे उसका दम घुट रहा है। उसने जोशी जी को प्रणाम करके कहा कि मै जाता हू।

जोशी जी के कानो मे काशी के विद्वान ब्राह्मणो के प्रशस्ति-शब्द ही गूज रहे थे और युधिष्ठिर, अशोक, शिवाजी और छत्रसाल के वैभव की स्मृतिया उनके

मस्तिष्क पर छाई हुई थी, इसलिए वे उससे पूछना भी भूल गए कि कैसे आए थे और कैसे चले ? स्तुति तो देवताओ को भी पागल बना देती है, मानवो की तो बात ही क्या ? और जब जोशी जी स्वय अपने मानवत्व मे देवता का अश ही देखते थे तब फिर उनके मन की स्थिति का क्या पूछना ! अपने भाग्य की सराहना करने के लिए उन्हे ढूढे भी शब्द नही मिलते थे। ऐसा अपूर्व उल्लास, ऐसी अद्भुत प्रफुल्लता और परितृप्ति उन्होने कभी अनुभव नही की थी।

१२

धनजय अपने दफ्तर मे चिट्ठी-पत्रियो मे अपना दिमाग खपा रहा था कि चपरासी ने आकर बताया कि बाहर कोई भोलानाथ एडवोकेट आए है और आपसे मिलना चाहते है।

भोलानाथ ? उसे नाम तो कुछ परिचित मालूम पडा। कही वह उसके स्कूल मे पढने वाला पुराना साथी तो नही है ?

उसने तुरन्त उसे बुलवाया तो देखा, हा, बिलकुल ठीक वही है।

धनजय तुरन्त उसके स्वागत के लिए उठ खडा हुआ और बोला, 'अरे आओ भोला ! इतने दिन कहा रहे ? कैसे हो ? इधर कैसे टपक पडे ?'

भोलानाथ को धनजय का स्नेह और आत्मीयता देखकर बडी प्रसन्नता हुई। वह तो ठिठककर, कुछ झिझकते आया था। धनजय मुख्य मन्त्री का दोस्त है और सारे सूबे मे उसका बोलबाला है। वह पहचान तो लेगा पर कही उसका व्यवहार रूखा और औपचारिक हुआ तो ?

पर भोलानाथ का डर निराधार निकला। धनजय ने घण्टी बजाई और चपरासी को फौरन दो चाय लाने को कहा।

भोलानाथ जरा आश्वस्त होकर बैठ गया। धनजय के प्रश्नो का उसने उत्तर तो नही दिया पर पहले उसके दफ्तर को ऊपर-नीचे, चारो ओर देखा। धनजय की कुर्सी के पीछे एक रिवॉल्विग शेल्फ था जिसमे कई रिफरेन्स की किताबे रखी थी। ऊपर एक दुनिया का बडा गोल रखा था। बाई तरफ एक

ऊची मेज पर गाधीजी का बस्ट (मूर्ति) रखा था जो शायद प्लास्टर ऑफ पेरिस का बना हुआ था। दीवाल पर भारत का नक्शा और प्रदेश का बृहदाकार मानचित्र टगा हुआ था। प्रत्येक दीवार पर एक सुन्दर कैलेण्डर था। मेज़-कुर्सी आदि फर्नीचर भी साफ-सुथरा व्यवस्थित था।

'दफ्तर तो तुम्हारा बडा शानदार है।' भोलानाथ ने कहा।

'अरे इसमे कौन-सी बडी बात है ? पर तुमने यह तो बताया नही कि इधर कैसे निकल पडे ? और आज मेरी याद कैसे की ?'

'तुम्हारे ऑफिस के पीछे ही डॉक्टर त्रिवेदी रहते है, उन्हे छोडने आया था। तुम्हारा दफ्तर दिखा तो सोचा कि पाच मिनट के लिए तुमसे क्यो न मिल लू ?'

'डॉक्टर ? डॉक्टर को क्यो बुलाया था ?'

'क्या बताऊ भाई,' भोलानाथ ने एक दीर्घ नि श्वास लेकर कहा। 'छ महीने से पत्नी बीमार है। अतडियो का टी० बी० हो गया है। आराम ही नही हो रहा है। डॉ० त्रिवेदी को बुलाया था, उसने इजेक्शन दे दिया और उसे घर छोडने आया तो अचानक तुमसे मिलने की प्रेरणा हो गई।'

भोलानाथ की व्यथा से धनजय का मन दुखी हो गया। बोला, 'उसे भुवाली सेनिटोरियम मे दाखिल करना हो तो कहो। या फिर मदनापल्ली मे। अभी आई० जी० से फोन कराकर एडमिशन हो सकता है। फिर अपनी सुविधा से ले जाना।'

'नही, अब यह सब करने की स्टेज नही रही है। यह सब कर चुका हू। पर कही आराम नही हुआ तो वह बोली कि अब मुझे वापस घर ले चलो। जहा ब्याह होकर पहली बार तुम्हारे घर मे प्रवेश किया वही मरना चाहती हू।' भोलानाथ ने कहा।

धनजय ने भी एक दीर्घ उच्छ्वास लिया। भोलानाथ ने फिर बात पलटकर कहा, 'तुमने अपना पुराना साप्ताहिक क्यो बन्द कर दिया धनजय ? उसकी तो बडी धाक थी। लोग उसे चाहते थे।'

'उसे तो इस दैनिक मे विलीन कर दिया। सोचा कि इससे शायद अधिक सेवा हो सकेगी।'

'सेवा ? पता नही सो होती होगी या नही। पर लोग तो कहते है कि तुम तो अब भ्रष्ट लोगो का साथ दे रहे हो। मेरी बात का बुरा मत मानना भैया, हाथ जोडता हू, पर जो सुनता हू वही बताता हू। तुम मेरे पुराने साथी हो, इसलिए नही रहा

गया।' भोलानाथ ने कहा।

भोलानाथ की स्पष्टवादिता देखकर धनजय आश्चर्यचकित हो गया। आज तक उससे मिलने के लिए जो आते थे वे तो यही कहते कि आप देश की बडी सेवा कर रहे है, राष्ट्र के नव निर्माण मे ठोस सहयोग दे रहे है, आप धन्य है। खुशामदो और स्तुति-वचनो की झडी लगा देते। और फिर बाद मे धीरे से अपने काम की बात बताते जिसमे देश-सेवा, समाज-कल्याण आदि की कोई बात नही रहती, निरे स्वार्थ की रहती।

और यह भोलानाथ है जिसने पत्नी के इलाज की मदद लेने से भी नाही कर दी और ऊपर से साफ-साफ इशारा दे दिया कि अपने आपको फिर एकबार टटोलो, कही गलत रास्ते पर तो नही जा रहे हो!

धनजय को बुरा नही लगा, चिढ भी नही हुई। वह बडे कौतूहल से भोलानाथ की तरफ देखता रहा।

आज भोलानाथ उसे कम से कम बीस बरस बाद मिला होगा। स्कूल मे वह उसका साथी तो नही था पर उसके बडे भाई का सहपाठी था और उससे चार-पाच साल बडा था। पर उसे स्पष्ट याद है कि उन दिनो भी भोलानाथ ने उसके परिवार के साथ बडे ममत्व का व्यवहार किया था। भोलानाथ पढ-लिखकर बडा हुआ, एडवोकेट भी हो गया और यही शहर मे प्रैक्टिस करने लगा। पर न जाने क्यो वह धनजय के पास नही आया और न धनजय को कभी उससे मिलने की कोई आवश्यकता हुई। भोलानाथ के चाचा प्रदेश के बडे सरकारी कर्मचारी थे। वे जानते थे कि धनजय की मुख्य मत्री जोशी जी के साथ कैसी छनती है। उन्होने अपने भतीजे को आगाह कर दिया था कि धनजय एक बडा आदमी बन गया है और अपने पुराने रिश्ते के बूते उससे मेल-जोल बढाने की कोशिश मत करना। वे स्वय जोशी जी के विश्वासपात्र थे इसलिए उनके सम्बन्धो मे भोलानाथ की वजह से कोई उलझन न आ जाए इसके लिए सावधान थे। इसलिए भोलानाथ अलग-थलग रहता और उसने कभी धनजय के रास्ते मे आने की कोशिश नही की।

पर आज न जाने क्यो, अचानक उसके मन मे धनजय से मिलने की प्रेरणा जाग उठी। एक तो उसके चाचा अब यहा नही थे, बदलकर केन्द्रीय सरकार मे चले गए थे, इसलिए उनकी हिदायतो का बन्धन कुछ ढीला पड गया था, दूसरे,

अपनी पत्नी की बीमारी से वह कुछ उदास था, कही कुछ सहानुभूति पाने को उत्सुक रहा होगा । और अचानक धनजय का स्नेह और आत्मीयता देखकर उसे भरोसा हो गया कि उसके चाचा ने धनजय के बारे मे जो चित्र खीचा था वह गलत है— वह बडा बन गया हो, या मुख्य मन्त्री का प्रमुख सलाहकार हो, पर कम से कम भोलानाथ के लिए उसके मन मे कोई अहकार या ऊच-नीच की भावना नही है । इसलिए तो उसे अपने विचार साफ-साफ रख देने की प्रेरणा हुई ।

भोलानाथ की बातचीत सुनकर धनजय मन ही मन चौक उठा । बोला, 'लोग ऐसा क्यो कहते है ।'

'इसीलिए कि जोशी जी के राज्य मे भ्रष्टाचार खूब फैल रहा है । नौकरशाही मे अपने-पराये का भेद चल रहा है । ग्रूपबाजी और दलबन्दी चल रही है । उनके रिश्तेदारो के यहा तो मोतियो की वर्षा हो रही है । ठेके, खदाने, एजेन्सिया—कोई ऐसा धन्धा नही जिसमे उनके रिश्तेदारो का साझा न हो । भले सरकारी अफसर उनसे दवते है, और चलते-पुर्जे अफसर उन्हीकी खुशामद करके तथा उन्हे अपनी दलाली देकर अपनी तरक्किया करा लेते है । राजनीतिक दृष्टि से कोई भी मजबूत पार्टी विरोध मे नही है । इसलिए जोशी-दल की चादी है, किसीका डर नही, आतक नही, दोनो हाथ लूट-खसोट जारी है । प्रदेश के सारे अखबार शासन से डरते है । तुम्हारा अखबार डरता तो नही है पर उनका दोस्त बन बैठा है । कोई शासकीय दल पर उगली उठाता है तो तुम उसपर इस कदर टूट पडते हो कि वह कही का नही रहता । और मन्त्रिमण्डल का समर्थन करने के लिए सारी ताकत इस कदर लगा देते हो जैसे हनुमान जी गदा लेकर राक्षस-दल पर कूद पडे हो । पर जिसके लिए तुम अपनी गदा चलाते हो वे असली राम है या नही यह तो देख लेना चाहिए ।' भोलानाथ कहता गया । साफ-साफ, खरी-खरी । क्यो कहता गया, सो वह नही जान सका ।

धनजय कुछ देर तक तो सुनता रहा, फिर हसकर बोला, 'भई भोलानाथ ! तुम तो वकील पेशे वाले लोग हो । जिसकी 'ब्रीफ' (कानूनी विवरण) लेते हो उसकी तरफ से 'केस' ऐसे जोरदार तरीके से रखते हो कि एक क्षण के लिए आदमी गडबडा जाता है । आज तुम विरोधी पक्ष की 'ब्रीफ' लेकर मुझसे बाते कर रहे हो । अब तुम एक बार सत्तारूढ पक्ष की बात लेकर भी मुझसे बात करो तब कही हम लोग ठीक-ठीक फैसला कर सकेंगे । एकागी विचार से तो सत्य का निर्णय नही हो

सकता न ?'

'नही धनजय, यह मै वकील की हैसियत से हर्गिज़ नही बोल रहा हू। मेरा तो राजनीति से तनिक भी सम्बन्ध नही है। मै तो स्वय राष्ट्रीय वृत्ति का आदमी हू। गाधीजी के आश्रम मे भी महीने-दो महीने रहा था, सन् तीस मे कॉलेज छोड-कर सत्याग्रह-सग्राम मे कूद पडा। पूना मे पढता था तो वहा यरवदा जेल मे बन्द कर दिया गया। 'सी' क्लास मे रखा गया तो वहा की जली भाकरी (ज्वार की रोटी) ने पेट की ऐसी मरम्मत की कि उससे आज तक छुट्टी नही मिली। नही, मेरा राजनीति से कोई सम्बन्ध नही है। मन्त्रिमण्डल ने सब काम बुरा ही बुरा किया है, ऐसा मेरा कहना नही है। पर अच्छा काम कम है, बुरा ज्यादा है, और यह बुराई अभी न सम्हाली गई तो अनर्थ कर देगी, ऐसी मेरी धारणा है। तुम्हारा पुराना साप्ताहिक रहता तो वह हर्गिज ये बाते बर्दाश्त नही करता। आज तुम उनके इतने निकट हो कि दूर से लोग क्या सोचते है, इसका तुम्हे कल्पना नही है। अच्छा, मै चलता हू। पत्नी राह देख रही होगी। मुझे जरा कही देर हुई कि वह बेचैन हो जाती है। माफ करना यार, यदि मैने कुछ कम-ज्यादा कह दिया हो तो—नमस्ते!'

और भोलानाथ जाने के लिए उठ खडा हुआ। धनजय ने उसे रोकने की बहुत कोशिश की पर वह रुका नही। धनजय ने कहा, मोटर से घर पहुचवा दू तो बोला कि मेरे पास भी एक खटारा मोटर है जिससे मजे से काम चल जाता है। पुरानी फोर्ड गाडी है। बिगडने का नाम ही नही लेती। बस, अपने लिए वही ठीक है।

और वह चला गया। कैसे, कहा से अकस्मात आ टपका, और कैसे एकाएक चला गया, पता नही, जैसे पवन के झोके से बहता हुआ वर्षा का बादल अचानक पाच मिनट के लिए आता है और जल बरसाकर चला जाता है। धनजय का मन भोलानाथ से मिलकर प्रसन्न तो हुआ, पर उसके जाने के बाद अशान्त हो गया। यह सब कैसे क्या हो गया ? उसकी बात मे कितना तथ्य है, क्या मर्म है ? वह गहरे विचार मे डूब गया और सामने की उस कुर्सी की तरफ एकटक देखता रहा जिसपर भोलानाथ बैठा था।

चपरासी ने आकर खबर दी कि सर्कुलेशन इन्स्पेक्टर पाण्डे जिलो के दौरे से आए है और आपसे मिलना चाहते है।

आध घण्टे तक वह सर्कुलेशन इन्स्पेक्टर की रिपोर्ट सुनता रहा जो अभी हाल

ही नौ जिलो का दौरा करके लौटा था। उसका मुख्य काम था दैनिक 'युगान्तर' का प्रचार करना, उसकी एजेन्सियो का निर्माण करना, उसकी ग्राहक-सख्या बढाना। वह समाचारपत्र-विक्रेताओ से भी मिलता तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्र के उन सब लोगो से मिलता जो अक्सर अखबार खरीदने वाले होते है, और सर्वसाधारण जनमत के प्रतिनिधि माने जा सकते है।

इन्स्पेक्टर पाण्डे ने दबी और सौम्य जबान मे यही बताया कि 'युगान्तर' की बिक्री बढाने मे बडी कठिनाई महसूस हो रही है। लोग कहते है कि इसका नाम बदलकर 'जोशी गजट' रख देना चाहिए क्योकि यह जोशी-मन्त्रिमण्डल की ही प्रशसा छापता रहता है, जनता पर क्या बीत रही हे इसकी सुध नही लेता। हम सब पुराने 'युगान्तर' के पाठक है और उसकी इज्जत करते थे। पर नये 'युगान्तर' की कायापलट से हम दुखी है। ऐसा लगता है कि पुराना शेर अब बूढा हो गया है और उसके दात-नाखून गिर गए है। जनता की रखवाली करने वाला अब कोई नही है। इतना सब कहकर पाण्डे ने हाथ जोडे कि यदि कोई कम-बेशी बात कही हो तो क्षमा करे, पर जो बात नजर आई सो निवेदन कर दी।

धनजय ने आश्वासन दिया कि नही, आपने अपने कर्तव्य का पालन किया है। जो सत्य है उसे जानने और कहने मे कोई सकोच-हिचक नही होनी चाहिए। मै आपका कृतज्ञ हू।

१३

लोक-कर्म विभाग के मन्त्री बाबू मनमोहन जी की जिन्दगी बडे मजे मे कट रही थी। उनका विभाग उन दिनो काफी महत्व रखता था। पक्के रास्तो को बनवाना और बडी-बडी बिल्डिगे खडी करना यह उसका मुख्य काम था। पच वार्षिक योजनाओ मे भवनो को विशेष महत्व दिया जाता था और उसके लिए बडी-बडी रकमे रखी जाती थी। नया सेक्रेटरिएट बना, मिनिस्टरो के नये-नये बगले बने, उनमे लम्बे-चौडे परिवर्तन हुए, नई-नई सुविधाए प्रदान की गई, असेम्बली के सदस्यो के लिए नये-नये क्वार्टर्स बने, जहा सपरिवार राजा की तरह

रहा जा सके । भिन्न-भिन्न सरकारी कार्यालयो के भवन बने, स्कूलो और कॉलेजो की नई-नई इमारते बनी । लाखो से कम की बात नही होती थी, करोडो की योजनाए बनती ।

रघुनाथ सहाय मामूली इन्जीनियर से बढते-बढते उस विभाग के डिप्टी सेक्रेटरी तक पहुच गए । पर उनकी सारी कोशिश यह थी कि सेक्रेटरी कैसे बने । यदि इतना हो जाए तो वे स्वर्ग पहुच जाएगे, ऐसी उनकी धारणा थी । प्रत्येक की स्वर्ग की अपनी-अपनी कल्पनाए रहती है । सेक्रेटरी के पद पर जो सज्जन थे, उनका नाम था लाला किरपाराम, जिनके रिटायर होने मे पाच साल की देर थी । भला रघुनाथ सहाय जी को पाच साल ठहरने का धीरज कहा ? आदमी तो बस जिस चीज पर दिल फेक बैठा, उसे तुरन्त पाने के लिए छटपटाता है । वे सोचते कि आज इतने बडे निर्माण के कार्य हो रहे है, इस समय सेक्रेटरी-पद पाने का और महत्व है । वे लाला किरपाराम को खिसकाने की कोशिश मे लग गए ।

लालाजी कुछ धर्मभीरु व्यक्ति थे, यानी जिस हद तक लोक-कर्म विभाग मे धर्म निभ सकता है उस हद तक । स्वय तो पाक-साफ रहने की कोशिश करते पर अपने मातहत कर्मचारियो को अपनी धन-सपदा बढाने से रोक नही पाते थे । कुछ कमजोर प्रकृति के व्यक्ति थे । उनके रहते हुए रिश्वतखोरो को अडचन मालूम पडती । अपना काम करने के बाद वे पूजा-पाठ मे या रामायण-भागवत पढने मे लग जाते । क्लब, सिनेमा या डिनर से उन्हे शौक नही था । और रघुपति सहाय सिद्धान्तत यह मानते थे कि सरकारी काम तो क्लब या डिनर की मेज पर ज्यादा होता है, दफ्तर की मेज पर नही । गरज़ यह कि लाला किरपाराम से उनका सैद्धान्तिक मतभेद था, दृष्टिकोण मे जमीन-आसमान का अन्तर था । उन्हे पहले पहल यही डर रहा कि ये सुराजी लोग जरा रूखे, त्यागी और मितव्ययी टाइप के होते है, कही उनके आने से लाला किरपाराम का पलडा भारी न हो जाए । पर जब उन्होने मनमोहन बाबू को उनकी लडकी की बर्थ-डे पार्टी मे निस्सकोच मिलते-जुलते देखा तो उनका हौसला बढा और उनको तथा उनकी पत्नी तारामती को पूरा भरोसा हो गया कि लालाजी की पतग कटने मे देर नही है । इस मामले मे तो मिनिस्टर ही सर्वेसर्वा है । हालाकि सेक्रेटरी की नियुक्ति का मामला पूरी कैबिनेट के सामने जाता है, पर वे जिस तरह उसे पेश करते है उसी नुक्ते-नज़र से अक्सर उसपर विचार किया जाता है । बाकी मिनिस्टर तो अपने-

अपने महकमो के मामलो मे इतने उलझे होते है कि दूसरे महकमो की तरफ ध्यान देने की उन्हे फुर्सत ही नही होती। पुलिस का महकमा रहा तो सुबह से शाम तक पुलिस-विभाग के लोग अपनी चुस्त वर्दी मे खडे होकर जूतो की टापो को खट से मिलाकर, मुस्तैदी के साथ सैल्यूट फटकार जाते है, जिसके परिणामस्वरूप मिनिस्टर साहब के दिमाग मे जो नशा चढने लगता है उससे बचना एक योगी का काम है। पुलिस-परेड मे, पुलिस-बैण्ड की पृष्ठभूमि मे, उच्च अधिकारियो तथा उनकी साज-शृगार से अलकृत सुन्दर या सुन्दरता का अभिनय करने वाली पत्नियो के सामने मिनिस्टर साहब को जो सलामी दी जाती है उसकी शान का क्या पूछना ? मिनिस्टर साहब को वे दिन याद आ जाते जब एक छोटा-सा दरोगा दो कान्स्टबलो को लेकर उन्हे गिरफ्तार करने आता था, और जिन्हे देखकर थोडी देर के लिए ही क्यो न हो, उनकी रूह काप जाती थी। आज तो दरोगा की श्रेणी के लोगो से बातचीत करना भी उनकी तौहीन है। उनसे कही बढकर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ अफसर उनके सामने अपना सिर झुकाते है।

शिक्षा-विभाग हो तो मिनिस्टर साहब के यहा सेक्रेटरियो, डायरेक्टरो, कॉलेज के प्रिंसिपलो तथा महिला प्रोफेसरो, इन्स्पेक्ट्रेसो और अध्यापिकाओ के चक्कर लगने लगते है। कॉलेजो मे सोशल गैदरिंग्ज (सामाजिक सभा) और अन्य उत्सव-समारोहो की कोई कमी तो रहती नही। किसी न किसी बहाने मन्त्री महोदय को अपनी सस्था मे बुलाने मे जैसे होड लगने लगती है। और होड इसमे भी लगती कि सबसे बडी माला किसने पहनाई, सबसे बडी पार्टी किसने खिलाई, सगीत-नृत्य का सबसे अच्छा कार्यक्रम किसने उपस्थित किया। जिस कॉलेज मे मिनिस्टर साहब पढे होते उसकी शान का क्या पूछना ? उसके प्राफेसर और प्रिंसिपल ऐसी असाधारण प्रतिभा के व्यक्तित्व का निर्माण करने मे योग दे सके, इसके लिए धन्यता अनुभव करते है। उनके बगले पर जा-जाकर वे कहते, 'हम तो पहले ही जानते थे कि आप एक न एक दिन बडा नाम निकालेगे। आज आप हमसे आगे बढ गए है इसीमें हमे ग्रानन्द है। गुरू से चेला सवाई निकले इसीमे गुरू का गौरव है।'

जगल का महकमा होता तो मिनिस्टर साहब के दौरे पर चीफ कन्जर्वेटर साहब से लेकर छोटे दफेदार तक तमाम अफसरान खाकी ड्रेस पहने उनके स्वागत के लिए आखे बिछाए खडे रहते। सुन्दर प्राकृतिक दृश्यो से भरे हुए स्थानो के दौरे

रखे जाते, फॉरेस्ट के रमणीय से रमणीय डाक बगलो मे ठहरने का इन्तजाम किया जाता, आदिवासी रमणियो के स्वाभाविक अर्धनग्न स्थिति मे नृत्य कराए जाते, शिकार का इन्तजाम होता और जगल के ठेकेदारो की ओर से बडी-बडी पार्टिया दी जाती। मिनिस्टर के लिए दौरा ही सबसे प्यारी वस्तु होती है। वहा अपनी प्रभुता को कही से कोई चुनौती नही मिलती, दूसरे सीनियर मन्त्री या मुख्य मन्त्री नही रहते, अपन ही अपन रहते है। जहा नजर उठाओ अपना ही एकछत्र साम्राज्य दिखाई देता है। आराम का आराम, सफर का सफर, डिनर पार्टियो का लुत्फ, अह की पूरी-पूरी सुरक्षा और भत्ते का भत्ता। चित भी मेरी, पट भी मेरी, अटा मेरे बाप का।

प्रत्येक मन्त्री अपने अपने विभाग का सार्वभौम शासक होता। कैबिनेट मे या मुख्य मन्त्री के सामने उन्हे जो कुछ झुकना पडता या विवेक रखना पडता उतना ही नियन्त्रण समझिए। बाकी वहा से निकले और अपनी राष्ट्रीय झण्डा फरफराने वाली मोटर मे बैठे कि अपनी दुनिया के बादशाह हो गए। मानो हरेक महकमा एक-एक मिनिस्टर की जागीर थी जो उसे दे दी गई थी। शासकीय दल मजबूत था, विरोधी पक्ष कमजोर था, सब अखबार खुशामद करते थे, मिनिस्टरो के भाषणो की रिपोर्ट तथा फोटो छापने मे स्पर्धा करते थे, फिर किस बात का डर है? मुख्य मन्त्री जोशी जी सर्वेसर्वा है। उनके जैसा नेता मिलना दुर्लभ है। यह प्रान्त का परम सौभाग्य है कि वे इस गभीर सक्रान्ति-काल मे शासन की बागडोर सम्हालने के लिए विद्यमान है। वरना यह सब राष्ट्र-निर्माण का कार्य भला और किसीसे हो सकता था?

मन्त्रियो ने केवल एक तन्त्र बना लिया था कि मुख्य मन्त्री के मार्ग मे आडे से भी नही जाना। वे जो कहते, जिस काम मे दिलचस्पी रखते उसे चुपचाप बिना किन्तु-परन्तु किए कर देना। मुख्य मन्त्री की दिलचस्पी बडी व्यापक थी, क्योकि उनकी उम्र सबसे ज्यादा थी, उनका परिचय भी सबसे अधिक था और उनका परिवार भी सबसे बडा था।

जोशी जी से कोई उनका पुराना मित्र या साथी कह दे कि जोशी जी, आपके रहते हुए मेरा लडका बिना नौकरी का कैसे रहे? तो फौरन जोशी जी उसकी मदद करने के लिए तत्पर हो जाते। वह यदि एम० ए० मे थर्ड क्लास आया हो तब भी उसे प्रोफेसरी मिल जाएगी और बाकी फर्स्ट क्लास पास या डॉक्टरेट पाए

हुए लोग भी झख मारते बैठे रहेगे, क्योकि उनकी कोई पहुच नही है। उनके बचपन के मित्र की विधवा पत्नी ने खबर भिजवा दी कि लडकी की शादी नही हो रही थी पर अब किसी तरह हो गई है। लेकिन दामाद अब बेकार बैठा है—बी० ए० पास तो है पर नौकरी नही मिलती। लल्ली के पिता होते तो कोई परवाह नही थी। जोशी जी उसे पुलिस असिस्टेट सुपरिटेडेट बनवा देते। पब्लिक सर्विस कमीशन के मेम्बर उन्हीकी नामजदगी से बने व्यक्ति थे। सिर्फ उसके चेयरमैन हाईकोर्ट के सेवा-निवृत्त जज थे, उनसे जोशी जी प्रत्यक्ष कुछ नही कहते। पर बाकी दो सदस्य थे वे अगली रात को मीटिंग मे जाने के पहले जोशी जी के चरण छूने अवश्य चले आते ताकि उनके लायक कोई काम हो तो उसमे कोई कसर न रह जाए। इसके अलावा पुलिस विभाग के प्रमुख की जगह ऐसे महापुरुष को रख दिया गया था कि उनकी शासकीय दृष्टि से यही एक्सपर्ट राय रहती कि लल्ली के पति जैसा होनहार पुलिस का अफसर मिलना दुश्वार है और वह डिपार्टमेन्ट के लिए 'असेट' (उपयुक्त) रहेगा। उसकी राय जाहिर होते ही वे दो मेम्बर कहते, भई, आखिर महकमे का मुश्किल काम तो आई० जी० साहब को चलाना है, उनका कार्य सुचारु रूप से चले इसमे मदद करना कमीशन का काम है। जो पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी अपनी विवेक-बुद्धि या स्वतत्र बुद्धि के कारण ऐसी राय देने की क्षमता नही रखते थे उन्हे प्रमोशन देकर या तो केन्द्रीय सरकार को दे दिया जाता था, या अन्य किसी रियासतो के सघ को, जहा से अनुभवी अफसरो की माग अक्सर आ जाया करती।

एक बार सेक्रेटरिएट मे पाच सौ हिन्दी के टाइपराइटर खरीदने की बात आ गई। जोशी जी के परिवार का एक व्यक्ति सामने आया, और टाइपराइटर की एजेन्सी ले ली और बोला, 'मामाजी, अमुक टाइपराइटर खरीदने का ऑर्डर मिल जाए तो फिर मेरी रोजी चल निकलेगी।'

मामाजी उदार हृदय के व्यक्ति थे, उस आदमी की रोजी का काम चला देते। वही बात सरकारी मोटरो के इन्श्योरेन्स के बारे मे, राजा-महाराजाओ के बीमे के बारे मे, मैगनीज की खदानो के ठेको के मामले मे, शिक्षा-विभाग की या प्रचार-विभाग की मोटर-बसे खरीदने मे। स्वतत्र भारत के एक विशाल और सम्पन्न प्रदेश के कारोबार मे ऐसे हजार तरह के काम निकलते जिनमे लाखो-करोडो की खरीद-फरोख्त होती। मामाजी का प्रभाव सारे शासन-क्षेत्र मे था। उनके आश्रित व्यक्ति

ऐसा मानते थे कि इस शासन के प्रभाव मे हमारा भी थोडा-सा हाथ है, हमारी भी सुनवाई होनी चाहिए। उनके महासागर जैसे विशाल हृदय की जलराशि पर उनके मित्र और परिवार के लोग अपनी-अपनी नौकाए उतारकर जीवन-क्रीडा करने लगे। उनके लिए तो जैसे आसमान से स्वर्ग ही नीचे उतर आया। गिरधारी का बगला बन गया और दो मोटरे आ गई। और लोगो के पास भी मोटरे आ गई। एक से एक बढिया और विशालकाय। जोशी जी के अहाते मे तीन सरकारी मोटरे खडी रहती तो पाच निजी मोटरे भी रहती जो उनके परिवार के लोगो ने अपनी-अपनी कमाई और पुरुषार्थ से खरीदी थी। जब ये मोटरे राजधानी के राजमार्गो से गुजरती तो लोग कह उठते, राजपरिवार के लोग जा रहे है, स्वराज्य इन्हीके भाग्य को जगाने के लिए आया है। मामाजी अपने परिवार के लोगो को अपने पैरो पर खडा हुआ देखकर सुख अनुभव करते। वे कहते कि मै यदि अपने जीते जी इनका ठीक-ठाक करके नही जाऊगा तो और कौन करेगा ? जान-बूझकर उन्होने किसीका नुकसान नही किया। हा, जो उनके राजनीतिक प्रतिस्पर्धी थे उनको खतम करने मे वे दया-मुरव्वत नही बरतते। राज्ययन्त्र की उपादेयता इसीमे है कि वह निष्कण्टक और निर्विरोध हो, उसमे शत्रुओ के लिए कोई स्थान नही है। जोशी जी की यह ख्याति थी कि वे मित्रो के सबसे बडे मित्र थे, और शत्रुओ के सबसे भयकर शत्रु। इसलिए कोई उनके रास्ते मे आने की हिम्मत नही करता था। सब उनकी कृपा पाने के लिए लालायित रहते थे। उनके हाथ मे कितनी सत्ता थी! हाईकोर्ट के जजो की नियुक्तियो मे उनकी सिफारिश काम करती। केन्द्रीय सरकार पर उनकी बडी धाक थी, क्योकि उन्होने एक विशाल सूबे के कारोबार को दृढता से सम्हाला था। उनके यहा कानून और व्यवस्था की कोई उलझन नही थी, शासकीय दल का विशाल बहुमत था, विरोधी-पार्टिया तहस-नहस हो गई थी। दिल्ली से प्रधान मन्त्री या और कोई नेता दौरे पर आते तो उनका इन्तजाम इतना दुरुस्त रहता कि वे खुश होकर जाते। इस प्रदेश ने केन्द्र के लिए कभी कोई समस्या या उलझन पैदा नही की, न कोई प्रश्नचिह्न कभी प्रस्तुत किया। इसलिए जोशी जी की शान-शौकत मे क्या कमी थी ? और यदि नियति ने काशी के पच-पडितो के मुह से यह कहलवा दिया कि जोशी जी अपने भाग्य मे धर्मराज युधिष्ठिर, सम्राट अशोक, गो-ब्राह्मण प्रतिपालक शिवाजी और महाराजा छत्रसाल का अश लेकर इस भूखण्ड पर अवतरित हुए है तो फिर स्वय

पूरणचन्द्र जी जोशी बेचारे इस सत्य को मानने से इनकार कैसे कर सकते हैं ? जय हो ! जय हो ! जय जय हो ! बस, यही दुन्दुभि उनके कानो मे चारो तरफ सुनाई देती थी।

१४

रघुनाथ सहाय ने इशारा किया और उनके कृपापात्र, नगर के मशहूर पी० डब्ल्यू०डी०ठेकेदार हातिमभाई ने मनमोहन बाबू के लिए एक बडी शानदार डिनर पार्टी तय कर डाली। यो हातिमभाई का एक पैंतीस लाख का टेडर भी सरकार के सामने पडा था। न भी होता तो उनका काम तो हमेशा सरकार से पडता ही रहता था, फिर वह सरकार अंग्रेजो की हो या भारतीयो की। अंग्रेज़ी हुकूमत के जमाने मे भी उनका बहुत बोलबाला था। उनके वालिद अब्बासभाई को उन दिनो खान-बहादुर का खिताब बख्शा गया था और गवर्नर की कोठी मे उनका बडा मान था। युद्ध के फण्ड मे भी उन्होने लाखो रुपये दिए थे। यह और बात थी कि लोहे और इस्पात की एजेन्सी मे उससे तिगुने कमा लिए थे। उनकी मृत्यु के बाद उनकी पर-म्परा हातिमभाई ने चलाई थी। वे नौजवान थे, और जहा उनके वालिद दो-चार फिकरे ही अंग्रेज़ी मे बोला करते थे वहा हातिमभाई मैट्रिक होने के कारण उनसे ज्यादा अंग्रेजी बोल लिया करते थे। गोश्त-कबाब से उन्हे मुहब्बत थी और हालाकि कुरान शरीफ मे शराब पीने की सख्त मुमानियत थी, उन्होने उस बन्दिश को इसलिए नही माना कि उन्होने कुरान शरीफ एक बार भी पढा नही था। पढने के बाद उसपर अमल लाज़िमी हो जाता है ऐसा उनका ख्याल था। इस मामले मे उनके वालिद साहब ने जो कमाया उसकी विरासत मे आखिर उनका भी हिस्सा तो था ही। नाच-गाने का भी शौक था। गोया उनकी तबीयत रगीन थी। रघुनाथ सहाय ने सोचा कि मनमोहन बाबू का मिजाज खुलाने और खिल उठाने मे हातिमभाई बडा काम करेगे। शहर से चालीस मील दूर खारी बावली के एक पहाडी डाक बगले मे पार्टी का इन्तजाम हुआ। चूकि पार्टी गैर सरकारी ढग की थी, उसकी दावत देने के लिए हातिमभाई और श्रीमती तारामती सहाय गई। मिसेज़ सहाय

ने मिसेज मनमोहन से मिलकर खुद निमन्त्रण देने की बात उठाई तो मिनिस्टर साहब बोले, वे खुद यह निमन्त्रण उनके पास पहुचा देगे। लेकिन उन्हे शक था कि अपने स्वास्थ्य की नाजुक हालत मे वे आ सकेगी या नही। श्रीमती सहाय ने फौरन कहा कि ऐसी हालत मे उनका तकलीफ उठाना गोया उनपर बोझ डालने जैसा है। फिर धीरे से हातिमभाई ने पूछा कि हुजूर को गाने का शौक हो तो उसका इन्तजाम भी किया जाए। सभ्य समाज मे यह कहना कि गाने का शौक नही है एक ऐब समझा जाता है, इसलिए मिनिस्टर साहब ने यह तो कहा कि हा, गाने का शौक तो है पर इतनी तकलीफ आप काहे को करते है ? हातिमभाई उडती चिडिया पहचानते थे, फौरन एक पेशेवर गानेवाली हसरत अदा जान को लाने का इरादा कर लिया। सरकारी अफसरो मे और किसीको दावत नही दी गई, इस बिना पर कि पार्टी प्राइवेट है, अनौपचारिक है। हातिमभाई ने पूछा, 'क्या वक्त सात बजे शाम का रखा जाए ?'

'नही, साढे आठ बजे का रखिए क्योकि मुझे उस दिन शाम को साढे छ बजे शायद कोई और एगेजमेन्ट है।' ऐसा कहकर उन्होने घण्टी बजाई। चपरासी आया तो पी० ए० को बुलवाकर पूछा, 'क्यो बाबू, शनिवार की शाम को साढे छ बजे कहा का 'फक्शन' है ?'

'सरकारी कॉलिज मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जन्मतिथि का समारोह है, और भारतेन्दु साहित्य-समिति का उद्घाटन है।'

'हरिश्चन्द्र की जन्मतिथि ?' मिनिस्टर साहब ने कुछ सोचते हुए कहा। फिर पी० ए० से पूछा, 'शिक्षामन्त्री वहा चले जाते तो अच्छा होता।'

'वही जानेवाले थे, पर एकाएक उन्हे कार्यवश दिल्ली जाना पडा, जहा से शिक्षामन्त्रियो के सम्मेलन मे शामिल होने के लिए कश्मीर जाना पडेगा। जाते समय कह गए है कि आपसे उस काम को निपटा लेने के लिए रिक्वेस्ट की जाए—उनके पी० ए० का फोन आया था।'

'अब आप ही देखिए, हम लोगो का काम किस तरह बढ जाता है। एक शाम भी फ्री नही मिल पाती। अपने डिपार्टमेण्ट का काम तो करना ही पडता है और फिर इस तरह दूसरे डिपार्टमेन्ट का भी काम आ जाता है। खैर, वे हमारे 'कुलीग' (साथी) है तो हमे तो उनका काम निबाहना ही होता है।' तारामती की तरफ मुखातिब होकर मन्त्री महोदय ने कहा।

तारामती और हातिमभाई दोनो ने बडी-बडी आखे निकालकर 'जी हा, जी हा' कहकर बडे जोर से गर्दन हिलाई और देर तक हिलाते रहे, मानो कोई यौगिक एक्सरसाइज कर रहे हो।

फिर मिनिस्टर साहब ने पी० ए० से कहा, 'बाबू, जरा प्रिंसिपल साहब को फोन करके ताकीद कर देना कि कार्य-क्रम ठीक साढे सात बजे बन्द कर दे क्योकि हमे फिर दौरे पर जाना है।'

हातिमभाई और मिसेज सहाय के जाने के बाद उन्होने पी० ए० से कहा,'उस तहसील के रोड कन्स्ट्रक्शन वाले एस० डी० ओ० को हमे मिलने के लिए खबर दे दो कि वह जो नया रोड बन रहा है वह हमे दिखा दे।'

'उस इलाके मे तो कोई रोड नही बन रहा है साहब।' पी० ए० ने कहा।

'पर कोई न कोई सरकारी काम तो होगा ही ? हम वहा सिर्फ डिनर के लिए थोडे ही जाएगे ?'

'साहब, वह डाक बगला अपने ही महकमे मे आता है। उसका मुलाहिजा तो आप हमेशा ही कर सकते हैं।'

'हा, यह ठीक है। एस० डी० ओ० को खबर कर दो कि हम डाक बगले का इन्स्पेक्शन करेगे।'

'साहब, मुझे भी साथ आना होगा ?' पी० ए० ने धीरे से पूछा। हातिमभाई की पार्टिया कैसी होती हैं इसका उसे कुछ अन्दाज था और उसकी जीभ थोडी लपलपा रही थी।

'नही, तुम्हारे आने की जरूरत नही। तुम उस दिन 'ऑफ' ले लेना।'

१५

गवर्नमेन्ट कालेज मे भारतेन्दु साहित्य-समिति के उद्घाटन के अवसर पर प्रिंसिपल साहब, हिन्दी विभाग के प्रोफेसर तथा समिति के पदाधिकारी-गण, जिनमे दो छात्राए भी थी, उपस्थित थे। श्री रघुपति सहाय और मिसेज सहाय नही थे, क्योकि वे पहले ही इन्तजाम की देखरेख करने के लिए खारी बावली

पहुच गए थे। कॉलेज मे मनमोहन बाबू का हार्दिक स्वागत किया गया। फूल-मालाए पहनाई गई, फोटो खीचा गया। मनमोहन बाबू मच पर बैठे तो उन्होने देखा कि नगर के कुछ प्रमुख साहित्यकार भी सामने बैठे हैं। उन्हे देखकर उन्हे कुछ अटपटा जरूर लगा कि इस साहित्यिक विद्वन्मण्डली मे किस तरह का भाषण दिया जाए। पर उनकी धारणा थी कि सार्वजनिक जीवन का अनुभवी खिलाडी होने के कारण मन्त्री किसी भी विषय पर बोल सकता है, और प्रसग की शोभा निभा सकता है। स्वागत मे भारतेन्दु साहित्य-समिति के विद्यार्थी-अध्यक्ष ने जो लिखित भाषण पढा उसमे मनमोहन बाबू के हिन्दी-प्रेम और साहित्य-सेवाओ का बडा विस्तृत उल्लेख था। वे हिन्दी साहित्य के उद्भट विद्वान है, स्वय साहित्य-निर्माण मे उनकी अत्यत रुचि है, और यह उनकी कर्तृत्वशक्ति और मिशनरी स्पिरिट का ही परिणाम है कि जिस विशिष्ट जाति से वे आए है उसमे हिन्दी का इतना प्रचार हो रहा है। ऐसे विद्वान हिन्दी-प्रेमी से बढकर भला हमारी भारतेन्दु-साहित्य-परिषद् का उद्घाटन करने के लिए और कौन योग्य व्यक्ति मिल सकता था? और सभापति चूकि साहित्य-गगन मे सचार करने का स्वप्न देखा करता था, उसने अन्त मे अपनी प्रतिभा का आविष्कार इस तरह किया कि हमारी समिति का नाम भारतेन्दु है तो हमारे उद्घाटनकर्ता, मान्य अतिथि कमलेन्दु हैं, क्योकि उनकी सुयोग्य विदुषी पत्नी का नाम कमला है, और आज मुझे इस मच पर से घोषित करते हुए हर्ष होता है कि मनमोहन बाबू हमारे प्रथम राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल के सबसे युवक मन्त्री है, इसलिए आज वे हमारे लिए 'युवकेन्दु' भी हो गए हैं, अर्थात् युवको मे चन्द्रमा है। अतिथिगण खिलखिलाकर हस पडे और छात्रो ने तालिया बजाईं।

जब मन्त्री महोदय भाषण देने के लिए उठे तो सभा स्तब्ध थी। सामने लाउड-स्पीकर लगा था जिसकी आवाज बाहर सडक पर भी पहुच रही थी। उनके मुखार-बिद से साहित्य-सुमनो की वृष्टि होने लगी। वे बोले, 'आज का यह अत्यन्त पवित्र दिवस, बडा पुण्य दिन हमारे देश के इतिहास मे पर्व की बेला है, इस दिन का स्वर्णाक्षरो मे उल्लेख किया जाएगा, क्योकि आज हमारे देश के प्रसिद्ध सम्राट भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ, आज नही, वर्षों पहले, शताब्दियो पहले, सहस्राब्दियो पहले, हमारे पुरातन गौरवशाली अतीत काल मे।'

लोग सतर्क होकर सुनने लगे। सामने की पक्ति मे बैठे साहित्यकार अपनी

कुर्सियो मे जरा हिले । मन्त्री महोदय बोले, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भला इस देश मे कौन नही जानता ? और इस देश मे ही क्या, दुनिया के कोने-कोने मे ऐसा कौन-सा देश हे, जो उनकी कीर्ति से परिचित नही है । जिसने सत्य के लिए अपना राज्य त्याग दिया, और स्वय चाण्डाल के हाथ मे बिका उस सत्यवादी भारतेन्दु राजा हरिश्चन्द्र का नाम कौन नही जानता ?'

इतना भर कहने की देर थी कि लोगो ने कहकहा लगाना शुरू किया, विद्यार्थियो ने तालिया पीटी और फर्श पर जूते रगडने शुरू किए । मन्त्री जी को पहले तो लगा कि उनका भाषण पसन्द किया जा रहा है पर बाद मे पास बैठे हुए हिन्दी के प्रोफेसर साहब के चेहरे का विचित्र भाव देखकर उन्हे कुछ खटका जरूर हुआ। सभा मे शोर तो हो ही रहा था, इसलिए प्रोफेसर साहब ने हिम्मत की और खडे होकर धीरे से उनके कान मे कहा, 'सर, आप सत्यवादी हरिश्चन्द्र की बात कह रहे हैं, पर यह समारोह साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बारे मे है ।'

'ऐसा ?' मिनिस्टर साहब ने कहा, जो लाउड स्पीकर के जरिये लोगो तक स्पष्ट ध्वनि मे पहुच गया । 'कोई बात नही,' कहकर उन्होने हाथ उठाकर सभा को शान्त रहने का आदेश दिया और अपना भाषण जारी किया, 'पर आज मैं सत्यवादी हरिश्चन्द्र की बात करने के लिए नही आया हू, हालाकि वे भी भारत के इन्दु थे, भारतेन्दु थे । जो व्यक्ति सत्य के लिए अपने सर्वस्व का होम कर दे वह चन्द्रमा नही कहलाएगा तो कौन कहलाएगा ? पर आज हम तो साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की जन्मतिथि मनाने के लिए यहा एकत्रित हुए है । मै आपसे आग्रहपूर्वक निवेदन करूगा कि इन दो भारतीय महापुरुषो के बीच आप कोई गलतफहमी न आने दे । एक पौराणिक युग के धर्मात्मा है तो एक ऐतिहासिक युग के साहित्यात्मा है '

लोगो को आशा बधने लगी । मन्त्री महोदय का भाषण बढता चला, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की सेवाओ को कौन नही जानता ? हिन्दी साहित्य के लिए उन्होने क्या-क्या नही किया ? मै आपसे इस मच पर से पूछना चाहता हू कि साहित्य का ऐसा कौन-सा क्षेत्र है, विशेषत हिन्दी साहित्य का, जिसे सपन्न और समुन्नत बनाने मे उन्होने योगदान नही दिया ? उस हिन्दी साहित्य को, जिसमे बाद में चलकर तुलसीदास जी जैसे महाकवि पैदा हुए '

विद्यार्थियो ने फिर तालिया बजाईं, पर इस बार चूकि मन्त्री महोदय को

भरोसा था कि तुलसीदास हिन्दी के ही कवि थे, इसलिए वे जो कह रहे है वह बिलकुल ठीक कह रहे है, वे बोलते गए, 'अहा-हा ! क्या हमारी प्यारी हिन्दी भाषा है, और कैसे श्रेष्ठ कवि है हमारे सत तुलसीदास ! कैसी उज्ज्वल है उनकी रचना !'

और चूकि स्कूल के कोर्स मे उन्हे 'अरण्यकाण्ड' पढाया गया था, वे तुलसीदास जी के काव्य से अपरिचित नही थे, बोले, 'कैसा सुन्दर उनका काव्य है—अहा-हा !

'जिमि पिपीलिका सागर थाहा।
महा मन्दमति पावन चाहा।'

और इस तरह उन्होने भारतेन्दु की जन्मतिथि पर तुलसीदास जी पर जो कुछ भी मालूम था वह कह डाला और भारतेन्दु साहित्य-समिति के उद्घाटन की घोषणा कर डाली।

और जब वे भाषण समाप्त करके तथा चाय-बिस्कुट खाने के बाद मोटर मे बैठे तो अपने सामने फडफडाते हुए राष्ट्रीय झण्डे की तरफ देखकर गर्व से बोले कि हम लोग तो किसी भी प्रसग को निभाने की शक्ति रखते है। इन साहित्य-वालो को बेवकूफ बनाने मे भला हमे क्या देर लगती है ? ड्राइवर को उन्होने खारी बावली के पहाडी डाक बगले मे चलने के लिए हुक्म दिया और उनके सामने मिसेज तारामती सहाय की मदभरी आखे चौधिया उठी। देखे, आज की पार्टी कैसी खुलती है !

१६

हसरत अदा जान का गाना सुनकर मनमोहन बाबू की तबियत फडक उठी। गाना वे बहुत कम जानते थे, पर जिस समझदारी के साथ वे गर्दन हिलाते या ताल ठोकते उसे देखकर क्या मजाल कि कोई कह दे कि मनमोहन बाबू पक्के गाने के पारखी नही है ! यह बात अलग है कि एकाध बार उनकी गर्दन बेसुरी तान पर हिल जाती और ताल अक्सर 'सम' के बाहर ठुक

जाता, पर इस मामले मे सुनने वालो का बहुमत उन्हीके साथ था, क्योकि शास्त्रीय सगीत की समझ बहुत कम लोगो मे होती है, और उस महफिल मे तो किसीको थी ही नही। खुद हसरत अदा जान भी, जहा तक सगीत शास्त्र का ताल्लुक था, बिलकुल मामूली थी, यानी तीसरा दर्जा पैसेंजर गाडी। लेकिन उसका कण्ठ बडा सुरीला था, और उससे बढकर उसका चेहरा बहुत ही हसीन था। उसकी चाल और हरकतो मे एक अजीब-सी अदा और नजाकत थी जिसको देखकर बरबस आशिको के दिलो पर छुरिया चल जाती। ये आशिक वक्त-बे-वक्त बदलते रहते पर इस समय उनमे सबसे पहला नबर हातिमभाई का था। उसे वे शहर के बाहर एक छोटे-से बगले मे रखे हुए थे और पूरा खाना-कपडा देने के बाद तीन सौ रुपया पॉकेट खर्च के लिए देते थे। इस समय तो वह उनके दिल की बेगम तो थी ही, लेकिन जिंदगी के ताश के खेल मे हुकुम का इक्का भी थी। जब उन्हे कोई बडा हाथ सर करना होता था तब वे उसकी चाल खेला करते थे और हमेशा फतह पाते थे। उनका पैंतीस लाख का टेण्डर अटका पडा था, और खुश किस्मती से उनके महकमे का मिनिस्टर एक तीस साल का नौजवान था जिसके जिस्म पर तो मोटे खद्दर के कपडे थे पर भीतर ही भीतर एक फडकने वाला कमजोर दिल था। जिन्दगी भर मनमोहन बाबू ने गरीबी और अपमान छोडकर और कुछ भोगा नही था। पर घर मे खाने के लाले पडते थे। जब जो चाहे दुत्कार देता था। पर किसी तरह वह पढाई मे ध्यान देते रहे। इसमे उनके यार-दोस्तो की मदद ज्यादा जिम्मेदार थी। उन्होने चन्दा करके उन्हे बनारस भेजा। एक विशिष्ट जाति मे पैदा होने के कारण उन्हे प्रोत्साहन दिया गया और फ्रीशिप मिल गई। वहा के राष्ट्रीय वातावरण का असर पडा तो सन् तीस के विद्यार्थी-आन्दोलन मे कूद पडे। गिरफ्तार हुए और छ महीने की जेल काटी सो सिर पर शहादत का सेहरा चढ गया। किसी कदर ले-देकर ग्रेजुएट हो गए, तो एकदम युवक नेता का मुकुट पा गए। प्रान्त की राष्ट्रीय दल की कार्यकारिणी-समिति मे अपनी जाति के प्रतिनिधि के रूप मे ले लिए गए। और सन् ३६—३७ का चुनाव आया तो असेम्बली का टिकट मिल गया। दो साल एम०एल०ए० रहे, फिर ४०—४१ के आन्दोलन आए तो जेल जाना पडा। उसमे अपनी मर्जी या इच्छा की खास बात नही थी। और जब छूटकर आए तो पक्के नेता बन गए और अब मन्त्रिमण्डल मे जगह पा गए। अव्वल तो उनके सस्कार जैसे थे वैसे थे ही, जिन्दगी मे कोई सुख-विलास भोगने

को नही मिला। जवानी का खून गरम था, बगावत करता था। पिता ने बचपन मे ही एक निपट गवार देहाती लडकी से शादी कर दी थी जो देखने मे भी बदसूरत थी। उस बेचारी को गवार इसीलिए कहते थे कि पति उसका कॉलेज मे पढता था और वह प्राइमरी शाला की दहलीज भी नही चढी थी। दोनो मे पूरब और पच्छिम का अन्तर था। मनमोहन बाबू ने कॉलेज मे लडके-लडकियो को साथ पढते देखा था, उनके बीच हलके किस्म के रोमास खिलते देखे थे, सिनेमा मे उनके प्रकट स्वरूप दिखाई देते थे, और जवानी मे जो उपन्यास पढे जाते थे उनमे तो क्या पूछना है ? मनमोहन बाबू स्वय रोमाटिक तबीयत के थे और उनका जिगर बार-बार फडक उठता था और उनके हृदय मे एक कसक, एक वितृष्णा, एक उद्दाम अतृप्ति घर कर जाती। जब-तब मन मे यही सवाल उभरता कि हमारी जिन्दगी तो बेकार हो रही है।

लेकिन जब वे मन्त्रिमण्डल मे ले लिए गए तब तो उनके सामने जिन्दगी के वे सब दालान खुल गए जिनके स्वप्न उन्होने फिल्मो और उपन्यासो की दुनिया मे देखे थे। आज वे स्वप्न सत्य हो गए, रगीन स्वप्न—इन्द्रधनुषो से भी अधिक सुहावने, अधिक मधुर, अधिक मादक। विवेक की लगाम कमजोर थी, आत्मा की आवाज़ उन्होने जगाई नही थी, इसलिए शरीर का घोडा घुडदौड मे खुलकर खूदा-खादी करने पर आमादा हो गया।

एक ही डर था कि मुख्य मन्त्री को ये बाते न मालूम पडे, और अखबारो मे उनका जिक्र न निकले। दिल के गुबारो को निकालने के लिए उस पहाडी डाक-बगले जैसी अलग-थलग एकान्त जगह ही बडी मुफीद थी। वहा न अखबारो की आख पहुच सकती थी, और न मुख्य मन्त्री की निगाह। जो लोग उनके आनन्द-विलास मे शामिल थे उनकी दुनिया ही अलग थी। और हातिमभाई को अपने तजुर्बे से मालूम था कि अखबारो का मुह बन्द करने के लिए चादी के लड्डू से बढ-कर कोई चीज़ कारगर नही होती। डॉ० छदामीलाल के 'जागरण' आफिस मे दो बार वे हज़ार रुपये की रकम सहायता के रूप मे गिनाकर आए थे। रघुनाथ सहाय ने मनमोहन बाबू को आश्वासन दिया कि हातिमभाई के इन्तजाम और सतर्कता मे एक नुक्ते की भी खोट नही रह सकती—माननीय मिनिस्टर साहब बिना किसी सकोच या अदेशे के रहे।

मनमोहन बाबू को अपने दिल को समझाने के लिए और दूसरे पर ज़िम्मेदारी

ठेलने के लिए ऐसे ही आश्वासन की जरूरत थी। उसके मिलते ही उनकी बाछे खिल उठी। उन्होने अपने आपको उस क्षण के आनन्द-सागर मे हिलोरे लेने के लिए पूरी तरह छोड दिया, स्वच्छन्द और निर्बन्ध। आज का मोहक और उन्मादक अनुभव ही जीवन का सबसे बडा सत्य है, कल की कल देखी जाएगी।

एक बार उन्हे झिझक हुई, जब 'शैम्पेन' का प्याला उनके सामने खुद श्रीमती तारामती सहाय ने पेश किया। सामने मिस पेंटर्मन भी अपने नायलॉन के स्कर्ट मे बैठी हुई थी जिसका गला इतना खुला था कि उसके गौरवर्ण उभरे हुए स्तन बाहर झाक रहे थे। उसने गहरे लाल रग की लिपस्टिक लगाई थी और उसके चेहरे पर भी उन्माद का भाव खिल उठा था। वह भी अपनी चचल आखो से मानो मनमोहन बाबू से मनुहार कर रही थी कि ले लीजिए न, थोडी-सी शैम्पेन लेने मे क्या हर्ज है?

और तारामती? आज उसके निर्लज्ज बनाव-शृगार ने तो हद कर दी थी। उसका चेहरा वासना से आरक्त हो उठा था। उसकी साडी भी इतनी पतली थी कि भीतर का पेटीकोट और बॉडिस साफ-साफ दिखाई दे रहे थे। वह भी अपने तारुण्य के समस्त वैभव का प्रदर्शन करने मे कोई लज्जा अनुभव नही कर रही थी। उसने शैम्पेन का प्याला क्या दिया मानो अपने व्यक्तित्व का सारा सौन्दर्य ही मनमोहन बाबू के सामने उघाडकर रख दिया कि लीजिए शैम्पेन के साथ यह भी आपकी सेवा मे समर्पित है।

एक पर्वतीय डाक बगले का एकान्त, सामने रूपवती कामिनियो का उन्मादक सौन्दर्य, और काच के प्याले मे छलकती हुई गुलाबी शराब।

इन प्रलोभनो से तो विश्वामित्र जैसे बडे-बडे ऋषि-मुनि नही बच पाए, सर्वसाधारण कमजोरियो को, अतृप्त आकाक्षाओ और क्षुधाओ को अपने शरीर मे समाकर रखने वाले मनमोहन बाबू की भला गिनती ही क्या थी?

उन्होने केवल पूछा कि यह क्षेत्र ड्राइ एरिया (निषिद्ध क्षेत्र) तो नही है।

हातिमभाई ने फौरन उत्तर दिया, 'जी नही, जी नही। ड्राइ एरिया की सरहद इस डाक बगले से पाच मील पीछे रह जाती है। यह तो जगली इलाका है, आदिवासियो की बस्ती है। यहा भला ड्राइ एरिया कैसे रहेगा?'

मनमोहन बाबू की विवेक-बुद्धि शान्त हो गई कि वे कानून भग नही कर रहे है। उन्होने प्याला लेने के लिए हाथ बढाया तो हातिमभाई वहा से खिसक

गए। रघुनाथ महाय तो पहले ही वहा से हट गए थे और बावर्चीखाने मे डिनर के इन्तजाम की देख-रेख मे लग गए थे।

उस छोटे-से कमरे मे रह गए थे सिर्फ मनमोहन बाबू, मिसेज तारामती सहाय और मिस पैटर्सन। बगल के कमरे मे हसरत अदा जान और उसके साजिन्दे तबले और सारगी की ठोक-पीट कर रहे थे।

मनमोहन बाबू ने तारामती के हाथ से शैम्पेन का प्याला ले लिया। लेते-लेते उनकी उगलिया मिसेज सहाय की उगलियो को स्पर्श कर गई। मिसेज सहाय ने अपनी उगलिया हटाने की तनिक भी कोशिश नही की, बल्कि प्याले को वे तब तक पकडी रही जब तक मनमोहन बाबू ने उसे पी न लिया। शैम्पेन के स्वाद मे उन्होने अपने होठो पर जीभ फेर ली।

'इसे शराब कहना इसका अपमान करना है' श्रीमती सहाय ने कहा, 'यह तो एक तरह का अगूरी शरबत है, जो फ्रास की रमणियो को विशेष प्रिय है। हमने आपको असली शराब तो दी ही नही।'

शरबत का नाम सुनकर मनमोहन बाबू का मन शान्त हुआ। इतने मे मिस पैटर्सन ने भी शैम्पेन का एक और प्याला आगे बढाया।

मनमोहन बाबू ने भी अपना हाथ आगे बढाया, पर मिस पैटर्सन कुर्सी से खडी हाकर बोली, 'ठहरिए, आप तकलीफ न कीजिए। मै खुद इसे आपको पिला देती हू।'

वह उठी और अपने बाए हाथ से हलके से मनमोहन बाबू का सिर थामा, और दाहिने हाथ से प्याला उनके ओठो को लगाने के लिए सामने झुकी, सो इस तरह कि उसकी छाती और शैम्पेन का प्याला दोनो ही मनमोहन बाबू के मुह के पास आ गए। मिस पैटर्सन की लैवेण्डर और पाउडर की उन्मादक सेण्ट मनमोहन बाबू की नासिका मे भर गई और उनका सन्तुलन बिगडने लगा। दूसरा प्याला रिक्त करके अपना चेहरा पीछे करने के बहाने उन्होने मिस पैटर्सन की छाती पर एक क्षण के लिए टिका दिया। उस मासल स्पर्श के कारण उनके शरीर मे एक कपकपी भर गई जो शैम्पेन के नशे के कारण विद्युत् की लहरी की तरह सिर से नीचे तक फैल गई।

तारामती ने मिस पैटर्सन की तरफ आखे मटकाते हुए देखकर कहा, 'कहो, कैसी रही?'

यह कार्यक्रम कितनी देर तक चलता रहा और किस प्रकार चलता रहा, पता नही। मनमोहन बाबू धुत होकर इस दुनिया से उठकर परियो और अप्सराओ के स्वर्ग मे विचरण करने लगे। उसमे हसरत अदा जान के सगीत ने और उसके नाज-नखरो ने आग मे तेल झोकने का काम किया।

उधर बावर्चीखाने मे रघुनाथ सहाय ने हातिमभाई को मुबारकबाद दिया कि अब तुम्हारा टेण्डर पास होने मे कोई शक नही है।

और हातिमभाई ने रघुनाथ सहाय को मुबारकबाद दिया कि लाला किरपाराम की पतग कटने मे देर नही है।

दोनो अपनी-अपनी महत्वाकाक्षाओ के सफल होने की सम्भावना देखकर ठहाका लगाकर हस पडे और दोनो ने गिलास से गिलास टकराकर एक दूसरे की 'हेल्थ' के लिए पाचवा जाम चढाया।

इधर मनमोहन बाबू अपना आपा खोकर आनन्द-लोक मे बिहार कर रहे थे कि चपरासी ने कहा, 'हुजूर, एस० डी० ओ० साहब हाजिर हुए है।'

'यहा कौन साला एस० डी० ओ० आया है—बुलाओ उसे।'

दो मिनट मे एक वृद्ध व्यक्ति सामने आए जो काली पतलून पर खाकी कोट पहने हुए थे। ये ओवरसियर से बढते-बढते एस० डी० ओ० तक पहुचे थे और अगले वर्ष ही रिटायर होने वाले थे। घर मे तीन लडकिया शादी को बैठी थी जिनकी चिन्ता मे उनके कन्धे झुके हुए थे, सिर भी झुका हुआ था और उनके बाल पके हुए थे। गले मे तुलसी की माला थी।

उनकी वेश-भूषा देखकर ही मनमोहन बाबू तैश मे आकर बोले, 'तुम एस० डी० ओ० हो ? किस ब्लडी फूल ने तुम्हे एस० डी० ओ० बनाया ? और तुम इस बेवक्त यहा क्यो आए हो ?'

एस० डी० ओ० साहब ने पहले प्रश्न का उत्तर तो नही दिया, पर दूसरे के जवाब मे बोले, 'साहब, आप डाक बगले का इन्स्पेक्शन करने वाले है ऐसा ऑर्डर मुझे मिला, इसीलिए आया हू।'

मनमोहन बाबू नशे मे गुर्राकर बोले, 'हमने इन्स्पेक्शन कर लिया है। अब तुम यहा से फौरन के पेश्तर 'गेट आउट' करो—चलो, जल्दी गेट-आउट !'

वह बेचारा एस० डी० ओ० सलाम करके बाहर चला गया, बडा दुखी और अपमानित होकर। उसका चेहरा स्याह पड गया। हृदय मे जैसे सौ छुरिया बिंध

गई। मन ही मन कहता रहा, आज तीस साल की नौकरी होने को आई, बडे-बडे अग्रेजो के हाथ के नीचे काम किया, पर ऐसी दुर्गति कभी नही हुई। दु ख से, अपमान से, ग्लानि से उसकी आखो मे आसू आ गए।

रघुनाथ सहाय को जब पीछे बावर्चीखाने मे जाकर उनकी पत्नी ने यह घटना सुनाई तो वे फौरन बोले, 'हानिमभाई, यह बात तो अच्छी नही हुई। वह चपरासी भी कैसा बेवकूफ निकला कि सीधा मिनिस्टर साहब के पास उन्हे ले गया और हम इधर पिछवाडे ही बैठे रहे। जाओ-जाओ, हातिमभाई, जरा उस एस० डी० ओ० को सम्हालना। मै यहा हू, इसका उसे पता न चलने पाए।'

हातिमभाई ने क्या कुछ किया सो वे जाने, पर रघुनाथ सहाय को खटका हुए बिना नही रहा। उन्होने अपने निजी चपरासी से कहा कि कल सुबह जाकर एस० डी० ओ० से कह देना कि वे राजधानी आकर हमसे मिल ले।

पर मनमोहन बाबू अपनी ही धुन मे धुत पडे थे। उन्हे किसी बात का अदेशा नही हुआ। उलटे अपनी हुकूमत और सत्ता का अभिमान ही हुआ। उनके राग-रग मे कोई फर्क नही पडा और जब मध्यरात्रि के बाद वापस लौटने का वक्त आया तो बोले कि हम अब सरकारी गाडी से वापस नही जाएगे, मिसेज सहाय की गाडी से जाएगे।

मिसेज सहाय खुद गाडी हाकने के लिए बैठी और मिनिस्टर साहब को पास बैठा लिया। अपने पति से बोली कि आप मिनिस्टर साहब की गाडी मे आइए। मिस पैटर्सन से भी इशारा किया कि आओ, तुम भी इसी गाडी मे चलो। वह भी सामने की सीट पर आकर बैठ गई। पीछे की तीनो सीटे खाली थी, पर मिसेज सहाय ने किसीको नही बिठाया और गाडी स्टार्ट कर दी। अगल-बगल मिसेज सहाय और मिस पैटर्सन और बीच मे मनमोहन बाबू। गाडी हवा से बातें कर रही थी और उसके हिलने के कारण कहिए या धक्को के कारण इधर से मिस पैटर्सन और उधर से मिसेज सहाय उन्हे ठेलती जाती थी और इन दोनो सेण्टो से ओतप्रोत कोमलागो के बीच मनमोहन बाबू सैंडविच की तरह दबे जा रहे थे, मीठे-मीठे दबे जा रहे थे। जब उनका बस न चला तब उन्होने अपने दोनो हाथ ऊपर करके एक हाथ मिसेज सहाय के गले मे परिवेष्टित किया और दूसरा मिस पैटर्सन के। दोनो महिलाए आधुनिक सभ्यता के रग मे रगी थी, उन्होने अपने सिर मनमोहन बाबू के कन्धो पर टिका दिए।

मोटर हवा मे बाते कर रही थी और मनमोहन बाबू का मन उस हवा के झोके के साथ उडकर स्वर्ग-सुख के साम्राज्य मे विहार कर रहा था। और मिसेज सहाय के चेहरे पर एक मन्द स्मित था, विजय की गर्वीली मुस्कराहट।

१७

पी० डब्ल्यू० डी० के एस० डी० ओ० शर्मा जब रघुनाथ सहाय से मिलने के लिए उनके बगले पर गए तो अपना स्वागत-सत्कार देखकर अवाक रह गए। सहाय साहब ने अपनी पत्नी से खुद चाय बना लाने के लिए कहा, और गरम पकौडिया बनाने का हुक्म दिया। बेचारे शर्मा जी, लिहाज और अदब के साथ मिनट-मिनट पर उठ खडे होते। भला डिप्टी सेक्रेटरी की मेम साहब उनकी इतनी आवभगत करे यह कैसा विचित्र सयोग हे ! कैसा सौभाग्य !

'आपका रिटायरमेन्ट कब हो रहा है शर्मा साहब ?'

'अगली जून मे होगा, पर साहब, मै आज ही रिटायर करने की दरख्वास्त लेकर आया हू। मुझसे अब यह नौकरी नही होती।' शर्माजी ने कहा।

'क्यो, क्यो भला, ऐसी क्या बात हो गई ? ऐसा कैसे हो सकता है कि हमारे पुराने अनुभवी अफसरो को हम इतनी जल्दी छुट्टी दे दे। इतने बडे-बडे 'कन्स्ट्रक्शन' के काम पडे है, इतनी बडी-बडी जिम्मेदारिया है, उन्हे निबाहने के लिए आदमी कहा है ? मैने तो आपको इसलिए बुलाया था कि मै आपको एक साल के 'एक्स-टेन्शन' का आर्डर दे दू जो बाद मे चलकर तीन साल तक खीचा जा सकता है। और आप यह उल्टी बात कर रहे है कि आज ही रिटायर कर दो। वाह, यह भी खूब रही ! मेरे विश्वासपात्र आदमियो के बिना इतना बडा डिपार्टमेण्ट भला मै क्या चलाऊगा ? देखो तो डियर, ये शर्मा जी क्या कह रहे है ? मैने ही तुमसे कितनी बार कहा था कि शर्मा जैसा जिम्मेदार और वफादार अफसर इस महकमे मे मुश्किल से मिलेगा। क्या मै इन्हे आसानी से छोड सकता हू ?'

शर्मा जी बेचारे इस शहदभरे स्नेह-प्रदर्शन के सामने भौचक्के रह गए। पर चूकि डाक बगले के अपमान की चोट उनके जैसे ईश्वर-भीरु आदमी के लिए बडी

गहरी थी, वे बोले, 'आप जो कहते है उसके लिए मै आपका शुक्रगुजार हू साहब। पर परसो रात मिनिस्टर साहब ने मेरा जो अपमान कर दिया वह मै बर्दाश्त नही कर सकता। रातभर मर्माहत-सा तडपता रहा। आखिर मेरा क्या कुसूर था ? मेरे इलाके मे उनका दौरा था, वे खारी बावली के डाक बगले का इन्स्पेक्शन करने वाले थे, ऐसी सरकारी इत्तला थी, इसीलिए वहा जाने की मेरी ड्यूटी थी। वरना मैं उस मयखाने मे क्यो जाता ? वहा उन्होने मुझे जैसा झिडका वैसा तो इस तीस साल की सर्विस मे किसीने नही किया। ये सुराजी क्या आ गए, आफत आ गई। इतने बरसो से इनके लिए मुल्क ने मानताए-मिन्नते की, और ये ऐसे निकले! ना साहब, अब इस जमाने मे भले आदमी की कोई गुजर नही है—आप मुझे छुट्टी ही दे दीजिए। मै आपका बडा अहसान मानूगा। मै पूजा-पाठ वाला आदमी ठहरा, ऐसी इज्ज़त-उतारू नौकरी अब मुझसे नही होगी।'

रघुनाथ सहाय भीतर ही भीतर थोडे सकपकाए। उन्हे यह ताज्जुब भी हुआ कि दुनिया मे ऐसा भी कोई मातहत कर्मचारी हो सकता है जो उनके कृपा-प्रसाद को अस्वीकार कर दे! फिर भी मामले की सगीनी जानते थे, अपना धीरज रख-कर बोले, 'हा शर्मा, मुझे कुछ पता चला कि ऐसी कोई वारदात हो गई थी, पर मिनिस्टर साहब ने खुद मुझसे कहा कि उन्हे इसका रज है, उनसे गलतफहमी हो गई। वे तुम्हे जुल्फिकार अली एस० डी० ओ० समझ बैठे जिसके खिलाफ रिश्वतखोरी की जबर्दस्त शिकायत थी। तुम तो जानते हो कि वह कितना बद-नाम मुलाजिम है, और अब तक मै उसे इसी 'रहम' पर बचाता रहा कि बाल-बच्चे वाला आदमी है, सस्पेड (मुअत्तिल) कर दूगा तो मासूम बच्चो की बद्दुआए मुझे लगेगी। पर जब मिनिस्टर साहब के पास बात पहुची तो ऐसे खार खाकर बैठे कि सामने दिखे तो कच्चा चबा जाए। अपने मिनिस्टर साहब बडे ऊचे किस्म के आदमी है—कॉरप्शन (भ्रष्टाचार) तो उन्हे फूटी आखो नही सुहाता।'

मिनिस्टर मनमोहन बाबू ने तो जुल्फिकार अली का नाम तक नही सुना था और डाक बगले के डिनर के बाद उनकी रघुनाथ सहाय से मुलाकात नही हुई थी। वहा से लौटते ही वे इतने थक गए कि तबीयत नरम हो गई और आराम में सारा दिन बिताया। पर रघुनाथ सहाय पुराने तपे हुए अफसर थे जिन्होने कई घाट का पानी पिया था। बात बनाने मे अपनी सानी नही रखते थे।

शर्मा जी कुछ समझ नही सके कि बात क्या है ? असमजस मे पड गए। अपने

सीधा मुख्य मन्त्री के पास खडा हो जाता, या फिर किसी अखबार वाले के यहा पहुच जाता तो क्या मुसीबत होती ?

लाला किरपाराम ! बस अब उनका टिकट कटने का वक्त भी आ गया है। मिनिस्टर साहब अपने चगुल मे है और वह दिन दूर नही है कि इस महकमे का एकछत्र अधिकार मुझे ही मिल जाए। फिर हातिमभाई ही क्या उनके दादा भी आसमान से उतरकर मेरे इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगेगे।

चार्ज देने के बाद शर्मा जी लाला किरपाराम से विदा लेने के लिए उनके बगले पर पहुचे तब लालाजी के कानो पर भी उस पहाडी डाक बगले की घटना की कुछ-कुछ भनक पड चुकी थी। चूकि मिनिस्टर साहब का जाती मामला था इसलिए वे रस्मी तौर पर इनक्वायरी तो नही कर सके पर गैररस्मी तौर पर उन्होने कुछ पूछताछ जरूर शुरू कर दी थी। इसकी खबर रघुनाथ सहाय को मिली और उन्होने फौरन जाकर मिनिस्टर मनमोहन बाबू के कान भरे। अब चूकि उनके सम्बन्ध काफी अनौपचारिक और मित्रता के हो गए थे, वे बोले कि उस पहाडी डाक बगले की तरह तो दर्जन डाक बगले हमारे सूबे मे है, पर लालाजी के रहते हुए हमारी पार्टिया निष्कण्टक नही होगी। लालाजी की हिमाकत तो देखिए कि उन्होने गैररस्मी जाच-पडताल शुरू कर दी है !

मनमोहन बाबू का पानी तो पहले से उथला था ही—फौरन खौल उठा। भन्नाकर बोले, 'उन्हे हमारे व्यक्तिगत मामले मे दस्तदाजी करने का क्या हक है ?'

'हक तो कुछ नही है। फिर भी हिमाकत तो है ही।'

'हम इस आदमी को सेक्रेटरी नही चाहते। हम इसे अभी छुट्टी दे देते है।' मनमोहन बाबू ने कहा।

'नही साहब, मेरी अदना राय मे हमे जल्दबाजी से काम नही करना चाहिए। आखिर वह ऑल इण्डिया इजीनियरिग सर्विस का सीनियर आदमी है, उसे इतनी आसानी से छुट्टी नही दी जा सकती।' रघुनाथ सहाय ने मन ही मन खुश होकर कहा। उन्हे अपना उत्साह दबाने मे बडी कठिनाई अनुभव हो रही थी।

'तो फिर ?' मिनिस्टर साहब ने सिर खुजलाकर पूछा।

'एक रास्ता निकल सकता है। अपने पास सेट्रल गवर्नमेन्ट से एक मेमो आया है कि उन्हे पजाब की किसी बडी नहर-योजना के लिए तजुर्बेकार इजीनियरो की जरूरत है। लालाजी के लिए वह ठीक भी रहेगा। उनकी जन्मभूमि पास है,

बुढापे मे उनका वही पहुच जाना ही ठीक है। मै समझता हू, वे भी खुश ही रहेगे।'

'यह ठीक है। मै आज ही उन्हे बुलाकर पूछ लेता हू।'

'आप स्वय क्यो पूछते है साहब ? आप देखिए तो सही, मै खुद ही ऐसी चाबी घुमाता हू कि वे अपने आप आपके बगले के चक्कर काटेगे और कहेगे कि मुझ-पर इतनी इनायत कर दीजिए और पजाब जाने के इस चास के लिए मेरी सिफारिश कर दीजिए। फिर आपकी जो मर्जी हो वह उनसे कह दीजिए।'

'शाबाश मिस्टर सहाय ! आप सचमुच एक इन्टेलिजेन्ट ऑफिसर है। हमारे डिपार्टमेन्ट के सेक्रेटरी तो आप ही बन सकते है।'

रघुनाथ सहाय घर लौटे तो उनकी मोटर हवा से बाते कर रही थी। पोर्च मे मोटर रुकते ही चिल्ला उठे, 'डियर, अरे माई डियर, तुम कहा हो ?'

वैसे ही भागे-भागे गए और अपनी औरत से लिपट पडे जो नहाने की तैयारी मे बाथरूम की तरफ जा रही थी। बोले, 'काम सोलहो आना बन गया। लालाजी चले, और हम सेक्रेटरी बन गए। मिनिस्टर साहब ने अभी मुझसे कहा है।'

'सच ?' मिसेज सहाय ने मुकराहट से जगमगाते हुए कहा। और फिर धीमे से सहाय साहब के दाहिने गाल की चिकोटी काटकर कहा, 'तुम हो ही वैसे होशि-यार, माई डार्लिंग। मै यह जानती थी, इसीलिए तो दस मर्दो को छोडकर तुमसे शादी की।'

१८

दूसरे दिन रघुनाथ सहाय लाला किरपाराम के बगले पर जाकर बोले, 'सर, एक बडा 'चान्स' आया है। आप मदद करे तो मेरा कल्याण हो जाएगा। आप मेरे डिपार्टमेट के 'हेड' है, आपके सपोर्ट (समर्थन) के बिना बात आगे नही बढेगी।'

'मेरे सपोर्ट से क्या होगा, बताइए ! आजकल मिनिस्टर सब काम डायरेक्ट कर लेते है। सेक्रेटरी को कौन पूछता है, एजी।'

'साहब, मिनिस्टर तो ग्राते-जाते रहते है। ग्राज ये है, कल दूसरे ग्रा सकते है। पर हमारा सेक्रेटरी तो परमानेण्ट है। हमारा तो वही मालिक है। उसकी मदद के बिना तो हम एक इच ग्रागे नही बढ सकते।'

लालाजी बेचारे सीधे-सादे बूढे ग्रादमी थे। इतनी खुशामद से पिघल गए। बोले, 'मिनिस्टर साहब से तो ग्रापकी ग्रच्छी पटती हे, ग्राप चाहे तो सीधे ग्रपना काम करा सकते है। पर ग्राप मुझसे जिक्र कर रहे है यह ग्रापकी शराफत है। खैर कहिए, मै ग्रापकी क्या मदद कर सकता हू।'

'पजाब मे एक बडी नहर बन रही है। दुनिया की नहरो मे उसकी गिनती होगी। वहा उन्हे कुछ सीनियर इजीनियरो की ग्रावश्यकता है। ग्रपने सूबे से भी एक ग्रादमी की माग की गई है। ग्रापका सपोर्ट मिल जाए तो वहा चला जाऊ। इस सेक्रेटरिएट की नौकरी मे क्या धरा हे? फील्ड (मैदान) का ग्रादमी हू, फील्ड मे रहूगा तो कुछ कर दिखाऊगा। सेन्ट्रल गवर्नमेण्ट की नौकरी है, प्रधान मन्त्री उस स्कीम मे जाती तौर पर इटरेस्ट ले रहे है। कही उनकी नजर पड गई तो किसी फॉरेन पोस्ट पर भेज देगे। ग्रागे चलकर न जाने कितने ग्रोपनिग्ज हो जाएगे। जब तक नहर पूरी नही होगी तब तक एक्स्टेशन मिलता रहेगा। ऐसा 'चान्स' दुबारा नही ग्रा सकता।'

जिस तरह से रघुनाथ सहाय ने बात उठाई थी, वह सधे हुए तीर की तरह ठिकाने लगी। जो दलीलें वे पेश कर रहे थे वे सब की सब लालाजी को ग्राकर्षक लग रही थी। इस नई मिनिस्ट्री मे वे ग्रपने ग्रापको सुखी नही पाते थे, ग्रौर ग्रब यहा से उनका दिल भी उचट गया था। इसलिए यह 'चान्स' मुझे ही क्यो न मिल जाए यह हविस उनके दिल मे पैदा हो गई। जरा सोचकर बोले, 'देखिए मिस्टर सहाय, ग्रगर ग्राप फ्रैंकली माइन्ड न करे तो मै कहूगा कि इस चान्स मे तो मै खुद ही इटरेस्टेड हू, एजी। बुढापे मे ग्रपने घर के पास पहुच जाऊगा, बच्ची की शादी करने मे सहूलियत होगी, एजी। इसलिए, ग्राप माइन्ड न करे तो मै ही इसकी कोशिश कर लू।"

'कोई बात नही, कोई बात नही ' रघुनाथ सहाय ने फौरन कहा। 'ग्राप यदि खुद 'इटरेस्टेड' है तो मै ग्रपना नाम तुरन्त वापस ले लेता हू। मेरा तो ख्याल है कि यहा डिपार्टमेण्ट की 'हेडशिप' है, गवर्नमेण्ट की भी 'ग्रथॉरिटी' है इसलिए ग्राप जाना पसन्द नही करेगे। लेकिन ग्रगर ग्रापकी इच्छा हो तो मै सच्चे दिल से

कहता हू कि मै आपके रास्ते मे हर्गिज नही आऊगा। मै तो पुराने डिसिप्लिन को मानने वाला हू, अपने 'हेड' के खिलाफ तो कभी नही जाऊगा।'

लालाजी को रघुनाथ सहाय की बात सुनकर तसल्ली हुई, पर वे जानते थे कि मामला तो मिनिस्टर के हाथ मे है, और रघुनाथ सहाय की उनसे खूब छनती है, अगर वह बीच मे ही टाग मार दे तो वह तो चला जाएगा और मै यही सडता रहूगा। इसलिए उसका तहेदिल से पूरा 'सपोर्ट' मिलना जरूरी है। इसलिए उन्होने कहा

'आप यदि मेरे बारे मे मिनिस्टर से सिफारिश करे तो मै अपने बाद सेक्रेट्रीशिप के लिए आपका ही नाम सुझा दूगा। यो खन्ना भी काफी सीनियर है, और उसका चान्स भी आ सकता है, पर उसे सेक्रेटरिएट का तजर्बा नही है इस बिना पर मै आप ही को 'सपोर्ट' करूगा।'

'आपका जैसा हुक्म हो। मै तो आपकी मर्जी के बाहर जा ही नही सकता। आप मुझे सेक्रेटरी न भी बनाए तब भी आपका खिदमत करना मेरा फर्ज है। वैसे अपने मिनिस्टर साहब बहुत भले आदमी है। वे किसीकी तरक्की के मार्ग मे अडचन नही डालेगे। फिर भी आप कहते है तो मौका मिलने पर मै भी उनसे बात कर लूगा।'

लाला किरपाराम मन ही मन बोले, बडा भला आदमी है। मै नाहक इसके बारे मे गलत सोचता था। फिर जोर से बोले, 'इस मामले को आप जितनी जल्दी उठाए उतना ही अच्छा है। वह सेक्रेटरिएट के एक्स्टेशन का पैतीस लाख का टेडर पडा है। उसीको 'डिसकस' करने के लिए आप मिनिस्टर के पास आज ही चले जाइए। मै उस फाइल पर यही लिख देता हू।'

'जो आपका हुक्म! मै मिनिस्टर साहब से मिलने के बाद आपको टेलीफोन पर इशारा कर दूगा। आप अपॉइण्टमेण्ट (निर्धारित समय) लेकर उनसे मिल ले। आपकी मै थोडी-सी भी खिदमत कर सका तो खुद को बडा खुशकिस्मत समझूगा।'

बाद का काम बडा आसान था। मिनिस्टर साहब ने हातिमभाई का टेण्डर पास कर दिया, और सेक्रेटरी लाला किरपाराम को सेन्ट्रल गवर्नमेण्ट की माग पर यहा से स्पेअर (अलग) कर दिया और लालाजी की सिफारिश पर ही रघुनाथ सहाय को पी० डब्ल्यू० डी० का नया सेक्रेटरी नियुक्त कर दिया। चूकि ये निर्णय जरा महत्वपूर्ण थे इसलिए ऑर्डर पास करने के पहले ये फाइले लेकर वे मुख्य मन्त्री

श्री जोशी जी से सलाह करने चले गए। वहा देखा तो जोशी जी हातिमभाई के अनुकूल पहले से ही बने बैठे थे क्योकि गिरधारी ने मामाजी की कैनवेसिग (मत-प्राप्ति) पहले से ही कर रखी थी। इस टेण्डर के पास हो जाने के बाद हातिमभाई ने इकरार किया था कि वह गिरधारी का बगला रुपये मे चार आने की कीमत पर बना देगा।

जोशी जी खुश थे क्योकि गिरधारी खुश था और उसके मोह को वे टाल नही पाते थे।

गिरधारी खुश था कि उसका खुद का शानदार बगला चौथाई कीमत मे बनने वाला था, जब कि उसका प्रतिस्पर्धी धनजय अभी किराये के मकान मे ही रह रहा था।

लाला किरपाराम खुश थे क्योकि उन्हे पजाब जाने का मौका मिल रहा था। उन्हे इसी बात का रज था कि वे बेचारे रघुनाथ सहाय के मार्ग मे बाधा बने, हालाकि रघुनाथ सहाय को, सेक्रेटरीशिप के लालच मे सूबा छोडने की कौडी भर इच्छा नही थी।

रघुनाथ सहाय भी खुश थे क्योकि उनकी सेक्रेटरी बनने की महत्वाकाक्षा आज पूरी हो गई थी।

और मिनिस्टर मनमोहन बाबू खुश थे कि उन्हे एक रात मे छैल-छबीले बन-कर मौज-मजा करने को मिला था।

उधर उन तीन बेटियो का चिन्तित बाप बेचारा शर्मा भी खुश था कि उसे प्रमोशन पर तब्दील कर दिया गया था और उसे एक साल का एक्स्टेन्शन भी दे दिया गया था।

धन्य है यह शासन जिसमे सब कोई खुश हो, कोई नाराज न रहे। आखिर स्वराज्य इसीलिए तो चाहिए था कि लोग खुशहाल रहे, सुख-समृद्धि से परिपूर्ण रहे।

शासन का यह स्वरूप देखने-समझने मे धनजय को देर लगी, क्योकि वह उसके बहुत निकट था, और उसके उज्वल पक्ष को देखने और प्रचारित करने का उसका काम था, क्योकि प्रान्त का नव निर्माण करना है, प्रजातन्त्र की उच्च परम्पराओ की नीव डालनी है, प्रदेश को धनधान्य से पूरित करना है। कैसे उज्वल स्वप्न थे, और कैसा भयकर और विद्रूप है उनका यह प्रकटीकरण, उनका

कार्यरूप मे परिवर्तन !

धनजय छटपटा उठा, तिलमिला उठा। रात भर बिस्तर पर करवटे लेता रहा, एक क्षण के लिए भी आख नही लगी। जैसे सौ बिच्छुओ के डक उसके शरीर मे सल रहे हो। रह-रहकर उसे उस अज्ञात नारी का व्यथापूर्ण पत्र याद आ रहा था जो आज की डाक से उसे मिला था और जिसमे उसने राखी भेजकर उससे बहिन का रिश्ता जोडकर बन्धुत्व का ऋण चुकाने की याचना की थी।

१९

जिस पत्र ने धनजय की नीद हराम कर दी थी वह इस प्रकार था

'आदरणीय सपादक जी,

'आपको यह अनपेक्षित पत्र पाकर कुछ आश्चर्य होगा क्योकि मेरा आपसे कोई परिचय नही है। पर मै आपके पत्र 'युगान्तर' की नियमित पाठिका हू, आज के 'युगान्तर' की ही नही पर उस पुराने 'युगान्तर' की जिसमे आप आग बरसाया करते थे और जिसकी परम्परा को जेल के कारण आपकी गैरहाजिरी मे आपकी सुयोग्य सहधर्मिणी प्रात स्मरणीया गीताजी ने कायम रखा था। उस 'युगान्तर' की मै पूजा करती थी, पर आज के 'युगान्तर' पर, आप धृष्टता के लिए क्षमा करे, मै तरस खाती हू। उसे पढकर मेरे हृदय मे घोर निराशा और उदासी भर जाती है। उसमे मुझे वह पुराना तेज और पुरुषार्थ नही दिखाई देता। ऐसे लगता है जैसे इसके युयुत्सु धनुर्धारी सपादक ने मोह के कारण अपना गाण्डीव नीचे रख दिया है।

'मै इस प्रदेश के पी० डब्ल्यू० डी० विभाग के एक एस०डी०ओ० की ज्येष्ठ कन्या हू—अविवाहिता हू, यद्यपि मेरी उम्र २२ वर्ष की हो गई है। मेरी पीठ पर दो बहने है, जिनके विवाह की चिन्ता से मेरे माता-पिता दग्ध रहते है। हमारा परिवार धार्मिक वृत्ति का सीधा-सादा परिवार है, और माता जी के कारण हमारे घर मे राष्ट्रीयता की भावना भी सतत विद्यमान रही है। उनके बडे भाई, अर्थात् हमारे मामाजी जालियावाला बाग के गोली काण्ड मे मारे गए थे। माताजी उन्ही-

की मगल स्मृति मे हम लोगो को भी राष्ट्रीयता का पाठ सिखाती रहती है, हालाकि पिताजी के सरकारी नौकरी मे होने के कारण प्रत्यक्ष व्यवहार मे हम लोग कुछ नही कर पाते, सिवा इसके कि स्वदेशी वस्तुग्रो का प्रयोग करे तथा राष्ट्रीय पर्व और उत्सवो पर व्रत-उपवास रखे।

'१५ अगस्त, १९४७ का स्वतत्रता-दिवस हमने कितने उत्साह और आनन्द से मनाया था! जब हमारी तहसील मे राष्ट्रीय सरकार के प्रथम मुख्य मन्त्री के रूप मे श्री पूरणचन्द्रजी जोशी हमारे यहा पधारे थे तो किस उत्साह के साथ हमने कुकुम-तिलक लगाकर उनकी पूजा-अर्चना की थी! वह पूजा उनके व्यक्तित्व की नही पर उस स्वातत्र्य भावना की थी जिसके कि वे प्रतिनिधि थे।

'और इस स्वतत्रता का पहला प्रसाद हमे अभी उस दिन मिला जब खारी बावली के डाक बगले मे मेरे पूज्य पिताजी का इसी जोशी-मन्त्रिमण्डल के एक मन्त्री ने बिना किसी कारण के घोर अपमान कर डाला। वह मन्त्री मेरे पिताजी के महकमे का ही था।

'उसके गुस्से का कारण शायद यही रहा हो कि पिताजी के कारण उसकी रगरेलियो मे विघ्न पडा हो। वह शराब पिए हुए पडा था, आसपास सुन्दर औरते थी, जिनमे एक अग्रेज थी, और वहा रण्डी के गाने की महफिल जमी हुई थी। पिताजी को ऑर्डर आया था कि मन्त्री महोदय डाक बगले का मुलाहिजा करने के लिए आ रहे है, हालाकि रात को डाक बगले का मुलाहिजा करने की बात ही उनकी समझ मे नही आई। दिन को भी डाक बगले का कोई मुलाहिजा नही होता, फिर रात की तो बात ही न्यारी है।

'फिर भी चूकि ऑर्डर था, पिता जी अपनी ड्यूटी बजाने के लिए गए तो वहा यह तमाशा देखा। वे वापस आ जाते तो हुक्म उदूली हो जाती। इसलिए वे बेचारे दो घण्टे तक अलग एक दरख्त के नीचे अधेरे मे खडे रहे। उधर रण्डी का गाना चल रहा था।

बाद मे किसी तरह मौका देखकर उन्होने भीतर खबर भिजवाई। मिनिस्टर साहब ने मिलने के लिए तो तुरन्त बुला लिया पर तीन मिनट के भीतर गालिया देकर अपमानित करके वापस भेज दिया। उस रात्रि को पिताजी इतने उदास और इतने दुखी होकर लौटे कि कुछ बयान नही कर सकती। उन्होने माताजी से कहा कि इस अपमान की जिन्दगी से तो कुए मे कूद पडना अच्छा है। खुद के अप-

मान का दुख तो उन्हे था ही पर हमारे राष्ट्रीय सरकार के मन्त्रियो का यह चरित्र देखकर तो हम सबको बडा धक्का लगा। मुझे पूरा विश्वास है कि आपको भी ऐसा ही महसूस होगा।

'पिताजी अपमान से रातभर तडपते रहे, और अपनी व्यथा भुलाने के लिए गीता और महाभारत पढते रहे। उनकी व्यथा मुझसे देखी न गई इसलिए मैं आपको पत्र लिख रही हू।

'तीसरे ही दिन पिताजी को शहर से बुलावा आया और उनके घाव पर मर-हम-पट्टी करके उन्हे तरक्की देकर दूसरी जगह उनका तबादला कर दिया गया। पिताजी रिटायर होने की अर्जी लेकर गए थे, पर हम पुत्रियो के भविष्य की चिन्ता मे उसे पेश नही की। उनकी नौकरी की मियाद एक साल के लिए बढा दी गई।

'पर मुझे सबसे बडा दुख तो इस बात का होता है कि हमारे राष्ट्रीय सरकार के मन्त्रियो का इतनी जल्दी इतना पतन कैसे हो गया? क्या इसी प्रकार की स्वतन्त्रता के लिए लाला लाजपतराय ने लाठिया खाई, और भगतसिह फासी पर चढे? गाधीजी की एक पुकार पर सब कुछ न्यौछावर करने वाले लोगो का यह हाल कैसे हो गया? और आज यह हालत है तो हमारे देश का भविष्य क्या होगा?

'क्यो आपकी लौह लेखनी इस पाप का प्रक्षालन करने के लिए, इस दुश्चरि-त्रता का अन्त करने के लिए नही उठती। कहा है वह पुरानी चिनगारी जिसने विदेशी सरकार की इज्जत मे आग लगा दी थी। या वह अपने लोगो के मोह मे आकर ठण्डी हो गई हे? कही ऐसा तो नही है कि भीष्म पितामह की तरह धृत-राष्ट्र का अन्न खाकर आपकी वाणी भी क्षीण हो गई है।

'मुझे माफ कर दीजिए, मेरे आदर्शो के देवता! मै आपकी छोटी बहन हू, वृद्ध पिता के अपमान के अश्रुओ ने मेरे दिल के जख्म पर नमक छिडकने का काम किया है। आपको साथ मे राखी भेज रही हू और दस्तूर मे यही भिक्षा मागती हू कि जिस शासन-व्यवस्था मे मन्त्रियो का आचरण इतनी तेजी से पतित हो रहा हे उसकी आत्मा को बचाने का प्रयत्न करे। और वह यदि नही हो सकता तो उसको खत्म करने मे अपनी शक्ति लगाए। भारत के नारीत्व की आपसे यही भिक्षा है। उस नारीत्व की नही, जो स्वार्थ और भौतिक भोग-विलास के प्रलोभन मे अपना चरित्र सत्ताधारियो के चरणो पर समर्पण कर भारतीयता को कलक

लगाती है, पर उस उज्वल भारतीय नारीत्व की, जिसने सीता-सावित्री का निर्माण किया, रानी दुर्गावती और रानी लक्ष्मीबाई को जन्म दिया, जिसने भारतीय सस्कृति, सभ्यता और जीवन-प्रणाली की ध्वजा को हमेशा ऊचा रखा। मेरी नम्र राय मे हमारी स्वतत्रता का कोई अर्थ नही जिसमे इन उच्च मूल्यो की सुरक्षा न होती हो।

'मैने आपको यह पत्र लिखने की धृष्टता की, उसके लिए क्षमा कर दो, मेरे भैया। मै स्वय दुखिया हू। पिता के ऋण से दूर होना तो दूर रहा उनके लिए भारस्वरूप ही बनकर रह रही हू। कई बार आत्महत्या करने का विचार भी आता है। पर उस रात्रि की उनकी छटपटाहट मै भूल नही सकती। वे मन्त्री महोदय की नजरो मे 'ब्लडी फूल' एस०डी०ओ० हो, मेरी नजरो मे देवता है। उनके अपमान का परिमार्जन हुए बिना मुझे भी शान्ति नही मिल सकती क्योकि

'सभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।'

गीता के इस वचन के अनुसार एक माननीय पुरुष की मरणप्राय अपकीर्ति के दुख से त्रस्त आपकी बहिन आपको छोडकर और किससे भिक्षा मागे ?

'इस पत्र को सर्वथा निजी रखे, और मुझसे कोई गलती हो गई हो तो मुझे क्षमा कर दे यह मेरी आपके चरण छूकर प्रार्थना है। मै बडी पीडा मे हू और शायद मेरा विवेक काम नही कर रहा है। पुन आपसे क्षमा मागती हू।

आपकी अभागिनी बहिन,
सत्यवती शर्मा 'प्रभाकर' '

२०

'युगान्तर' मे एक बडी टिप्पणी भारतेन्दु साहित्य-समिति के उद्घाटन के बारे मे प्रकाशित हुई। एक प्रोफेसर धनजय के मित्र थे, उन्होने वहा का कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। स्वाभाविकत मनमोहन बाबू उसके मुख्य लक्ष्य थे। जो मन्त्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और सत्यवादी हरिश्चन्द्र के बीच मे भेद नही कर सकता उसे साहित्यिक कार्यक्रमो मे जाना ही क्यो चाहिए ? क्या मन्त्री अपने को

सर्वज्ञ समझता है ? और यदि जाना ही है तो पहले अपने विषय का अभ्यास करके क्यो नही जाते ? आजकल मन्त्रियो को यह रोग ही हो गया है कि साहित्य-सभा हो या हेअर कटिंग सैलून, उसका उद्घाटन करने अवश्य पहुच जाएगे। सिनेमा-थिएटर का उद्घाटन हो या चाय-चिवडे का होटल हो, मन्त्री महोदय फूल-माला पहनने के लिए, फोटो खिचवाने के लिए तथा भाषण देने के लिए वहा मौजूद है। और प्रत्येक भाषण का सम्बन्ध राष्ट्रीय कार्यो से जरूर जोडेगे।

हजामत बनवाना और बाल कटाना आज देश की बडी आवश्यकता है, स्वच्छ और आधुनिक ढग से दाढी बनाने मे रोगो का फैलाव नही होता, स्वास्थ्य अच्छा रहता है, चेहरा सुन्दर दिखने लगता है और आदमी को उत्साह और स्फूर्ति मिलने लगती है जिसके कारण वह राष्ट्रीय पचवार्षिक योजनाओ मे अधिक सफलतापूर्वक योग दे सकता हे। वही बात सिनेमा देखने की है जिससे नागरिक का मनोरजन होता है, वह अपनी थकावट भूल जाता है और फिर दूने उत्साह से पचवार्षिक योजना मे कार्य कर सकता है। होटल भी जनता के कल्याण की सस्था है। भूखे को अन्न और प्यासे को पानी देना हमारे धर्म मे लिखा है। इससे जनता की अन्तरात्मा तृप्त होती है और इस तृप्त आत्मा से जो विचार और शक्ति स्फुरित होती है वह राष्ट्र के नव निर्माण मे बहुत बडा काम कर सकती है। इस तरह नाना प्रकार के कार्य-कलापो मे मन्त्रियो की वक्तृत्व-शक्ति का प्रदर्शन होता है और इस देश मे एक नये रोग, 'बकवास' रोग के प्रादुर्भाव का खतरा पैदा हो रहा है। हम मन्त्रियो से प्रार्थना करते है कि कहा क्या बोलना है इसका निर्णय करने के पहले या नया निमन्त्रण स्वीकार करने से पूर्व सस्कृत के इस सुभाषित पर अवश्य मनन कर ले, 'तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किञ्चिन्न भाषते'।

मनमोहन बाबू तो इस टिप्पणी से तिलमिला उठे। इसमे उनकी जो खिल्ली उडाई गई थी वह उन्हे कटार की तरह चुभी। क्रोध मे कोई टिप्पणी लिख देता तो वह उन्हे उतनी नही खलती। और जब वह 'युगान्तर' मे छपी तो और भी बुरा हुआ। वह तो मन्त्रिमण्डल का समर्थक पत्र माना जाता है। विरोधी नीति का पत्र कुछ भी लिखे उससे बात इतनी नही बिगडती जितनी अपने पक्ष के पत्र के लिखने से बिगडती है। मुख्य मन्त्री से शिकायत भी नही कर सकते थे क्योकि वह कोई राजनीतिक मामले की बात तो थी नही, महज साहित्य के क्षेत्र की थी। एक क्षण के लिए तो उन्हे महसूस हुआ कि साहित्यकारो को उल्लू बनाना इतना आसान

नही है। साथ ही साथ शिक्षा मन्त्री पर भी गुस्सा आया कि वे अपनी बला नाहक मेरे गले मे लटकाकर चलते बने। मनमोहन बाबू के 'अह' को बडा धक्का लगा। आखिर उन्हे अब तक खुशामद और आवभगत की आदत पड गई थी। वे ऐसे ही क्षेत्रो मे घूमते-विचरते थे जहा उनके अधिकार के कारण लोग उन्हे अपने से ऊचा मानते थे। इस वातावरण मे उनकी एक-एक बात लोग हथेलियो पर किस तरह झेलते थे, उनके ऊपर सद्गुणो का कैसे आरोप करते थे, उनमे नित-नई योग्यताओ की कैसी सुन्दर खोजे किया करते थे—वाह! बडे मजे थे! बडी-बडी फूलो की मालाए कितनी प्यारी लगती है? पर अब दिखता है उनमे काटे भी उगने लगे है। यह बुरी बात है। मन ही मन बडे बेचैन हुए। सलाह के लिए किसे बुलाए? अपने सहयोगी मन्त्रियो से तो बात करने से रहे क्योकि वे भी भीतर ही भीतर हसते ही होगे, क्योकि मूर्खता तो हो ही गई थी। पर सबसे चिता की बात तो यह थी कि यह मूर्खता अब अखबार वालो के पास पहुचने लगी थी। और जब वह शासकीय दल का मित्र माने जाने वाले अखबार के पास पहुचकर प्रकाश मे आने लगे तो लक्षण अच्छे नही है। इसका कुछ न कुछ इलाज तो करना ही चाहिए। और खट से टेलीफोन उठाया और सेक्रेटरी रघुनाथ सहाय को बुला भेजा।

रघुनाथ सहाय मन्त्री महोदय की आवाज से ही समझ गए कि बात कुछ अड-चन की मालूम पडती है। उन्होने भी 'युगान्तर' का वह अक सुबह ही पढ लिया था और तभी उनके मन मे खटका हुआ था। और अब मिनिस्टर साहब का फोन पाकर उन्हे इतमीनान हो गया कि वही बात बेचैनी का कारण बन गई है। उन्होने फौरन हातिमभाई को फोन किया और पूछा कि क्या आपने वह नोट पढा। हातिम-भाई 'युगान्तर' तो लेते थे, पर उर्दू के जानकार होने से उसे पढते नही थे। हा, किसीसे हेडिंग-वेडिग पढवाकर काम चला लेते थे। सहाय साहब का टेलीफोन आते ही उन्होने खाता बही लिखने वाले मेहता जी को बुलाकर वह नोट पढवाया और बोल उठे, 'तोबा-तोबा! सिर्फ हरिशचन्दर नाम पर ही इतना गजब ढा दिया! आजकल बम्मन और महरो के नाम एक रहने लगे है, उनमे फर्क करना गैरमुम-किन हो जाता है। बगाली और मरेठो के नाम भी इकसा रहते हैं। सिर्फ नाम से तो अब कुछ भी इल्म नही होता। बस उसीपर इतनी कयामत बरसा दी! सुभान अल्लाह! आखिर दोनो हरिशचन्दर तो भारत के यानी हिन्दोस्तान के ही है। कही इग्लैड या अमरीका से थोडे ही आए है। और हुजूर मिनिस्टर साहब ने किसी-

की बुराई ता की नही। हमारे हुसैनभाई का लडका भी कालिज मे पढता है, वह खुद भी हाजिर था। वह तो कहता था कि तकरीर बडी आला दरजे की हुई। पता नही इन अखबार वालो का दिमाग कैसे उलटा चलता है! खैर कोई बात नही। मेरे पास इसकी भी दवा है। 'जागरण' अखबार का मैने कैसा मुह बन्द किया था? फिर इस 'जगन्तर' की क्या बात है?'

रघुनाथ सहाय को हातिमभाई का आत्मविश्वास देखकर कुछ तसल्ली तो हुई पर वे पूरी तरह बेफिक्र न हो सके। उन्हे इस बात की खास परवाह नही थी कि एक साहित्यिक भाषण को लेकर मिनिस्टर साहब पर टीका-टिप्पणी हो गई। उन्हे तो चिन्ता इस बात की थी कि यदि अखबार वालो का ध्यान मिनिस्टर साहब पर गया तब तो खैर नही है। जब तक किसीका ख्याल नही जाता, तभी तक गनीमत है। अन्धेरे मे चाहे जो हो जाए किसीको पता नही चलेगा। पर एक बार किसी-का टॉर्च पड गया तो मुसीबत है। उन्हे फिक्र इस बात की हुई कि खारी बावली के डाक बगले का किस्सा तो कही 'युगान्तर' वालो के पास नही पहुच गया? यही शक उन्होने हातिमभाई पर जाहिर किया।

हातिमभाई फौरन मोटर लेकर 'युगान्तर' के दफ्तर मे गए और धनजय से बोले, 'मैने सुना है 'जगन्तर' परचे का अच्छा परचार है तो मै दिवाली के लिए एक पेज इश्तहार देना चाहता हू अपनी फर्म का। क्या चारज होगा?'

'पाच सौ रुपया।'

'ठीक है, मै अभी चेक दे देता हू। इश्तहार का ढाचा आप बना लीजिए। दशहरे की नुमाइश के वक्त हमने ये हैण्डबिल निकाला था, बस उसीपर से आप मज़मून बनाकर छाप दीजिए।'

धनजय को इतना तत्पर ग्राहक देखकर कुछ खटका तो हुआ, पर बातचीत महज बिजिनेस की थी, उसने विज्ञापन-विभाग के असिस्टैन्ट को बुलाकर हातिम-भाई का काम करा दिया और रसीद दिला दी।

लेकिन हातिमभाई का काम तो पूरा नही हुआ था इसलिए वे उठे नही। ऊपर बन्द पखे की तरफ देखकर बोले, 'बडी गरमी पड रही है। एक गिलास पानी मिल सकता हे?'

'जरूर।' और फिर शिष्टाचारवश धनजय ने पूछा

'चाय पिएगे?'

'जी हा, जी हा । बडी नवाजिश है, बडी नवाजिश है ।' हातिमभाई ने बार-बार सलाम करते हुए कहा । 'जरा ठड की खुश्की है, चाय ही अच्छी रहेगी ।'

हातिमभाई को सचमुच खुशी हुई कि चाय का आर्डर दिया गया क्योकि उनकी बात रुक-रुक जाती थी । उन्हे महसूस हो रहा था कि 'जागरण' के एडिटर मे और इस आदमी मे बहुत बडा फर्क दिखाई देता है। उनसे तो खुलकर बातचीत होती थी, पर इनसे तो बडी अदब के साथ पेश होना पडता हे । उन्होने तो सोचा था कि सब एडिटर एक-से होते है । डॉ० छदामीलाल ने एक पेज के इश्तहार के लिए तो मुझे गले से लगा लिया था, मेरा अजीज बन गया था और यह ऐसे बैठे है जैसे बरफ के पुतले हो ।

घण्टी बजी और चपरासी चाय लेने के लिए चला गया तब हातिमभाई ने धीरे से बात निकाली

'आज आपका हरिशचन्दर वाला एडिटोरियल गजब का था। बडे अन्दाज की बात आपने कही है—क्या कहने है ?' और वे अपनी घबडाहट छिपाने के लिए कृत्रिमता से जोर से हस पडे । 'लेकिन मेरी अदना राय मे जरा हमारे मिनिस्टर साहब के साथ थोडी सख्ती हो गई। बेचारे बडे गमशुदा होकर बैठे है । अपना ही अखबार, और अपने से ही नाराज, बस इसीका बेचारो को रज है । भले आदमी है—जी हा ।'

'आप हिन्दी जानते है ?' धनजय ने जरा गभीर आवाज मे पूछा ।

'जी नही, जी नही, अपन हिन्दी क्या जानेगे ? बस थोडी उर्दू पढ लेते है और थोडी अग्रेजी समझ लेते है, काम चलाने लायक । बाकी हिन्दी राषटरभाषा है इसलिए हम उसकी बहुत इज्जत करते है—जी हा हातिमभाई ने सम्हलकर कहा ।

'तब फिर आपको क्या पता कि मिनिस्टर साहब ने क्या कहा और 'युगान्तर' ने क्या लिखा ?'

'जी हा, वह 'जगन्तर' ने लिखा—आपने नही लिखा । पर हमारे हुसैनभाई का लडका तो कहता था कि स्पीच खराब नही थी ।' हातिमभाई ने फरमाया ।

'हम लोग यह तो नही बताते कि हमारे अखबार मे कौन क्या लिखता है लेकिन इतना ही कह सकता हू कि जो लिखा गया वह जो लिखा जा सकता था उससे बहुत कम है । बात मजाक की नही है, बहुत गहरी है ।'

इतना सुनकर हातिमभाई पसीना-पसीना हो गए। चोर की दाढी मे तिनका होता है। उस हिसाब से हातिमभाई को भरोसा हो गया कि इस एडिटर के पास खारी बावली के डाक बगले का किस्सा भी मौजूद है और यह एडिटर 'जागरण' वाले डॉक्टर छदामीलाल से बिलकुल अलग है। फिर भी चेहरे पर कृत्रिम हसी लाकर बोले, 'आप दुरूस्त फरमाते है, बहुत सही फरमाते है। अपन तो हिन्दी जानते नही, पर राषटरभाषा के नाते उसकी इज्जत जरूर करते है। पर मैने तो पहले ही अर्ज किया था कि आपका एडिटोरियल गजब का था।'

चाय आई और हातिमभाई ने चुपचाप पी ली। चेहरे से ऐसा लगता था जैसे जहर पी रहे हो। यह नाकामयाबी का किस्सा लेकर सहाय साहब के पास किस मुह से जाए और मिनिस्टर साहब को क्या सूरत दिखाए ? एक पेज के इश्तहार का भी कोई नतीजा नही निकला। खैर कोई बात नही। देखा जाएगा।

उठते हुए कहा, 'इश्तहार जरूर छाप दीजिए। मै हर दिवाली पर इश्तहार दूगा।'

'जी हा, वह तो जरूर छपेगा। मैने आपके सामने ही हिदायते दे दी है।' धनजय ने कहा।

धनजय की मृदुता देखकर उनकी हिम्मत फिर लौट आई और दुबारा बैठते हुए बोले, 'हा, एक बात तो भूल ही गया। मैने सुना है कि आपकी कपनी के कुछ शेयर्स बिक्री के लिए है—मै लेना चाहता हू।'

'ठीक है, इसके लिए आप दुबारा तशरीफ लाइएगा।'

इतनी फटकार खाकर हातिमभाई फिर अपनी कुर्सी से उचक पडे और आदाबर्ज, कहते-कहते रुखसत हो गए। मोटर मे बैठते ही बोले, 'बडा खतरनाक आदमी मालूम पडता है।'

२१

धनजय को अचानक जगपुरा के राजा साहब की चिट्ठी मिली कि उन्होने युगान्तर कम्पनी को पचास हज़ार रुपये का जो कर्ज दिया था वह वापस

कर दिया जाए क्योकि राजा साहब की लडकी की शादी तय हो चुकी है, उन्हे रकम की ज़रूरत है।

असल मे यह रकम जोशी जी के कहने पर आई थी। धनजय का तो राजा साहब से व्यक्तिगत परिचय ही नही था। पर जिन लोगो ने जोशी जी के प्रभाव से कम्पनी मे पूजी लगाई थी उनमे राजा साहब भी एक थे। वे लोग कम्पनी मे पूजी तो लगा देते पर उसके बदले मे जोशी जी से चौगुने काम करा लेते। सारी सत्ता उनके हाथ मे थी। उनके एक इशारे पर लाखो के वारे-न्यारे हो जाते थे। यह रकम उस समय आई थी जब एक मशीन की बिल्टी आ पडी थी। राजा साहब ने एक लाख के शेयर्स भी लिए थे। बोले, अब इस बार कर्ज दूगा। जोशी जी ने धनजय से कहा, 'ले लो कर्ज ही सही। फिलहाल तुम्हारा काम तो चल ही जाएगा। मौका देखकर इसे भी शेयर्स मे बदलवा लेगे। रुपया नही लौटाना पडेगा।'

जोशी जी सोचते, इस तरह पूजी इकट्ठा कराने मे एक अखबार अपने हाथ रहेगा, अपनी तो एक पाई भी नही लगी है। उल्टे, अपना अखबार कम्पनी को बेचा तो उसके एक लाख अलग रखा लिए। गिरधारी ने सोचा भी न होगा कि उसके चलाए हुए फटियल अखबार की मैं इतनी कीमत वसूल कर लूगा।

ऊपर से नई कम्पनी के फायदे मे अठन्नी का हिस्सा है। वैसे अखबार की कम्पनी मे क्या फायदा होता है भला? पर असली बात है अखबार को अपने नियन्त्रण मे रखने की जो कि राजनीतिक जीवन मे निहायत जरूरी है।

राजा-महाराजा लोग और दीगर पूजी वाले सोचते, रुपये तो हमने जैसे गगाजी मे डाल दिए। अखबार भी कभी फायदा देता है? पर उसके बदले हमारी रकमे सरकार मे अटकी पडी थी वे खुल गई, और पहले जो मिलती, उससे दुगुनी-तिगुनी मिली। अपना भी क्या बिगडा? और हम यदि राजनीति मे उतरे तो एक अखबार हमारा दोस्त तो रहेगा।

धनजय ने सोचा, इस अखबार के माध्यम से मुझे अपने आदर्शों के मुताबिक पत्रकारिता करने के लिए व्यापक क्षेत्र मिल जाएगा। अठन्नी के हिस्से का मोह उसे भी नही था। वह तो केवल अपनी मान-रक्षा का एक जरिया मात्र था कि जोशी जी के साथ ऊच-नीच का नही, बराबरी का हिस्सा है। अपनी तनख्वाह उसने पाच सौ बाध ली थी हालाकि जोशी जी की उम्मीद थी कि साढे सात सौ बाधेगा। पर आगे चलकर जब मालूम हुआ कि अखबार मे घाटा आ रहा है तो

उसने स्वेच्छा से सौ रुपये की कटौती कर ली। जोशी जी कुछ नही बोले।

धनजय जानता था कि रुपया किस तरीके से आ रहा है। पर सार्वजनिक सस्थाओ के चन्दे, महासभाओ के वार्षिक अधिवेशनो के फण्ड इसी तरह इकट्ठा होते आ रहे है। जहा तक उसके व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रश्न है, उसका दिल साफ था कि मारकेट मे उसे जो मिलेगा उससे वह कम ही ले रहा है, अधिक नही। जो आदमी असेम्बली या मिनिस्ट्री के लिए उपयुक्त समझा गया, उसके लिए राजनीतिक पदो के दरवाजे बन्द नही थे। मन्त्रिपद या पार्लमेण्टरी जीवन के दरवाजे तो उसके सामने खुले ही पडे थे, पर उसने नाही कर दी। वह चाहता और प्रयत्न करता तो कही विदेश के किसी दूतावास मे चला जाता, या सयुक्त राज्य सघ के किसी पद पर चला जाता जहा भारतीयो की नियुक्तिया होती है। जोशी जी तो उसके लिए सब कुछ करने के लिए तैयार थे। अपने त्याग और तपस्या के कारण गाधीजी के साथ काम करने वाले राष्ट्रीय नेताओ मे भी उसका मान था। उनमे से तो कुछ उसके जेल के साथी थे। पर उसने यह सब नही किया क्योकि यह उसका स्वधर्म नही था। उसने तो पत्रकारिता को मय उसके सघर्षो और खतरो के स्वीकार किया क्योकि वही उसका स्वधर्म था। अखबार मे पूजी लगी वह जोशी जी के प्रभाव के कारण लगी, इसमे शक नही। हो सकता है कि जिस मार्ग से वह आई वह शुद्ध न हो। पर अपनी विवेक-बुद्धि के सामने उसने मर्यादा की यही लक्ष्मण-रेखा खीच ली थी कि इस सब पूजी का वह ट्रस्टी है, अपने वेतन के सिवा इसकी एक भी पाई पर उसका हक नही है। इसलिए इस पूजी को सुरक्षित रखना, उसका अपव्यय न होने देना, उसका धर्म है। वेतन पर बेशक उसका हक है क्योकि वह उसका पारिश्रमिक है जिसका हकदार बनने के लिए वह अपने खून का पसीना करता है, और ईमानदारी से मेहनत करता है। वह चाहता तो अलग से काफी पैसा बना लेता जैसा कि आम तौर पर कम्पनियो के सस्थापक कानूनी ढग से किया करते है, जैसे मशीनो की खरीद-फरोख्त मे कमीशन, शेयर बिक्री पर दलाली आदि-आदि। पर धनजय ने यह कुछ नही किया क्योकि वह उसकी वृत्ति ही नही थी। वह तो प्रामाणिकता से अपने स्वतन्त्र विचारो के मुताबिक पत्रकारिता करना चाहता था, और चूकि जोशी जी की प्रारम्भिक चर्चाओ मे उसे यह करने की पूरी-पूरी गुजाइश थी, उसने उनके साथ काम करना स्वीकार कर लिया था।

जोशी जी की भावना थी कि चूकि पूजी मेरे कहने से आई है, पत्र की नीति

का निर्धारण मै करूगा, हालाकि शुरू मे खुले शब्दो मे उन्होने ऐसा नही कहा था। उस समय बात के टूट जाने का खतरा था। भागीदारो के हित-सम्बन्धो के बारे मे विचार करने का कारण नही है क्योकि यह सस्था राजनीतिक सस्था है और इसका दृष्टिकोण राजनीतिक है।

इस पोजीशन से राजा-महाराजाओ और दीगर भागीदारो को भी कोई एत-राज नही था, क्योकि उनका काम तो बन ही गया था, और वह रुपया यदि दान मे भी मागा जाता तो वे उसे सहर्ष दे देते। उनकी तो यही धारणा थी कि कपनी के शेयर्स यानी दान लेने का एक सभ्य और कानूनी तरीका है जो जोशी जी ने अप-नाया है। जो शेयर सर्टिफिकेट का कागज आया है वह महज कागज का रुक्का है जो वे कभी किसी जमाने मे अपने बेटे-पोतो को बताएगे कि जोशी जी के कहने से हमने क्या नही किया ? बाकी इसपर हमे कभी फूटी कौडी भी मिलेगी इसकी न उन्हे आशा थी और न इच्छा। रकम जोशी जी को खुश करने के लिए दी गई थी। वे खुश हो गए, बस, हमे छुट्टी मिली। अब बाकी क्या करना है इस अखबार का, वह वे जाने और अखबार वाले जाने।

लेकिन धनजय अपने सिर पर इन सब जिम्मेदारियो का बोझ लेकर चलता था। पूजी आई है तो प्राणो की बाजी लगाकर भी उसे सुरक्षित रखनी चाहिए, और उसपर फायदा (डिविडेण्ड) देना चाहिए। इसलिए दिन-रात मेहनत करता, अपना खून सुखाता, चिन्ताओ की गठरी सिर पर रख कर सोता।

जोशी जी की हर्र लगी न फिटकरी, उनका रग चोखा ही था।

यहा धनजय बेचारा कोल्हू के बैल की तरह पिसा जा रहा था, पिसा जा रहा था। जिस कुए मे पानी ही न हो तो वह मोट मे कहा से आए ? रेत मे से भी कभी तेल निकलता है ? आदर्शो की दृष्टि से बात कुछ भी हो, व्यवहार मे बात यही थी कि 'युगान्तर' धीरे-धीरे, अनजाने अपनी स्वतत्रता, निष्पक्षता और तेजस्विता खो बैठा था, और भ्रष्टाचार और चरित्रहीनता के चगुल मे फसने वाले मन्त्रि-मण्डल का समर्थक बन गया था। उसका सपादक धनजय था, पर उसकी आत्मा की जन्म-राशि पर जोशी जी जाकर बैठे थे। नाम उसका 'युगान्तर' था, पर लोग उसे जोशी गजट के नाम से पुकारते थे।

कारोबार तो जोशी जी ने भी आदर्शो को लेकर ही प्रारभ किया था, पर धीरे-धीरे बढती हुई उम्र की आरामतलबी, सुखासीन जीवन का प्रलोभन, अनि-

बंन्ध सत्ता का मद, और धृतराष्ट्र की तरह अपने परिजनो का अन्धा मोह, इन कारणो से उनके आदर्श एक के बाद एक खिसकने लगे, और उनका पुण्य क्षीण होने लगा। अपने नेतृत्व की चौखट उन्होने ऐसी मजबूत बनाई थी कि उनकी सत्ता को किसी भी तरफ से कोई खतरा नही था, चुनौती नही थी। काशी के पण्डितो ने उनका दिमाग सातवे आसमान पर चढा दिया था। ऐसी परिस्थिति मे धर्मराज का नाम तो उन्हे प्यारा हो गया, पर धर्मराज का विवेक उन्हे छोड गया। नतीजा यह हुआ कि प्रान्त और देश के निर्माण और प्रगति की बात तो दरकिनार रह गई, स्वनिर्माण और स्वप्रगति की बात ही सामने आ गई। धनजय को यही दिखाई दिया कि आज के जोशी जी पुराने जोशी जी नही रहे। उनके आदर्शो की मिट्टी से उसने विनायक की मूर्ति का निर्माण करने की कोशिश की, पर उसमे मूर्ति बनी वानर की। वह वानर भी कितना विद्रूप और बदसूरत कि उसको अपना पूर्वज कहते हुए भी शरम लगे।

गीता ने व्यथित होकर कहा, 'धनजय राजा! यह तुम कहा से कहा आन फसे? यह सब मोह छोडो और सबसे पहले अपनी आत्मा की मुक्ति करो। वरना तुम देखते-देखते समाप्त हो जाओगे। तुम्हारा यह परिश्रम, यह तपस्या, यह त्याग और यह साधना आखिर किसके लिए है? क्या इसका प्रयोजन है?'

धनजय ने कोई उत्तर नही दिया। वह गभीर हो गया। पर पृथ्वी के गर्भ मे जिस प्रकार ज्वालामुखी धधकता है उसी प्रकार उसके अन्तर मे भी धधकता था। इसके धक्के गीता को छोडकर और किसीको अनुभव नही हो सकते थे।

धनजय के भीतर ही भीतर हृदय-मथन तो चल ही रहा था, पर सत्यवती शर्मा के पत्र ने उसके निर्णय को बनाने मे मदद की। हातिमभाई की मुलाकात ने उसके शक को पक्का किया कि पी० डब्ल्यू० डी० मिनिस्टर मनमोहन का चरित्र सदेहास्पद है और ऐसे व्यक्तियो का मन्त्रिमण्डल मे स्थान नही होना चाहिए। खैर यह प्रश्न मुख्य मन्त्री का है कि वह किसे अपनी कैबिनट मे ले या न ले, पर एक पत्रकार के नाते उसके पास यदि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ प्रामाणिक शिकायत आती है तो वह उसे अब रोकेगा नही, प्रकाशित कर देगा। पहले वह इन बातो को रोकता था। आई हुई शिकायतो को छाटकर, जो गभीर स्वरूप की थी उनकी प्रतिलिपि करा कर तथा नाम गुप्त रखकर वह मुख्य मन्त्री के पास भेज दिया करता था, और बाद मे उनके कहने पर सम्बन्धित मन्त्रियो और अधिकारियो के पास।

उनके पास से प्राप्ति-सूचना तुरन्त आ जाती और यह भी लिखकर आता कि वे जाच कर रहे है और उसके निर्णय से आपको यथाशीघ्र सूचित किया जाएगा। इधर धनजय उन शिकायत वालो को भी पत्र लिख देता कि वह उचित कार्रवाई कर रहा है। उसकी धारणा थी कि एक जिम्मेदार पत्रकार के नाते उसका यह कार्य नही है कि वह राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल को बदनाम होने दे। असली बात शिकायतो को दूर करने की है, और ऐसी परिस्थिति पैदा करने की है जिसमे इस प्रकार की शिकायतो का, यदि वे सच है तो, मौका ही न आए। कुछ शिकायते स्वार्थवश या द्वेषवश की जाती थी। सरकारी अधिकारी से अपना कोई निजी काम न बना तो उससे नाराज होकर अखबार मे पत्र लिखकर भेज दिया। इसकी असलियत को ढूढ निकालना कठिन नही था। सरकारी विभागो से उनका उत्तर भी जल्दी-जल्दी आ जाता। पर जो शिकायते वास्तव मे जनता के दुख-दर्द और अन्याय की प्रतीक थी, उनकी जाच-पडताल होने मे महीनो लग जाते, और एक-दो स्मृतिपत्र देने के बाद भी जवाब नही आता। मामला वही रफा-दफा हो जाता, दुष्कर्म करने वाले लोगो का बचाव भी कर दिया जाता, सबूत उलट-पुलट कर दिया जाता। दुष्कर्म अक्सर वे करते जिनकी मुख्य मन्त्री के पास सीधी पहुच थी, और जो उनकी पार्टी के थे, और उनके भले-बुरे कामो मे मदद किया करते थे। धीरे-धीरे नौकरशाही मे भी ऐसा एक वर्ग बन गया जिसपर जोशी जी की मेहरनजर थी, और एक ऐसा था जो कि काम से काम रखता था पर जिसका कोई धनी-धोरी नही था। सभी मुख्य-मुख्य पदो पर उनके विशेष कृपापात्र व्यक्ति जमकर बैठ गए, मानो वे उनके व्यक्तिगत साम्राज्य के मोर्चों को सम्हाल रहे हो। वे फिर किसी भी महकमे के हो, और उनका कोई भी मिनिस्टर हो, उनका सीधा सम्पर्क मुख्यमन्त्री से था। बाद मे चलकर ऐसा हो गया कि मन्त्रिगणो से ज्यादा महत्व का उनका सेक्रेटरी हो गया। उदाहरणार्थ, शिक्षा विभाग के मन्त्री की कुछ नही चलती थी, पर उसका सचिव जो जोशी जी का आदमी था, विभाग का सर्वेसर्वा था। महत्वपूर्ण मामलो की फाइलो की चर्चा वह मुख्यमन्त्री से पहले कर लेता था, और बाद मे उनका नाम बताकर अपने मन्त्री से अगूठा लगा लेता था। यथार्थ मे वह कराता तो दस्तखत ही पर जिस तरह अगूठा लगाने वाले को पता नही रहता कि वह किस कागज पर छाप लगा रहा है उसी तरह उस मन्त्री को भी मालूम न रहता कि वह किस फाइल पर दस्तखत कर रहा है। वह परवाह भी

नही करता। सोचता कि हमे क्या करना है, जोशी जी बैठे ही है सब कुछ देखने-सम्हालने वाले। उनकी मरजी के बिना तो इस मन्त्रिमण्डल मे एक मिनट के लिए भी टिक नही सकते। हमे इन मामलो से क्या करना है ? हम तो यहा इस पद के लिए ही आए है। किसी कदर वह बना रहे यही हमे चाहिए। काम-धाम तो जो होना है वह होता ही है। जिन मामलो मे मुख्य मन्त्री की दिलचस्पी नही रहती है, उनमे तो आखिर हमारी ही चलती है। सो अपने अधिकार की चादर थोडी सी समेट ली तो इसमे क्या बिगडा ? जो हमारे पल्ले पडी है उसपर तो हमारी सार्वभौम सत्ता है ही।

इस तरह सबने अपनी-अपनी मर्यादाए बना ली थी और अपने काम और व्यवहार की एक टेकनीक ईजाद कर ली थी, एक नया तन्त्र निर्माण कर लिया था, जिसका प्रजातन्त्र से कोई सम्बन्ध नही था, अपने 'अह' से सम्बन्ध था। 'लिव-ऐण्ड लेट लिव'—जियो और जीने दो। हम तुम्हारे काम मे दखल नही देते, तुम हमारे काम मे दखल मत दो। यह तुम्हारा क्षत्र है, यह हमारा। मानो हरेक के इलाके बट गए थे। डाकुओ और भिखमगो के इलाके भी इसी तरह बटे हुए होते है। तुम इतने गावो मे डाका डालोगे, हम इतने मे, या तुम इस मुहल्ले मे भीख मागोगे, हम उस मुहल्ले मे। इन मर्यादाओ का पालन वे बडी सतर्कता से करते थे। उसी प्रकार सतर्कता और विवेक राजनीतिक और शासकीय क्षेत्र के लोग भी बरतते थे।

मन्त्रिमण्डल मे एकाध तगडा मन्त्री भी था, जो सख्त तबीयत का था। उसकी राह मे कोई न जाता। वह अपना काम चोखा बजाता और कोई उसमे हस्तक्षेप नही करता। पर बाकी का क्षेत्र तो खाली था। उर्वरा वसुधरा इतनी व्यापक है कि एक मन्त्री थोडे ही उसपर समूचा कब्ज़ा कर लेगा ? एक छोटे-से हिस्से पर करेगा, पर बाकी का तो यार-दोस्तो के लिए खुला ही था।

तो क्या सभी काम इसी धाधलेबाज़ी के, खुदगरज़ी या लूट-खसोट के होते, जनता के कल्याण के कुछ नही होते ?

होते जरूर। आखिर देश स्वतत्र हो गया था, प्रजातन्त्र कायम हो चुका था, सभी काम जनता के कल्याण की भावना का उद्घोष करके ही किए जाते—जगह-जगह कॉलेज स्कूल खुले, अस्पताल खुले, उद्योग-धन्धो को मदद दी गई, नये-नये कल-कारखाने खुले, नहरे और सडके बनी, किसानो को [illegible]बिया दी गई, सह-

कारी सस्थाए बनी, मजदूरो को सहूलियते मिली । ये सब बाते हुई क्योकि पच-वार्षिक योजनाओ मे और बजट मे इनके लिए कराडो रुपयो का इन्तजाम था । पर यह सब कार्य विशुद्ध सेवा और कल्याण की भावना एव दृष्टि से नही हुआ । स्कूल-कॉलेज खुलते तो अपने आदमियो द्वारा चलाई गई सस्थाओ के ग्राण्टो के लिए हाथा-पाई होती, प्रोफेसर-प्रिंसिपल की नियुक्तियो मे हस्तक्षेप होता, परीक्षाओ के परचे और रिजल्ट खुल जाते, शिक्षा विभाग के उच्चाधिकारी या मन्त्री के लडके को जबर्दस्ती मार्क बढाकर पहला नम्बर दे दिया जाता, और जो प्रामाणिक विद्यार्थी मेहनत और अध्ययन के साथ तैयारी करते और जिनका सर्वप्रथम आने का हक था, उनका दिल तोड दिया जाता। शिक्षा के क्षेत्र मे जब न्याय और नीति की ऐसी हत्या होने लगती तो दूसरे विभागो का क्या पूछना है ? अस्पताल की बिल्डिंगे बनी उनके ठेको मे कमीशन लगे, सरकारी दवाइया काले बाज़ार मे पहुचने लगी, गरीब लोगो के कामो मे कमी आई। अस्पतालो की भर्ती सिफारिशो और प्रभाव के कारण होती, निर्धनो के रोगो की गभीरता के कारण नही होती । उद्योग-धन्धो मे सरकारी पूजी लगाई तो उसकी मैनेजिंग एजेन्सी मे अपने भाई-बन्दो की साझे-दारी रख दी जाती । नहरे और सडके उस इलाके मे और इस योजना से बनी कि जिनकी मन्त्रिमण्डल मे ठकुराई चलती है उन्हे सबसे ज्यादा फायदा मिले । तका-बियो का भी वही हाल । अपने समर्थको को सबसे बडी रकमे, फिर उनकी माली हालत कितनी भी अच्छी क्यो न हो । उनके खेतो मे पम्प, ट्रैक्टर, बिजली सब कुछ। और उनसे तकाबी वापस वसूल करने की तहसीलदार की हिम्मत नही । जिसने एक-दो तगादे किए और ज्यादा कर्तव्यपरायणता बरती कि उसका तबादला पक्का ही समझिए। बिना किसी दाग के उसने छुट्टी ली तो उसकी किस्मत । वरना मुख्य मन्त्री के कान भरने मे भी कमी नही की जाती कि वह पैसे खाता है । वह बेचारा जानता भी नही कि उसके खिलाफ क्या कहा गया है, उसकी क्या बाजू है, और वह इकतरफा की शिकायत से कन्डेम (रद्द) कर दिया जाता। सहकारी सस्थाए तो चरित्र के अभाव मे कानूनी तरीके से अपने और अपने पिछलग्गुओ के घर भरने की साधनमात्र होती। उनमे सबसे ज्यादा उनकी चलती जिनके हाथ मे डण्डा हो, चाहे वह सत्ता का डण्डा हो या लकडी का डण्डा । सत्ताधारी लोगो मे तथा डण्डा चलाने वाले गुण्डो मे ऐसी साठ-गाठ होती कि स्वराज्य और नव निर्माण के नाम पर जो भी टपकता वह ये लोग बीच ही मे झेल कर आपस मे बाट खाते । सर्वसाधारण जनता

तक उसके पहुचने की गुजाइश ही नही थी। वह जनता पहले भी बेजबान थी, अब भी बेजबान है। उसके दुख-दर्द को सुनने-समझने वाला कोई नही, उसपर क्या बीत रही है, क्या गुजर रही है इसकी कानोकान खबर नही। योजनाओ के नाम पर चादी की गगा बह रही थी। जिनको उसका हिस्सा मिल जाता वे अखबारो मे, असेम्बलियो मे, सभा-मचो पर से दहाड-दहाडकर कहते कि देश की काया पलट रही है। देश मे नई क्राति हो रही है, देश का उद्धार हो रहा है। सरकारी प्रचार-विभाग तथा उनकी फिल्मे उन्हीकी आवाज का, उन्हीके चित्रो का प्रचार करती। और वह भी इतने ढोल-ढमाके के साथ कि इस तस्वीर का दूसरा भी पहलू है यह कहने की किसीकी हिम्मत ही नही होती। जैसे सरकार के सिर पर मुहर्रम की सवारी चढ गई हो और वे लोग चिल्ला रहे हो—हुसैन, हुसैन ! ! हुसैन, हुसैन ! !

धनजय इन सब बातो को देखता और सोचता कि यह क्या हो गया ? कोई काम शुद्ध और निर्मल वृत्ति से होता नही। कोई भी स्कीम कागज पर कितनी भी पवित्र और कल्याणकारी क्यो न लगे, प्रत्यक्ष अमल मे उसके तीन-तेरह हो जाते। उसके उद्‌गम के पीछे शायद कल्पना शुद्ध रहती पर उसके प्रवाह मे न जाने स्वार्थ, लोभ और मोह की कितनी उपनदिया आकर मिल जाती कि वह आगे चलकर दूषित हो जाता, विषैला बन जाता। और जब गन्दगी ऊपरी नेतृत्व की सतह से शुरू होती है तो नीचे के स्तर पर, यानी पार्टी के छोटे-छोटे नेताओ मे, सरकारी कर्मचारियो मे, तथा इन सब उलटे-सीधे कामो की दलाली का पेशा बनाने वाले लोगो मे तो वह सौ गुना विषाक्त होकर फैल जाती है।

धनजय ने कही एक किस्सा पढा था, एक बादशाह का, जो अपने नौकरो और सिपाहियो के साथ अपने राज्य मे शिकार के लिए गया था। एक आम के बगीचे के पास उसने डेरा डाला। बाग के मालिक को खुशी हुई कि आज मेरी किस्मत जाग उठी जो हुजूर बादशाह के कदम मेरी जमीन पर लगे। उसने अपना आदर व्यक्त करने के लिए उन्हे चुनिन्दा चालीस पके आम भेट किए। बादशाह ने हुक्म दिया कि इनकी कीमत मे चालीस मुहरे फौरन चुका दो। उनका खजाची बोला

'हुजूर, ये आम तो उसने आपकी मुहब्बत के खातिर भेट किए। उनकी कीमत चुकाने की क्या जरूरत ? और वह भी इस तरह सौ गुना ?'

बादशाह ने कहा, 'ये आम अगर मुफ्त मे रख लू तो कल मेरे सिपाही तो उस गरीब के बाग को उजाड डालेगे। मै तो रियाया का पालनहार हू। मुझे तो उससे

लेने की बजाय उसे देना ज्यादा चाहिए ।'

धनजय को कहानी की यह नसीहत बहुत पसन्द आई थी । हाथ मे जितनी अधिक सत्ता रहती है, उतना ही अधिक विवेक रखना होता है । राजा यदि व्यभिचारी निकला तो प्रजा मे दुराचार की सीमा नही रहती । वह यदि धर्मात्मा है तो उसका राज्य धर्मराज्य हो जाता है । गीता का वचन स्पष्ट है

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन ।

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जैसा-जैसा आचरण करता है वैसा-वैसा आचरण अन्य पुरुष भी करते है। इसलिए श्रेष्ठत्व सयम और उत्तरदायित्व का निमन्त्रण है, स्वच्छन्द आचरण का परवाना नही। श्रेष्ठत्व काटो का ताज पहनता है, शर-शय्या पर शयन करता है, भोग-विलास के मुलायम बिछौने पर नही । इस प्रारम्भिक मूल-भूल तत्व का अवसान करने से ही हमारी बुराइया शुरू हुई, ऐसी उसकी धारणा थी।

इसका अर्थ यह नही है कि देश के सबके सब नेता इसी तरह पथभ्रष्ट हो गए। कुछ-कुछ ऐसे जरूर थे जो इस पतन और परिवर्तन को देखकर दुखी थे। पर सत्ता-हस्तातरण के बाद अधिकारो और सुविधाओ की, आराम और विलास की जो भयकर बाढ आई उनमे सारे सयम और आदर्श बह गए। उस बाढ को रोकने की शक्ति उनमे नही बची थी। जिस एक व्यक्ति मे यह शक्ति थी उसने गोली खाकर आखे बन्द कर ली थी। पर उसका दिल पहले टूट गया था, गोली बाद मे लगी। सत्ता-कामिनी के स्पर्श मात्र से उसने अपने बडे से बडे शिष्यो को तपोभ्रष्ट होते देखा, और अपना विदीर्ण हृदय लेकर वह नोआखाली के वीरानो मे विचरण करते हुए मृत्यु की कामना करने लगा । वह देवता का प्यारा था इसलिए उसे इच्छा-मरण प्राप्त हुआ। जब अपना ही पराया हो जाए और आदर्शों की हत्या होने लगे तब जीने मे क्या अर्थ है ? इसका अर्थ यही है कि अन्तर्धान होने का समय आ गया है। कौन कह सकता है कि उसके अन्तिम शब्दो मे 'हे राम' के साथ ही साथ यह गगनभेदी प्रार्थना न उठी हो, जैसी कि ईसा के मुह से निकली थी, कि हे मेरे आकाश-वासी पिता ! उन्हे माफ कर दो क्योकि वे नही जानते कि वे क्या कर रहे है ।

इस विचारो के चक्र ने धनजय को पागल बना दिया । उसकी नीद हराम हो गई । उसकी अन्तर्व्यथा और छटपटाहट देखी नही जाती थी । गीता उसे अपने हृदय से लगाती, सात्वना देती । पर वह जानती थी कि उसकी असली सात्वना

उसके हृदय मे बसने वाले देवता की ओर से ही मिलेगी। यह सब समुद्र-मथन और विष का प्राशन वही करा रहा हे। और यह ध्रुव सत्य है कि उसको अमृत का प्रसाद मिले बिना रहेगा नहीं, ठीक उसी तरह जैसे रात के वाद दिन आता है। सब कुछ समय का ही खेल है।

२२

लोक-कर्म विभाग के मन्त्री श्री मनमोहन बाबू के खारी बावली के डाक बगले के अनाचार की खबर 'युगान्तर' मे प्रकाशित होते ही तहलका मच गया। उसपर एक बडी टिप्पणी भी प्रकाशित हुई। सत्यवती शर्मा के पत्र पर अविश्वास करने का कोई कारण नही था। फिर भी धनजय ने एक चक्कर स्वय उस डाक बगले तक लगाया और अपने ढग से जो जानकारी हासिल करनी थी वह की। काफी जाच-पडताल के बाद जब उसे विश्वास हो गया कि इसमे तथ्य है, तब उसका प्रकाशन किया। टिप्पणी मे यह लिखा गया था कि हमे मन्त्रियो के ही क्या, किसी भी व्यक्ति के निजी मामलो मे हस्तक्षेप करने का कोई कारण नही है। पर जब एक मन्त्री सरकारी काम के बहाने सरकारी डाक बगले मे ही जाकर मन्त्रिमण्डल की शराबबन्दी की नीति के खिलाफ आचरण करता है, वेश्या का गाना सुनता है और शराब मे धुत होकर अपने मातहत अफसर का अपमान करता हे, जब कि वह सरकारी ड्यूटी बजाने के लिए ही वहा आया था—इस गैरजिम्मे-दारी से भरे निर्लज्ज आचरण की हम तीव्र निन्दा करते है। मन्त्री का पद व्यक्ति-गत भोग-विलास और दुर्नीति का आज्ञापत्र नही है। वह एक अत्यन्त उत्तरदायित्व की जगह है जहा जनता के कल्याण के लिए अपने सदाचार और सेवावृत्ति की सुरक्षा बडी मर्यादा और जतन के साथ करनी होती है। हम मुख्य मन्त्री से आग्रह करते है कि वे व्यक्तिगत रूप से इस प्रकार से प्रकरण की जाच करे और यदि ये आरोप सच साबित होते है तो सम्बन्धित मन्त्री महोदय के खिलाफ उचित कार्रवाई करे। यह कार्रवाई तो उन्हे मन्त्रिपद से हटाने मे ही पूरी हो सकती है। हम मुख्य मन्त्री को यह सुझाव भी देना चाहते है कि ऐसे अनिर्बन्ध स्वैराचार के लिए कौन-कौन-से

तत्व जिम्मेदार है, और यह किस प्रकार के वातावरण के कारण होता है इसकी भी जाच करे। क्योकि यह घटना कोई इक्की-दुक्की घटनाओ मे से नही है, बल्कि एक व्यापक रोग की निशानी है जो हमारे राजनीतिक, सामाजिक और शासकीय जीवन को ग्रस रहा है। हमे समय रहते ही सबक सीखना चाहिए और काल-पुरुष की चेतावनी सुननी चाहिए।

'युगान्तर' की टिप्पणी गभीर स्वरूप की थी और उसकी ओर मनमोहन बाबू तो क्या स्वय मुख्य मन्त्री भी दुर्लक्ष्य नही कर सके। इसमे उनके ऊपर तो प्रत्यक्ष आघात नही था, पर अप्रत्यक्ष रूप से उनपर भी इस घटना की पृष्ठभूमि और वातावरण की जिम्मेदारी डाली गई थी। टिप्पणी छपते ही गिरधारी उनके पास पहुचा और बोला

'देखा मामाजी! कैसा गहरा वार है? आपको धमकी दे रहा है, धमकी। जिसको दूध पिलाया वह आज काटने को दौड रहा है। जिस पत्तल मे खाना उसी मे छेद। वाह री दुनिया! मै कहता हू कृतघ्नता की भी हद है।'

जोशी जी भीतर से भरे तो बैठे ही थे, गिरधारी ने आग मे तेल झोकने का काम किया। पर बहुत गहरे और चतुर व्यक्ति थे। बोले, 'नही, इस प्रकरण की जाच करनी होगी। पहले तो मुझे मनमोहन बाबू से ही बात करनी होगी। देखना तो होगा कि इसमे तथ्य कितना है?'

यह पहला ही मौका था कि जोशी ने 'युगान्तर' के बारे मे इतनी भी बात सुन ली। वरना जब से गिरधारी के हाथ से अखबार निकालकर धनजय के हाथ मे सौंपा था तब से तो एक बार भी गिरधारी की बात नही सुनी थी। जानते थे कि उसके हाथ से अखबार निकला है, इसलिए जला-भुना बैठा है, सो वह जली-कटी बात तो करेगा ही। इसलिए उसे हमेशा दुतकार देते थे। पर आज अच्छा मौका हाथ लगा, और गिरधारी ने उसे छोडा नही। जमीन को जरा मुलायम देखकर उसने एक और कुदाली मारी, 'तथ्य क्या है मामाजी, आपको मन्त्रिपद से हटाने की साजिश हो रही है, सम्हल जाइए। मणिलालभाई आजकल ज़रा एक्टिव (सक्रिय) है।'

यह सच है या झूठ, इसकी जाच करने का विवेक कहा? जहा अपने स्वार्थ पर आघात करने की बात आती है उसपर सबसे पहले विश्वास करने को जी करता है।

मणिलालभाई ने एक काम जरूर किया कि टिप्पणी पढते ही धनजय को फोन किया, 'वाह भाई धनजय! कमाल कर दिया आपने। आज की टिप्पणी पढकर मुझे लगा कि इसे कहते है पत्रकारिता। मुझे तो पुराने 'युगान्तर' की याद आ गई। वरना आजकल तो पत्रकारिता जैसे मुर्दा हो गई है। बधाई है।'

'खैर आपकी बधाई के लिए धन्यवाद, पर आपके पास भी तो तीन-चार अखबार है। उनमे ऐसी पत्रकारिता क्यो नही शुरू कराते?'

'अरे आप तो जानते है धनजय भाई, वे सपादक लोग मेरी क्या सुनते है? निन्यानवे के फेर मे पडे है, निन्यानवे के। मन्त्रियो के भ्रष्टाचार पर प्रकाश डाले तो सरकारी विज्ञापन कैसे मिलेगे?'

'फिर इस बधाई का क्या अर्थ है मणिलाल भाई, क्या मेरे विज्ञापन बन्द होने का खतरा नही है?'

'पर आप तो हमेशा से बहादुर रहे है। आपकी और इन सपादको की क्या बराबरी हो सकती है? आप डटे रहिए और मेरे लायक कोई सेवा हो तो जरूर बताइए।'

'आपकी क्या सेवा ले सकता हू, मणिलालभाई, आप तो राजनीति वाले पुरुष है और मेरा राजनीति से कोई सम्बन्ध नही है। मै तो सिर्फ नैतिक मूल्यो के कारण ही शासन मे भ्रष्टाचार और अन्याय को हटाना चाहता हू।'

'वही मेरा उद्देश्य है।' मणिलालभाई ने कहा।

'पता नही। आप तो जोशी जी को वहा से हटाने का प्रयत्न करते हैं पर मेरा इस प्रयत्न मे रत्ती भर दिलचस्पी नही है। व्यक्तियो से मुझे मतलब नही, केवल नीतियो (पॉलिसीज) से है।'

मणिलालभाई ने दो मिनट बाद ही 'जागरण' के सम्पादक डॉ० छदामीलाल को फोन करके इस बातचीत का अपने मतलब का ब्यौरा बताकर कहा, 'देखा छदामी! राजा-महाराजाओ के भ्रष्ट पैसे से अखबार चलाकर अब भ्रष्टाचार हटाने की और नीतिमत्ता की बात करता है! कैसा पाखण्डी है! पर हमे क्या करना है। अभी तो उसने जो लिखा है उससे जोशी जी का बाजू कमजोर होता है। बस, उस हद तक मेरा काम बनता है।'

छदामी बडा दूरदर्शी था। इधर जोशी जी से भी साठ-गाठ रखता था और उन्हे मुख्य मन्त्रित्व से हटाकर उनकी जगह पर बैठने का स्वप्न देखने वाले मणि-

लालभाई से भी। राजनीति चचल होती है, न जाने कल क्या हो जाए ? इसलिए दोनो डग्गो पर हाथ रखने मे ही फायदा है। पर इस घटना से उसे मन ही मन खुशी हुई थी। ज़ाहिर है कि जोशी जी और धनजय के बीच कुछ दुराव आ गया है। बस, यही मौका है भीतर धसने का, और अपनी जलन शान्त करने का। फौरन उठा और गिरधारी को जाकर मणिलालभाई के टेलीफोन का हाल बताया। पूरी-पूरी बातचीत तो किसीने नही बताई पर अपने ही चश्मे के रग मे रगकर वह बात गिरधारी ने मामाजी को बताई

'देखिए, मणिलालभाई 'एक्टिव' है न ? उसकी धनजय से टेलीफोन पर बातचीत तक हो गई। उसमे आपको हटाने की बात ही मुख्य थी।'

जोशी जी गभीर हो गए और कुछ न बोले। गिरधारी ने अधिक बोलना उचित न जानकर अपनी लडकी के विवाह की बात छेड दी कि कहा-कहा बात चली है। लडके तो तीन-तीन तैयार है पर हमे ही सोचना है कि कहा का रिश्ता ठीक होगा।

जोशी जी ने गिरधारी को विदा करके मनमोहन बाबू को बुलाया। उनके पी० ए० ने जब बताया कि मुख्य मन्त्री ने बुलाया है तो उन्हे पसीना छूट गया। 'युगान्तर' का समाचार और टिप्पणी पढकर तो वे दिन भर भीतर ही भीतर काप रहे थे।

जोशी जी के सामने पहुचते ही उन्होने 'युगान्तर' का अक सामने फेककर पूछा, 'क्या यह सच है ?'

मनमोहन बाबू ने त-त-ता-प-प-प करके अपनी टोपी जोशी जी के पैरो मे रख दी और कहा कि मै आपका ही लडका हू, मुझे बचाइए।

इस शरणागति से जोशी जी का पितृ-हृदय पसीज गया। बोले, 'जाओ, पर ज़रा सम्हलकर काम किया करो। आजकल विरोधी लोग एक्टिव है।'

बगले पर पहुचते ही मनमोहन बाबू ने रघुनाथ सहाय को टेलीफोन पर ही दून की हाकने मे कोई कसर नही की। बोले, 'मैने पण्डितजी को सब कुछ साफ-साफ समझा दिया है, और मामला ठण्डा हो जाएगा।'

जोशी जी भी मामले को ठण्डा करने की फिक्र मे ही थे। एक तो बात के खुलने और प्रमाणित होने से उनकी तथा उनके मन्त्रिमण्डल की बदनामी होती, दूसरे, मनमोहन जैसा मन्त्री पडा न रहे तो लोक-कर्म विभाग के हजारो तरह के

कामो मे अपना हाथ कैसे रहे ? उसके बिना सादिकभाई को ठेका कैसे मिलता और गिरधारी का बगला कैसे बनता ? अब तो मनमोहन और भी मुट्ठी मे रहेगा और चपरासी जैसा काम करेगा।

पर इस 'युगान्तर' का क्या करना होगा ? इस धनजय के सिर पर यह क्या भूत सवार हो गया ?

उन्हे और किसी बात की चिन्ता नही थी, सिर्फ थी तो इसी मामले मे, क्योकि धनजय का हैंडलिग (पकड)जरा मुश्किल था। वह माने तो मान जाएगा, और न माने तो ? है भी जरा सिरफिरा ! जिद पर चढ गया तो बिगड खडा होगा। जरा शान्ति से काम लेना चाहिए।

उन्होने उस दिन तो धनजय को नही बुलाया, हालाकि वह उम्मीद यही करता था। हो सकता है कि जोशी जी जाच करते हो। और इस जाच के फल-स्वरूप वे मनमोहन को मन्त्रिमण्डल से हटा दे और बिगडती हुई परिस्थिति पर नियन्त्रण कर ले तो कितना अच्छा होगा ? प्रदेश का कल्याण हो जाएगा। उस रात्रि को सोने के पहले उसने ठाकुर जी के सामने कपूर और ऊदबत्ती लगाकर यही प्रार्थना की कि 'हे भगवान ! आप अन्तर्यामी है और मेरे मन की बात जानते है। मै आपसे और कुछ नही मागता, केवल इतना ही मागता हू कि जोशी जी को सुबुद्धि दे, ताकि जो मैने लिखा है उसे वे सही अर्थ मे ले और मेरे अन्त करण की व्यथा को पहचाने। वे पुन मुख्य मन्त्रिपद पाने के पूर्व के जोशी जी बन जाए, उसी प्रकार के आदर्शवादी, त्यागी और कर्तव्यनिष्ठ !'

कपूर की ज्योति फडफडाकर हिल उठी मानो वह अट्टहास कर रही थी कि रे मूरख, तू कितना भोला है ? पर साक्षात कृष्ण भगवान ने, जिनकी कि वह उपासना करता था, क्या सोचा और क्या कहा यह उसे ज्ञात नही हुआ। वह उनकी मूर्ति की तरफ सजल नेत्रो से देखता रहा। उसे लगा, या भास हुआ, कि वह उसकी ओर देखकर धीमे-धीमे मुसकरा रही है।

२३

दूसरे दिन सुबह ही जोशी जी का धनजय को टेलीफोन आया कि कहिए, क्या हाल है ? बहुत दिनो से मुलाकात नही हुई है। यदि फुर्सत हो तो कभी मिलने आ जाइए।

धनजय ने कहा कि रात को नौ बजे आ जाऊगा। यही वक्त था जब उन लोगो की अक्सर भेट हुआ करती थी। यह सच था कि कई दिनो से उनकी मुलाकात ही नही हुई थी। इधर उसके कानो मे जो बाते आ रही थी और जो हृदय-मथन चल रहा था उसके कारण स्वय उसका उत्साह ठडा पड गया था। वह खुद भी इस परिस्थिति पर जोशी जी से बातचीत करना चाहता था, पर खुद नही जाना चाहता था। खारी बावली की घटना के प्रकाशन से यही नौबत आ गई कि स्वय जोशी जी को उसे बुलाना पडा। यही वह चाहता भी था।

धनजय ने जोशी जी के कमरे मे पहुचते ही अनुभव कर लिया कि वातावरण मे वह आत्मीयता नही है जो अक्सर उनके बीच रहा करती थी। फिर भी जोशी जी ने कुछ हसकर और कुछ गभीरता से पूछा

'आजकल आपके पेपर मे यह अनाप-शनाप क्या छप रहा है ? शायद आपका ध्यान उधर नही रहा, किसी सब-एडिटर ने छाप दिया होगा।'

'कैसा अनाप-शनाप ? आपका इशारा किस मजमून की तरफ है ?'

'यही हमारे लोक-कर्म-मन्त्री श्री मनमोहन बाबू के बारे मे।'

'वह खारी बावली के डाक बगले की घटना ? वह तो, जहा तक मैने तहकीकात की है, सच मालूम पडती है। इसलिए उसका प्रकाशन मैने ही कराया, सब-एडिटर ने नही। उसमे भी तो यही माग की है कि आप स्वय उसकी जाँच करे और बात ठीक निकल जाए तो उन्हे मन्त्रिपद से हटा दे।'

'इतनी-सी बात पर मन्त्रिपद से हटा देगे तो सारे मन्त्रिमण्डल की बदनामी नही होगी ? यह मै कैसे बर्दाश्त कर सकता हू ?'

'यह इतनी-सी बात है ? मुझे बडा आश्चर्य होता है कि आपको यह बात छोटी-सी मालूम पडती है। एक जिम्मेदार मन्त्री का यदि यह आचरण रहे तो उसके मातहत काम करने वाले अधिकारियो को कितनी छूट मिल जाती है ? फिर हमारे नैतिक मूल्यो और आदर्शों का क्या होगा ?

जोशी जी ने फौरन पैतरा बदला क्योकि वे आदर्शों और नैतिक मूल्यो की चर्चा मे नही उलझना चाहते थे। बोले, 'खैर, मान भी लिया कि बात छोटी नही है, पर छापने के पहले हमे बता तो देते। हम उसकी इनक्वायरी करा लेते और बात सही निकलती तो फिर आपकी जो मरजी आती सो करते।'

'आप अभी इनक्वायरी कर लीजिए। यदि बात गलत निकली तो मै अपने अखबार मे उसी स्थान पर उसी प्रकार के हेडिग के साथ सार्वजनिक तौर पर क्षमा माग लूगा।'

'अब इनक्वायरी करने से क्या फायदा ? बदनामी तो पहले ही हो गई है। पहले की बात कुछ और थी।'

'जोशी जी, पचासो मामलो पर मैने आपके पास 'इनक्वायरी' के कागज भेजे, और आपके कहने के मुताबिक सम्बन्धित मन्त्रियो और अधिकारियो के पास गया पर एक भी इनक्वायरी ठिकाने नही लगी और कुछ पल्ले नही पडा। ये कागजात उन पत्रो के बारे मे थे जो प्रकाशनार्थ मेरे पास आए थे। उनको छापना मेरा कर्तव्य था, पर मैने मन्त्रिमण्डल के साथ जिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार किया कि उन्हे पहले आगाह किया क्योकि मुझे शिकायतो का निवारण चाहिए था, खाहमखाह मन्त्रिमण्डल की बदनामी नही चाहिए थी। पर आपके शासन ने कौडी भर सहयोग नही दिया। यहा तक कि लोगो की धारणा हो गई कि 'युगान्तर' पत्र मुर्दा हो गया है और वह केवल मन्त्रिमण्डल का भाट बन गया है। पेपर की बिक्री घटती जा रही है और दिन-रात मेहनत-मशक्कत करने के बाद भी आमद-खर्च का जोड-तोड मिलाना मुश्किल हो रहा है।'

'यही बात है तो आपने पहले मुझसे क्यो नही कहा ? और रुपया इकट्ठा कर लेते।'

'नही, यही बात नही है। असली बात है समाचारपत्र की नीति और कर्तव्य की। उसे भाट बनने मे एतराज नही है बशर्ते कि जिसका गुणगान वह करता है उसका विषय उस लायक हो। भूषण कवि छत्रसाल और शिवाजी के भाट थे या तुलसीदास जी रामचन्द्र जी के भाट बने और सूरदास ने कृष्ण की महिमा गाई तो वे चरित्र भी उसी प्रकार के उज्वल चरित्र थे। क्या हम सब लोगो ने गाधीजी की भाटगिरी नही की ? वह हमने स्वेच्छा से की क्योकि वे उस योग्य थे। जिस मन्त्रिमण्डल मे मनमोहन जैसे दिव्य पुरुष है, उ सका समर्थन कैसे हो सकता है ? आप

उन्हे हटा दीजिए और यह आश्वासन दीजिए कि ऐसी बाते अब न दुहराई जाएगी, इसके लिए आप स्वय जागरूक रहेगे, तो बात अलग है ।'

जोशी जी की जो धाक थी उसमे उनसे कोई ऐसी हुज्जत करे ऐसी उन्हे आशा ही नही थी। मन ही मन गुस्सा भी आ रहा था। सोच रहे थे कि छोटे मुह बडी बात कह रहा है । फिर भी ऊपर से शान्त होकर बोले

'हमारे पास कोई शिकायत आए तो हम सब समय उसकी जाच करने के लिए तैयार है । हम एक एण्टी-कॉरप्शन स्क्वाड (भ्रष्टाचार विरोधी दल) बना रहे है जो भ्रष्टाचार का नियन्त्रण करेगा । पर मै मनमोहन को हटाकर एक क्राइसिस (सकट) खडा नही कर सकता । फिर तो आए दिन कोई भी अखबार किसी भी मन्त्री के खिलाफ कुछ भी लिख देगा और हमे उसे हटाना पडेगा । ऐसा हम थोडे ही कर सकते है ? हमने मनमोहन बाबू को ताकीद दे दी है कि वे दुबारा ऐसी शिकायत न आने दे । आप ही बताइए, घर का लडका यदि एकाध गलती कर गया तो क्या उसे घर से निकाल दिया जाता है ?' जोशी जी ने धनजय की भावना को स्पर्श करने का प्रयत्न किया ।

'उसे घर से निकाला जाए न निकाला जाए इसका खास महत्व नही है । मन मे दया है तो उसे रखा भी जा सकता है । पर उसे सार्वजनिक उत्तरदायित्व के पद पर तो कदापि नही बिठाया जा सकता । आप मनमोहन बाबू को मत्रिपद से हटा दीजिए फिर चाहे तो निजी तौर पर उनके चरितार्थ का इन्तजाम कर दीजिए । पर ऐसे आदमियो को जनता के कोष से पोसना अयोग्य है ।' धनजय अपनी बात पर अडा ही रहा । जोशी जी ने तो इस प्रश्न पर आज ही सोचा होगा, पर वह तो इसके सोच-विचार मे कई राते गुजार चुका था ।

'आप जरा-सी बात को बडा तूल दे रहे है धनजय बाबू । राजकाज इस तरह नही चला करता । बहुत सोच-समझकर चलना पडता है । हम विरोधियो के हाथ मे कोई हथियार थोडे ही दे देगे ?'

'जोशी जी, बडे खेद की बात है कि आप इसे जरा-सी बात कहते है, और एक बिलकुल अलग रुख अख्तियार कर रहे है । मै आपसे कहता हू कि आपने एक बार यह सख्त कदम उठा लिया तो सारी शासकीय मशीनरी आतक खा जाएगी और सतर्क हो जाएगी और आपकी व्यक्तिगत लोकप्रियता मे भी वृद्धि हो जाएगी । लोग कहेगे कि शाबाश जोशी जी, अनैतिकता को कोई प्रश्रय नही देते । मेरी राय

मे तो आपकी ख्याति मे चार चाद लग जाएगे। यह मै आपके हित की बात ही कह रहा हू । वैसे मेरी मनमोहन बाबू से क्या दुश्मनी है ? दो-एकबार यहा-वहा मिला हू, सार्वजनिक कार्यक्रमो मे । मेरा किसीसे राग-द्वेष नही है । पर लोग काम ठीक करेगे तो 'युगान्तर' उनका समर्थन करेगा और न ठीक किया तो उनकी आलोचना करने मे कसर नही करेगा । इसका अर्थ यह नही कि वह दिन-रात आलोचना ही करता रहेगा या मत्रिमण्डल का शत्रु बन जाएगा। नही, यह बात हर्गिज नही है । पर राष्ट्रीय दल का मत्रिमडल विशुद्ध राष्ट्रीयता और सम्पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ काम करे यह वह जरूर चाहेगा। आपसे मै हाथ जोडकर यही प्रार्थना करता हू और आपसे आग्रह करता हू कि आप उसपर अवश्य ध्यान दे ।'

प्रार्थना और हाथ जोडने के शब्दो से जोशी जी का 'अह' कुछ शात हुआ पर वह जिस बात की माग कर रहा था वह बहुत कठिन थी। कोई किसीसे कहे कि आप अपनी सपत्ति का त्याग कर दीजिए, सत्ता या स्वार्थ का त्याग कर दीजिए, मै पैर पर सिर रखता हू तो कभी कोई करेगा ? गाधीजी ने अग्रेजो से घुटने टेककर कहा था कि आप स्वेच्छा से भारत के गले मे लगाया हुआ फास खोल डालिए तो क्या उन्होने ऐसा किया ? इस प्रकार की नम्रता और शालीनता मे वज्र की-सी दृढता होती है यह बात जोशी जी न समझते हो सो बात नही पर धनजय जो कह रहा था वह उनकी नई जीवन-प्रणाली के ठीक विपरीत था। एक आदर्शवादी युवक की इच्छा के सामने उसपर पानी फेरने की मूर्खता भला वे कैसे कर सकते थे ?

फिर भी उन्होने ऊपर से हसते हुए कहा, 'आप तो बडे भावुक व्यक्ति है—हमेशा ऐसे ही रहे है, मै जानता हू । आप और सोच लीजिए । मै खुद भ्रष्टाचार की शिकायतो को 'डील' करने के लिए एक ठोस कदम उठा रहा हू । दो-एक दिन मे आपके पास प्रेस-नोट पहुच जाएगा। अच्छी बात है।' कहकर उन्होने नमस्कार किया। यह उनका मुलाकात खतम करने का तरीका था। धनजय ने भी नमस्कार किया और निकल पडा।

उस समय गिरधारी मामाजी के भीतर वाले कमरे मे बैठा-बैठा सब सुनने की कोशिश कर रहा था। उसे पूरा-पूरा सुनाई तो नही दिया पर इतना उसकी समझ मे ज़रूर आ गया कि कुछ गरमा-गरमी की बहस छिड गई थी। इटरव्यू समाप्त होते ही वह भीतर ही भीतर पिछवाडे की तरफ निकल गया, और पाखाने मे जा बैठा।

बाद मे उसने अर्दली से पूछा कि क्यो रे, क्या हुआ ? बहुत लडाई-झगडा हुआ ?

अर्दली इटरव्यू के पहले ही गिरधारी से दो रुपया इनाम पा चुका था। बोला, 'हा साहिब। बडी गिटपिट-गिटपिट बहस होती रही। हमेसा महाराज एडीटर साहब को पानदान पेस करते रहे पर आज वह भी नही किया।'

आज बातचीत की गरमी मे जोशी जी पान खिलाना भी भूल गए, यह सच था। पर जब धनजय चला गया तब उन्हे इसका ख्याल आया और बुरा भी लगा, क्योकि व्यवहार मे हमेशा वे बडे शिष्ट रहा करते थे। उनकी आन्तरिक भावनाओ का न तो चपरासी को पता था न गिरधारी को। पर आज पान भी नही खिलाया गया। इसपर से ही गिरधारी ने अन्दाज बाध लिया कि दोनो के बीच अब ठनने की नौबत आ गई है। खुशी के मारे फूल उठा। इतना फूला, इतना फूला कि घर जाकर हातिमभाई की भेजी हुई बोतल सफाचट कर गया।

धनजय घर लौटा तो ग्यारह बजे थे। गीता खाना खाने के लिए उसका इन्तजार कर रही थी। धनजय को प्रेस से आने मे देर हो गई थी, इसलिए वह बिना खाए ही जोशी जी के यहा चला था। आते ही बोला, 'देखो गीता रानी ! यही बात तो मुझे पसन्द नही आती कि तुम बेवक्त मेरे लिए भूखी बैठी रहो। तुम्हारा स्वास्थ्य इधर ढीला चल रहा है। वक्त से दोनो जून भोजन कर लो तो बिना दवा के तुम अच्छी हो जाओगी।'

'ऊ इसमे क्या हो गया ?' गीता ने कहा, 'आप तो जानते है कि मै आपके पहले कभी खाना नही खा सकती। वह गले के नीचे उतरता ही नही।'

'पर तुम तो जानती हो कि यह अखबार का काम कैसा है ? कितना पिसना पडता है ? कभी-कभी कोई काम अटक गया तो कब खतम होगा इसका भरोसा नही। और फिर यह बाहर घूमना, मिलना-जुलना भी तो चलता रहता है। पर तुम मेरा सब मानती हो, इतना ही क्यो नही मानती ?'

'छोडो भी इस बात को,' गीता ने कहा। 'इसपर तो हम लोग पचासो बार बहस कर चुके है, और अभी तक यह सवाल तय नही हो पाया। पर यह तो बताओ कि इतनी देर कैसे लगी ? क्या नतीजा निकला ?'

'कुछ नही, वे मनमोहन को अलग करने के लिए तैयार नही है ? और न उस घटना की उनके मन पर उतनी तीव्र प्रतिक्रिया ही हुई जितनी कि किसी विवेक-

शील आदमी के दिल पर होनी चाहिए। मेरी तो धारणा हो रही है कि शासन और सत्ता के वातावरण मे रहकर उनकी विवेक-बुद्धि भी बधिर हो गई है। किसी बात का उनपर असर नही पडता।'

'तो फिर ?'

'तो फिर क्या ? कहते है भ्रष्टाचार निवारण के लिए मै एक स्क्वाड तैयार कर रहा हू जिसकी घोषणा दो दिन के भीतर हो जाएगी। बस !'

'पर तुम जो बात कह रहे थे उसकी नीयत की प्रामाणिकता तो उन्हे जची, कि नही जची ?'

'वह तो जची होगी पर मेरी धारणा है कि वे स्वय इन बातो मे इतने उलझ गए है कि उससे बाहर निकलना उनके लिए कठिन हो रहा है। कोई बात है जो भीतर ही भीतर उनकी तेजस्विता और पुरुषार्थ को खा रही है। बुढापा हो, या कोई लोभ या मोह हो। व्यक्तिगत मामलो मे वे तुरन्त दिलचस्पी ले लेते है पर मूलभूत प्रश्नो की सार्वजनिकता उन्हे 'इटरेस्ट' ही नही कर पाती। अजीब-सी बात है। मेरा तो उनसे इन सार्वजनिक प्रश्नो के कारण ही रिश्ता बधा था। वह बुनियाद ही यदि ढह गई तो कैसे काम चलेगा, समझ मे नही आता।'

'क्यो, चिन्ता होती है ?' गीता ने पूछा।

'अरे नही, बिलकुल नही। आज की मुलाकात के बाद तो मेरी धारणा और भी दृढ हो गई कि मेरा दृष्टिकोण सही है और उनके दृष्टिकोण मे कमजोरी है। इसलिए मुझे रत्ती भर भी चिन्ता नही है। मिलने के पहले मुझे थोडा सकोच था कि हो सकता है कि उनका भी कोई पहलू हो जो शायद मेरी नजर मे न आया हो। पर पहलू-वहलू कुछ नही है। सीधी बात यही है कि वे इस मामले मे कोई बुनियादी कदम उठाना नही चाहते क्योकि वे उस मुकाम से वापस नही लौटना चाहते जहा चार वर्षो के सत्ता-भोग के बाद पहुच चुके है।'

'खैर, देखा जाएगा। तुम्हे चिन्ता नही है, और तुम्हारी विवेक-बुद्धि शात है तो सब ठीक है। आओ, पहले खाना खा लो।' गीता ने कहा।

ज्यादा बर्तन न माजने पडे इसलिए वे एक ही थाली मे खाने बैठ गए। इस सह-जीवन और एकत्व की भावना के सामने उनके सारे प्रश्न, सारी चिन्ताए, सारी मुसीबते हवा हो जाती। और उनके आन्तरिक जीवन मे सदा-सर्वदा विद्यमान रहता एक परम सात्विक सतोष और आनन्द, एक मागलिक प्रकाश जिसमे

मन्दिर के धूप दीप की आभा और सुरभि मिली हो। इस परम सन्तोष और आन्तरिक शान्ति के आचल मे धनजय और गीता दोनो ही अद्भुत शक्ति और धैर्य का अनुभव करते थे, मानो वे पहाडो से टक्कर लेने की क्षमता रखते हो। इस आत्म-विश्वास और आश्वासन की पृष्ठभूमि मे वे उठे और ठाकुरजी के पास नीराजन लगाकर निश्चिन्त होकर सोने चले गए और थकावट के कारण पाच मिनट के भीतर खुर्राटे लेने लगे।

२४

दो दिन के बाद ही शासन की ओर से घोषणा हुई कि भ्रष्टाचार का निर्मूलन करने के लिए एक विशेष पुलिस-विभाग की कमेटी बनाई गई है, जो प्रत्येक शिकायत की जाच करेगी। उसे कुछ अतिरिक्त अधिकार रहेगे, ताकि वह किसी भी व्यक्ति को गवाही देने के लिए मजबूर कर सके। और भी विशेष अधिकार थे जैसे शक पर ही किसीकी तलाशी लेना, किसी भी सामग्री की जप्ती कर लेना आदि-आदि, ताकि सबूत तितर-बितर न हो जाए। कमेटी का अध्यक्ष एक सेवा-निवृत्त पुलिस का उच्च कर्मचारी था, रायसाहब रणदमन सिह, जो जल्लाद माना जाता था और जिसके बारे मे आम तौर पर यही ख्याल था कि इसने जिन्दगी भर खाने-पीने के सिवा और कुछ किया नही। वह एक मामूली थानेदार से डी० आई० जी० के पद तक तरक्की पा चुका था और उसका तजुर्बा तीस साल का लम्बा तजुर्बा था। उसकी नियुक्ति के पक्ष मे यही सबसे मजबूत दलील थी। अंग्रेजो के जमाने मे तो वह उस शासन की नाक का बाल था। उन दिनो वह पोलिटिकल विभाग मे सी० आई० डी० का काम करता था और राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ के पेट मे घुसकर उनका भेद निकालना उसका काम था। घर का भेदिया हमेशा खुले दुश्मन से ज्यादा खतरनाक होता है, पर विदेशी राज्य को वही सबसे अधिक उपयोगी होता है। जो काम अंग्रेज अफसर अपनी गोरी चमडी के कारण नही कर सकते थे वह यह आदमी अपनी काली चमडी और काले दिल के कारण आसानी से कर सकता था। दगा करा देना, गुण्डो से किसी भले आदमी को पिटवा देना,

कही आग लगवा देना, कही कतल करा देना, तो कही खून को पचा डालना, यह सब उसके बाए हाथ का खेल था। उसके मकान के पाये मे कहा जाता था कि मिट्टी की ईटे नही सोने की ईटे लगी है। जब तक वह सरकारी हाकिम था तब तक उसका बडा आतक था। लोग उससे बहुत घबडाते थे और उसके सामने कोई बात करने से डरते थे। सब यही चाहते थे कि भगवान करे उसकी साया भी हमपर न पडे। न उसकी दोस्ती भली न दुश्मनी। शौक उन्हे हर तरह के थे। थे तो ब्राह्मण, पर अग्रेजो की कृपा पाने के लिए अपने नाम के आगे ठाकुरो की तरह 'सिंह' लगाते थे। सिह शूरता का भी तो लक्षण है। उन्होने आधुनिकता का जामा अग्रेजो के जमाने से ही पहन रखा था, इसलिए मटन और व्हिस्की से उन्हे खास एतराज नही था। शादीशुदा दो औरते थी, पर जिस तरह बधी तनख्वाह के अलावा ऊपरी आमदनी पाच गुना अधिक थी उसी प्रकार धर्मपत्नियो के अलावा कई पेशेवर और गैरपेशेवर स्त्रियो का उद्धार करने की उनमे अद्भुत क्षमता थी। जब रिटायर हुए तो ऐसे फडफडाए जैसे पख कट गए हो। जिस आदमी को पद या ओहदे की लत लग जाती हो और अपने निज के गुण न रहते हो, जिनके बल पर समाज मे वह टिक सके, तो पद के जाते ही वह जल बिनु मीन की तरह छटपटाने लगता है। इन महाशय की भी यही हालत रही। सारी जिन्दगी दूसरो पर शक करने मे और उनका बुरा चेतने मे ही गई, इसलिए उन्हे भी हमेशा यही भय बना रहता कि अब चूकि मै रिटायर हो चुका हू और इस तरह अरक्षित हू, कही पुलिस विभाग के जले-भुने अफसर ही मुझपर कोई मामला न चला दे। ऐसे अफसरो की सख्या कम नही थी, क्योकि अपने मातहतो को त्रास देने मे उन्हे हमेशा बडा लुत्फ आया करता था। क्रूर व्यक्तियो की क्रीडा यही होती है कि वह अधमरे पक्षी की छटपटाहट देखकर किलोले भरे। न वह पूरा जिन्दा रहे न पूरा मरा। और, मामले के लिए तो वे खुद जानते थे कि उनके खिलाफ कितना मसाला है। एक बार यदि उसका सत्र चल पडा तो मरते दम तक चैन नही होगी और मृत्यु भी शायद कैद की चक्की पीसते ही हो। ऐसी भयकर सभावना से बचने का, आत्मरक्षा का यही एकमात्र उपाय था कि किसी तरह वापस किसी न किसी ओहदे पर चले जाए।

इसी एक लक्ष्य को सामने रखकर उन्होने जोशी जी की वह खुशामद शुरू की, वह खुशामद शुरू की कि बडे-बडे दरबारियो को लजा दिया। अपनी चाल मे मजबूती लाने के लिए उन्होने एक और पासा फेका। उनका एक शादीशुदा भतीजा था

जिसको वे अपने जमाने मे ही पुलिस विभाग मे आई० पी० एस० मे जमा गए थे और जोशी जी की एक दूर की नातिन थी जिसके विवाह की चिन्ता मे वे परेशान थे, इन महाशय ने इस सम्बन्ध का लालच भी खडा कर दिया। उनके भतीजे को इस जगह विवाह करने का मन नही था, क्योकि उसे एक दूसरी लडकी ही पसन्द आ गई थी, पर जनाब ने डाट-डपटकर उसे किसी तरह राजी कर लिया। आखिर वह उन्हीका आश्रित था। उन्होने ही उसे पढाया-लिखाया था, उन्होने ही उसे नौकरी से लगाया। उनकी इच्छा का अवमान करने की ताकत वह कहा से पाए ?

कुल मिलाकर नतीजा यह हुआ कि भ्रष्टाचार निर्मूलन कमेटी के अध्यक्ष के रूप मे उनकी ही नियुक्ति हुई और वे जोशी जी के खास सलाहगीर बन गए। और अब तो रिश्तेदारी भी जम रही थी।

रायसाहब रणदमन सिंह जानते थे कि प्रान्त मे उनकी जो ख्याति है उसे देखते हुए उनकी नियुक्ति आसानी से हजम नही होगी। इसलिए उन्होने स्वय ऑफर किया कि वे इस कार्य को केवल सार्वजनिक सेवा की दृष्टि से कर रहे है, और अपने अनुभव का लाभ जनता के, राष्ट्रीय शासन को देना चाहते है इसलिए वे सिर्फ बरायनाम एक रुपया का वेतन लेगे। बाकी बगला, मोटर, टेलीफोन, सिपाही, नौकर, जो उन्हे मिलेंगे वे केवल उनके कर्तव्य को अदा करने की दृष्टि से।

इन महाशय को वेतन की जरूरत नही थी क्योकि घर मे सोने की लका जो छिपी बैठी थी। आत्मरक्षा के लिए सिर्फ ओहदा चाहिए था सो मिल गया। आक्रमण बचाव का सबसे अच्छा तरीका है। उस हिसाब से दूसरे लोगो को सतत भ्रष्टाचार के आतक मे रखना अपने भ्रष्टाचार पर परदा डालने का सबसे आसान तरीका है। उनकी नियुक्ति का आर्डर मिला तो अपनी धर्मपरायणा ज्येष्ठ पत्नी की इच्छा के खातिर उन्होने एक सत्यनारायण की पूजा कर डाली जिसमे सवा मन का परसाद बाटा गया। इस पूजा के मुख्य अतिथि जोशी जी और उनके परिवार के लोग थे, यह कहने की आवश्यकता नही। उन्होने जोशी जी को आग्रहपूर्वक एक घण्टे तक इसीलिए बिठाल रखा कि तमाम सरकारी अफसर खुद अपनी आखो से देख ले कि उन दोनो की कितनी घनिष्ठता है। जब यह प्रदर्शन पूरा हो चुका तो अध्यक्ष महोदय को भरोसा हो गया कि पूजा सफल हो गई।

पर दूसरे दिन सुबह ही जब 'युगान्तर' मे यह अग्रलेख निकला कि—'ये भ्रष्टाचार के रक्षक है कि भक्षक ?' तो उनके बदन मे आग लग गई। अग्रलेख

राजनीति का खिलाडी तो था नही जो समाचारपत्रो की कडी से कडी टिप्पणी का आदी हो। ऐसे खिलाडी तो दो हाथ देते है तो दो हाथ लेते भी है। पर वह तो शासन के सरक्षण मे पला हुआ आदमी था, इस प्रकार की आलोचना का उसे कतई अनुभव नही था। उसकी चमडी गैण्डे की तरह सख्त नही थी, बहुत मुलायम थी जिसमे विरोध या आलोचना की छोटी-सी सुई भी चुभ जाती थी। और यहा तो अखबार के पूरे अग्रलेख का हथौडा ही सिर पर जा पडा। गुस्से के मारे ऐसा बमका, ऐसा बमका कि सारा मकान सिर पर ले लिया। लोहे की कील लगे जूतो को पत्थर के फर्श पर कर्कशता से रगडकर दहाड उठा

'मै इस युगान्तर वाले लौडे को पीसकर चबा डालूगा। समझता क्या है, किससे पाला पडा है?'

सीधा दौडा मुख्य मन्त्री के पास, चेहरा क्रोध से तमतमाया हुआ। बोला, 'इसे सबक सिखाना चाहिए। इसके रहते हुए हमे चैन नही। कम से कम इसका प्रतिवाद करना चाहिए।'

मुख्य मन्त्री धीर-गभीर बनकर बोले, 'इसका प्रतिवाद क्या हो सकता है? यह तो अपने-अपने मत का प्रश्न है। हा, आपको यदि इसमे कोई तथ्य गलत दिखाई देता हो तो आप सपादक पर मानहानि का मुकदमा चला सकते है। आप चाहेगे तो शासन आपको इजाज़त दे देगा।'

घर लौटा तो इस इरादे से कि मानहानि का एक लाख का दावा दायर कर दू। बच्चू को बरतन-भाण्डे बेचने पडेगे। हडबडाकर पब्लिक प्रॉसीक्यूटर को टेलीफोन किया जो गलती से मुख्य मन्त्री के बगले पर लगा, क्योकि वही दिन-रात टेलीफोन लगाने की आदत थी। उनकी आवाज सुनते ही घबडाकर 'सॉरी' कहकर उसने रिसीवर नीचे रख दिया और फिर डायरेक्टरी मे देखकर पी० पी० को लगाया जो एक बगाली वकील था—समरेन्द्र गुप्ता, जो गिरधारी और उसके रिश्तेदारो की कपनियो का तथा निजी मामलो का कानूनी सलाहकार था। उन लोगो से उसे फीस तो नही मिलती थी पर उनसे सौदा यह तय हुआ कि हम तुम्हे पब्लिक प्रॉसीक्यूटर बना देगे, तुम हमारा काम 'फ्री' कर देना। गुप्ता तो यही चाहता था, क्योकि वह हाईकोर्ट-जज बनने के स्वप्न देख रहा था। काफी चलता-पुरजा था, पर काम-धाम मे यो ही था। कानूनी ज्ञान भी साधारण ही था। पढाई-लिखाई कम करता था, इधर-उधर के दन्द-फन्दो मे ज्यादा रहता, और ऐन वक्त पर अदालत

मे पहुचकर कुछ अटकल-पच्चू हाक देता था जो जम गई तो जम जाती थी और अगर न जमी तो तारीख ले लेता था। इस तरह अपनी बेवकूफी पर भी पर्दा पड जाता और तारीख बढ जाने से एक सुनवाई की फीस और मिल जाती थी। दोनो हाथ लड्डू। मुख्य मन्त्री के बगले पर सुबह-शाम चक्कर काटा करता और अदालतो और बार-रूम की गप्पे, अपने हाथ की मिलाकर, उन्हे सुनाया करता था। उन दिनो दीवानी और फौजदारी मामले अलग नही किए गए थे इसलिए सरकार के हाथ मे ही सारे सूत्र थे। बेचारे जज भी गुप्ता का लोहा मानते। किसीकी तरक्की कराना, तबादला करा देना, किसीपर छीटाकशी करा देना उसका बाए हाथ का खेल था। उसकी उम्र होगी पैतीस-चालीस के भीतर ही पर उसके चार-चार, पाच-पाच जूनियर होते। वे कुछ दिन उसके हाथ के नीचे काम करते और फिर उसीकी मदद से कही ई० ए० सी० तो कही सिविल जज बन जाते। इसीके लिए तो वे उसके पीछे-पीछे फिरा करते थे। किसीको कमीशन दिला देना तो किसीको किसी कम्पनी का रिसीवर बना देना या लिक्विडेटर बना देना उसके लिए बहुत मामूली काम था। कत्ल के मामले मे हमेशा वही सरकारी वकील रहता। पुलिस से भी मिला-जुला रहता। एकाध बडा आसामी फसता तो अदालत के बाहर कुछ ले-देकर मामला ढीला करा देता या सबूत कमजोर बना देता जिसका फायदा अभियुक्त को मिल जाता। पर किसी गरीब को पकडता तो फासी पर चढवा देता या कालेपानी भिजवा देता। क्योकि सजा करा देना पुलिस और पब्लिक प्रॉसीक्यूटर दोनो के लिए गौरव की बात थी। वह उनकी योग्यता, सफलता और कार्य-कुशलता का प्रमाण माना जाता था। कभी-कभी उसका मन काटता भी था कि वह जो सब करता है वह भला ही भला है सो बात नही। इसलिए विजयादशमी की नवरात्र मे वह मनोभाव से काली माता की पूजा करता। उनके नाम पर एक सिद्धि कवच भी हाथ मे बाधे फिरता जो अक्सर उसके काले अल्पाका के कोट के नीचे छिपा रहता।

गुप्ता ठीक से कुर्सी पर बैठ भी न पाया था कि रणदमन सिह ने पूछा, 'आज का 'युगान्तर' पढा ?'

'हा, पढा।'

'उसपर मानहानि का मुकदमा चल सकता है ?'

'हा, क्यो नही चल सकता ?'

'मै एक लाख का दावा करना चाहता हू ।'

'कीजिए ।'

'तुम केस सम्हाल लोगे ?'

'क्यो नही ? डिफेमेशन (मानहानि) के केस मे क्या धरा है ?'

'इसमे कोई खतरा तो नही है ? बाजू अपने पर उलटने का तो कोई डर नही है ?'

'ऐसे मामले मे बात इतनी ही होती है कि जो कम्प्लेनेण्ट (वादी) होता है उसे क्रॉस एक्जामिनेशन स्टैंड करना पडता है । यह क्रॉस कई बार तो हफ्तो चलता है और उसमे कोई भी सवाल पूछा जा सकता है । आप एक लाख का दावा करना चाहते है तो आपकी मान-प्रतिष्ठा एक लाख की है या नही इसकी जाच करने का अभियुक्त और अदालत दोनो को अधिकार है । अभियुक्त तो यही सबूत करने की कोशिश करता है कि जिसने दावा किया है उसका 'करैक्टर' शून्य है और इसलिए वह एक कौडी के मुआवजे का हकदार नही है । और फिर, चूकि वह अखबार का एडिटर है, वह यह सिद्ध करने की कोशिश करेगा कि जो मैने लिखा है वह सार्वजनिक हित मे लिखा है । भ्रष्टाचार-निर्मूलन कमेटी के आप अध्यक्ष न बनते तो उसे लिखने का मौका नही आता । क्रॉस के लिए वह पुराने पी० पी० को बुलाएगा यह बिलकुल निश्चित है । वह न भी बुलाए तो पुराना पी० पी० उसे अपनी सर्विस फ्री दे देगा । क्योकि वह तो मुझपर और सरकार पर खार खाए बैठा है क्योकि उसे हटाकर ही मुझे पी० पी० बनाया गया । वह बहुत होशियार है, क्रिमिनल लॉ (दण्ड विधान) पर उसने चार-पाच किताबे लिखी है, और सीनियर भी है । पचीस-छब्बीस साल का अनुभव है । क्रॉस मे वह भयकर है, अच्छे-अच्छे खा को रुला देता है । सेशन्स मे तो मेरा उससे रोज पाला पडता है । इतनी ही बात है, बाकी मुकदमा तो मजे मे चलाया जा सकता है ।

रणदमन ने सोचा, इसने तो पहले ही हथियार डाल दिया । अब यह लडेगा क्या खाक ? और फिर हफ्तो तक चलने वाले क्रॉस एक्ज़ामिनेशन की सभावना से वह थर्रा उठा । अब तक जो काला चरित्र दबा पडा था वह अब खुलकर पब्लिक के सामने आ जाएगा । मेरे दुश्मन तो चारो तरफ भरे पडे है वे दौड-दौडकर उस एडिटर को मसाला देगे और पुराना पी० पी० उसके बल पर मेरी धज्जिया उडाएगा । इस कल्पना से वह भीतर ही भीतर काप उठा । फिर भी ज़ाहिरा तौर पर

हिम्मत का स्वाग रचकर बोला, 'यह सब तो मै 'फेस' कर लूगा। पर तुम 'काविक्शन' (सजा) तो दिला लोगे ?'

'नीचे के कोर्ट मे तो दिला लूगा। ऊपर नही कह सकता। मामला तो सुप्रीम कोर्ट तक जाए बगैर रहेगा नही।'

'तुम्हारी फीस क्या होगी ?'

'मै आपसे फीस का मोल-भाव क्या करूगा ? वैसे तो ऐसे मामले मे दस हजार फीस लेता हू। पाच हजार पेशगी, और पाच हजार जीतने पर। लेकिन आपसे मै कुछ नही कहूगा। आप फीस न दे तब भी मै आपका काम कर दूगा।'

गुप्ता जानता था कि फीस न मागी जाएगी, न दी जाएगी। वह भी तो भीतर ही भीतर डरता था, कि इसे रुपया देने की आदत तो है नही। यदि पाच हज़ार दे भी देगा तो मतलब निकल जाने के बाद किस गड्ढे मे उतारेगा इसका भरोसा नही। आखिर यहा क्या दूध के धुले बैठे है। फिर इतना अहसान ही क्यो न जताओ कि दस हजार का काम मै मुफ्त मे कर रहा हू। गुप्ता जानता था कि रणदमन क्रॉस के डर से कभी मुकदमा नही चलाएगा। लेकिन बातो के जमा-खर्च मे क्यो कमी की जाए ?

'फीस की कोई बात नही है। वह तो दस की जगह बीस लग जाए तो परवाह नही। पर मुकदमा जीतना जरूर चाहिए। नही तो गवर्नमेंट की ही भद्द खुलेगी। मेरा अकेले का मामला होता तो मै अभी तुम्हे ब्रीफ (ब्यौरा) दे देता।' रणदमन सिह ने कहा।

'तो जल्दी क्या है ? जोशी जी से आप पहले सलाह कर लीजिए। आखिर मुकदमा चलाने की इजाजत देना उन्हीके हाथ मे है।' गुप्ता ने कहा।

'ठीक़ बात है। पहले उन्हीसे बातचीत कर लेना उचित है।' कहकर उसने पान-सिगरेट देकर गुप्ता को विदा कर दिया।

जोशी जी से बात तो पहले ही हो चुकी थी और वे इजाजत देने के लिए तैयार थे। पर इधर तो हिम्मत उसीकी टूट रही थी, फिर भी वह गुप्ता के सामने कबूल करने के लिए तैयार नही था। बस, मानहानि की बात वही खतम हो गई। इस तरह खतम करनी पडी इसकी उसे चिढ हुई। उसी क्षण उसने तय किया कि 'युगान्तर' के सम्पादक को किसी फौजदारी मामले मे, क्रिमिनल केस मे फसाने से ही अपना बदला पूरा होगा और छाती ठडी होगी। ऐसे मामलो की तहकीकात पुलिस

करती है, मुकदमा सरकार चलाती है, इज्जत अभियुक्त की जाती है, और अपन अलग-सलग रहते हैं, और तमाशा देखते है। पीछे से पुलिस की मदद करने के लिए तो हम तैयार ही बैठे हैं।

बस यही प्लॉन अच्छा है—रणदमन सिह अपने ड्रेसिग रूम के शीशे मे अपनी सूरत देखकर ठहाका मारकर हस पडा। उसके राक्षसी अट्टहास से उसका सारा मकान गूज उठा।

और एकाएक उसे याद आई रमजान खा की।

सी० आई० डी० के नबरी बदमाश इन्स्पेक्टर रमजान खा की, जो अपनी खुदगर्जी के लिए बाप का खून भी कर डाले और बिना हाथ धोए खाने पर बैठ जाए।

और रायसाहब रणदमन सिंह अपने कर्कश जूतो की टापे बजाता हुआ टेली-फोन के कमरे मे दाखिल हुआ।

२५

भ्रष्टाचार-निर्मूलन कमेटी के अग्रलेख के बाद तो जोशी जी को स्पष्ट हो गया कि धनजय की नीति अब दूसरे रास्ते पर चलेगी। वह जो कुछ कर रहा है उसके पीछे उसका एक स्पष्ट विचार है, एक साफ इरादा है। बात व्यक्तिगत परिधि से उठकर अब सिद्धातो पर आ चली है। और दिन-ब-दिन पेचीदी होती जाएगी। उन्हे कुछ चिन्ता तो हुई पर इतनी नही कि उनकी शान्ति को भग करे। चिन्ता से ज्यादा चिढ हुई। इस समय प्रदेश मे उनकी सत्ता के खिलाफ आवाज नही उठती थी। कही से भी चुनौती नही थी। हा, मणिलालभाई के प्रयत्न चोरी-छिपे चल रहे थे पर उन्हे खडे होने के लिए कोई आधार नही मिला था, कोई जगह नही मिली थी कि जहा से वे वार कर सकें। अपने पुरुषार्थ से वे कुछ अधिक कर पाएगे ऐसा नही लगता था, पर परिस्थिति बिगड जाए तो वे जरूर उसका ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाएगे, इसमें कोई शक नही। परिस्थिति को बिगडने नही देगे इसका जाशी को आत्मविश्वास था। पर यह घर मे

ही काटा कैसे पैदा हो गया इसका उन्हे कुछ आश्चर्य हुआ। फिर भी धनजय जिस तरह का आदमी है उसके साथ घसड-फसड करके या जोर-जबरदस्ती मे कुछ नही हो सकता, यह वे जानते थे। उसे तो समझाने-बुझाने से या कोई बात पटाने से ही कुछ काम बनेगा। कुछ मामलो मे उसके मन की कर दो और बाकी मे तो फिर अपना चलता ही है ऐसा कुछ विचार उनके मन मे उठ रहा था।

पर इस खेल मे अब रणदमन कूद पडा था। 'युगान्तर' मे उसकी जो आरती उतारी गई थी वह भूलाए नही भूलता था। रात को नीद मे चौक उठता और जैसे सब समय कस को कृष्ण दीखता वैसे उसे 'युगान्तर' का वह गौरवर्ण दुबला-पतला सम्पादक दिखता, जो दिखने को तो गऊ जैसा सीधा-सादा और शील-सौजन्य वाला दिखता था पर भीतर से इस्पात की तरह कठोर लगता था। बडा खतरनाक आदमी है। तीस साल की नौकरी मे ऐसी मरम्मत कभी नही हुई और ऐसे आदमी से पाला नही पडा। उसे स्वप्न मे भी धनजय ही दिखता और 'युगान्तर' के बडे-बडे अक्षर, जो चौराहो पर लगे विज्ञापन की तरह दिखाई देते थे। और उसे लगता कि सारा पुलिस का महकमा और तीस साल की नौकरी के जमाने के तमाम दुश्मन 'युगान्तर' पढकर मन ही मन बडी गुदगुदी के साथ हस रहे होगे और उसकी खिल्ली उडा रहे होगे।

इसका सबूत स्वय धनजय को भी मिला। सुबह से ही न जाने कितने टेली-फोन आए, जान-पहचान के लोगो के और गैरपहचान के लोगो के भी, कि शाबाश रे बहादुर! मर्द आदमी है जिसने एक जल्लाद आततायी पर सीधा खुला वार किया है। पत्रकारिता इसे कहते है! अब युगान्तर अपनी पुरानी चाल पर आ रहा है। अब दुष्टो और पापियो की खैर नही।

पर धनजय को आश्चर्य तो तब हुआ जब एक सर्कल इन्स्पेक्टर अपनी खाकी वर्दी मे 'युगान्तर' के दफ्तर मे आया और जूते खटकाकर अटेशन होकर बडी अदब के साथ उसने धनजय को सैल्यूट फटकार दी। खुशी के मारे वह फटा पडता था। आया तो था वह किसीकी लडकी के ब्याह का निमन्त्रण-पत्र युगान्तर प्रेस मे छपाने, पर सब समय दबी जबान मे इधर-उधर देखकर उस अग्रलेख की ही तारीफ करता रहा। बेचारे की भाषा अपूरी पडती थी और अपने ब्रह्मानन्द को वह अपने हाव-भावो से ही अधिक व्यक्त कर रहा था। बोला, 'एडिटर साहब, ये कसाई है कसाई। कसाई तो फिर भी ठीक है जो अपने पेट के लिए गाय

काटता है। पर ये तो अपने मौज-शौक के लिए लडकियो के गले काटते है। आप एक-एक किस्सा सुनेगे तो दहल जाएगे। मैने भी उनके हाथ के नीचे तीन साल तक एक जिले मे काम किया है।' चलते-चलते उसने यह भी बताया कि यह शादी का निमन्त्रण-पत्र कप्तान साहब की बहिन की बच्ची का है, और धीरे से मुस्कराकर कहा कि उन्होने ही मुझे यह लेकर भेजा है और वे भी इस लेख से बहुत खुश है।

धनजय को इस अनपेक्षित मुलाकात से यह विदित हो गया कि कितना भयकर इन लोगो का आतक है, जैसे वे पाप और दुराचार के अड्डे हो। और वे अब जाकर बैठ गए शासन मे, वह भी भ्रष्टाचार का निर्मूलन करने के लिए। हे भगवान, इस देश का क्या होगा ?

धनजय यह समझ गया कि भ्रष्टाचार की बुनियादी लडाई मे उसके साथ जनता की तथा कई जिम्मेदार लोगो की गहरी सहानुभूति है। उनकी सद्भावना और हमदर्दी ही तो उसका बल है। वरना उसके पास कौन-सी शक्ति धरी है ? न पैसा है, न सत्ता है। राष्ट्रीय सग्राम के उसके जो साथी थे वे अब दूसरे खेमे मे जाकर बैठ गए है। अधिकाश तो मन ही मन अब भी उसका लोहा मानते है, उसकी इज्जत करते है, पर उनका स्वार्थ तो शासकीय दल के साथ सम्बद्ध था। सो उनकी जबान नही खुलती थी। वे अपने घरो मे चुपचाप बैठे थे, और कही धनजय मिल जाता तो अटपटा जाते, और हो सकता तो उसे टालते थे।

धनजय जानता था कि उसने रणदमन को ललकार कर अपने लिए खतरा मोल ले लिया है। पर खतरो और परिणामो के डर से उसने कभी कोई काम नही छोडा। यह उसका स्वभाव था। तीर साधने के पहले वह खूब सोचता कि वह अन्याय, असत्य और अराष्ट्रीयता पर ही वार कर रहा है या नही। पूर्ण आत्म-मथन के बाद जब एक बार उसका निर्णय हो जाता तो फिर वह किसी बात के लिए भी न रुकता। शुरू से ही वह शहीद बिस्मिल के कलाम से प्रभावित था

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।

असल मे लडना-लडाना और दो हाथ देना, दो हाथ लेना इसीमे उसे मजा आता था। हा, लडाई इन्साफ की हो, सत्य की हो, जनता के कल्याण की हो। यह लडाई ही उसका जीवन थी। वास्तव मे गत तीन-चार वर्षो मे उसे जो जिन्दगी बितानी पडी वह उसके स्वभाव के प्रतिकूल थी—वह मन्त्रियो के दरवाजो पर

घिघियाना-मिमियाना, कि इसकी जाच करो, इस शिकायत को रफा करो, इस सस्था की मदद करो, इस पीडित स्वातत्र्य सैनिक की सहायता करो आदि-आदि। बीच-बीच मे तो उसे लगता था कि वह सपादक की जगह शिकायत-कमेटी का सयोजक बन गया हो जिसका काम था अर्जिया इकट्ठी करना और महामन्त्रियो के पास भेजते रहना। वहा तो इतना बडा समन्दर था कि जहा कागज एक बार गया कि लौटने का नाम नही लेता था, ठीक उसी तरह कि आदमी परलोक गया तो फिर वहा से लौटने की बात ही नही उठती। इस जिन्दगी मे तो उसे घुटन-सी लग रही थी, बडी बेचैनी थी। सोचता कि यह भी खूब रही कि मन्त्रिपद तो औरो ने लिया, तेज उसका क्षीण होने लगा। बेवकूफी की भी हद है।

पर अब उसकी घुटन दूर होने लगी और उसे लगा कि वह स्वतत्र वातावरण मे फिर सास लेने लगा है। इसकी उसे सबसे बडी खुशी है। आत्मा को अपने आप ही उसने कैद मे डाल दिया था, उसे अब वह मुक्त पाने लगा। उसका आत्म-सम्मान और स्वाभिमान फिर लौट आया।

अब किसी बात का डर नही है। न शासन का, न पुलिस का, न रणदमन का। वे अपनी करनी से बाज नही आएगे यह वह जानता था। इसलिए भविष्य अब सुखासीन और शान्त नही रहेगा। अब काटो पर से चलना होगा, लोहे के चने चबाने होगे, आग से खेलना होगा। पर यही जीवन अब वास्तविक है, और पहले का जो जीवन था वह था मरण।

गिरधारी और रणदमन की आजकल खूब छनती थी। दो-चार दिन मे कही न कही बैठक होती—रात के समय डिनर पर और बोनलो की समीपता मे। वहा बडी-बडी योजनाए बनती जिसका एक ही मकसद रहता कि कैसे धनजय को युगान्तर से हटाकर अखबार अपने हाथ मे हथिया ले और उसके मगरूर सम्पादक को किसी क्रिमिनल मामले मे जेल की हवा खिलाए। पोलिटिकल मामले मे जेल भेजने का तो अब कोई मौका ही नही था, क्योकि अब स्वतन्त्रता मिल गई थी। मौका होता तब भी वे उसे राजबन्दी बनाने के लिए जेल नही भेजते क्योकि उसमे तो उसकी इज्जत बढती। यहा तो अब उसकी इज्जत उतारने का सवाल है। दोनों जानते थे कि जोशी जी का उत्साह धनजय के लिए ठडा पड गया है। उसपर कही से वार हुआ तो अब कम से कम जोशी जी का हाथ उसे बचाने के लिए नही उठेगा। बल्कि वे मन ही मन सन्तुष्ट ही होगे। वे भले ही प्रत्यक्ष वार करने मे

हाथ न बटाए, पर और कोई वार करे तो उसके मार्ग मे भी बाधा नही डालेगे। यह पोज़ीशन भी अपने लिए बुरी नही है।

'तुम बिलकुल बेफिक्र रहो गिरधारी।' रायसाहब रणदमन सिह ने अपने नशे से हिलते हुए हाथ को उठाकर कहा, 'मैने एक ऐसा शातिर सी० आई० डी० उसके पीछे लगा दिया है कि महीने भर के भीतर ही देखना हमे कैसा बढिया मसाला हाथ लगता है । फिर उसके बल पर चला लो जितने फौजदारी मामले चलाना चाहते हो। मैने दो बातो के बारे मे उसे विशेष ध्यान देने के लिए कहा है '

और फिर धीरे से उसके कान मे कहा, 'एक तो यह कि वह किसी औरत से तो फसा नही है, दूसरे उसने कितनी खयानत की है। बस, इन दो मामलो मे फसा कि उसकी मिट्टी बन गई, ऐसा ही समझो। बडा आया है नीति और सदाचार का पाठ पढाने ! गाधीजी मर गए तो इसीके कधो पर ही तो सारी जिम्मेदारी छोड गए है। इसका हौसला तो देखो ?'

गिरधारी की आखे भी आशा से चमक उठी। बोला, 'रायसाहब ! आप भी बडे गज़ब के आदमी है। खूब गहरा खेल खेल रहे हो यार ! आओ, इस बात पर एक आखरी पेग और मारो—हा हा ह !!'

२६

गिरधारी ने जगपुरा के राजा साहब को भडकाया, 'अपने पच्चास हजार रुपये के बारे मे क्या कर रहे है ?'

'मैने एडिटर साहब को लिखा तो है कि मुझे लडकी की शादी के लिए रकम की जरूरत है। पर वह रकम मैने जोशी जी के कहने से दी थी। वापस लेने के लिए ज़ोर दूगा तो वे नाराज हो जाएगे।' राजा साहब ने कहा।

'रकम शेयर्स मे दी थी कि कर्ज़ मे ?'

'कर्ज़ मे। मेरे पास प्रोनोट लिखा रखा है। शेयर्स मे एक लाख अलग लगाए है।'

'बस तो फिर, बात बिलकुल साफ है। जो कर्ज है वह कर्ज ही रहेगा और उसे वसूल करने का आपको पूरा हक है।'

'पर जोशी जी नाराज हो जाए तो ?'

'वे क्यो नाराज होगे ? किसीके व्यक्तिगत मामले मे भला वे क्यो पडेगे ? अगर आपको शक हो तो खुद जाकर क्यो नही पूछ लेते ?' गिरधारी ने सलाह दी। 'पर एक बात है। यदि मेरा कहना ठीक निकला तो आपको मेरी मोटर कपनी मे मदद करनी होगी।' राजा साहब केवल हस दिए।

राजा साहब दूसरे ही दिन जोशी जी के बगले पर पहुचे। जोशी जी ने पूछा, 'आपने एडिटर को पत्र लिखा था ?'

'लिखा तो था।'

'फिर क्या जवाब दिया ?'

'लिखित जवाब तो नही दिया, पर एक बार असेम्बली की लॉबी (बाहरी सभा) मे मिले थे तो कहते थे कि जोशी जी ने इसे शेयर्स मे बदलवा देने का वादा किया था। इसलिए आप उसके शेयर्स ले लीजिए।'

'फिर आपकी क्या इच्छा है ?'

'जोशी जी, मै अब शेयर्स तो नही खरीदना चाहता। मेरी हालत बडी खराब हो गई है। रियासत चली गई, आमदनी के जरिये सिकुड गए, और अभी घर मे पाच-छ विवाह सस्कार करने है। मुझे रकम मिल जाती तो अच्छा होता।'

'तो फिर आप अपनी रकम वसूल कर लीजिए।'

'वसूल कैसे करू ? उनके पास क्या धरा है। सारी रकम तो बिज़िनेस मे लगी हुई है ऐसा एडिटर साहब कहते थे। कैश तो कुछ भी नही है।'

'अब इसके बारे मे मै क्या सलाह दू ? आपको लडकी की शादी करनी है, रकम चाहिए तो आप जिस तरह चाहे वसूल कर ले। मै भला आपके व्यक्तिगत मामले मे क्यो पड ?'

राजा साहब को जोशी जी की बात से कुछ आश्चर्य हुआ क्योकि जब-जब युगान्तर वालो से कोई भी लेन-देन हुआ तब-तब हमेशा जोशी जी ही बीच मे पडे थे। अब वे कान झाड रहे है, इसीका मतलब है कि परिस्थिति बदल गई है। गिरधारी का इशारा गलत नही था। लेकिन इसकी और जाच कर लेना ही उचित है। बोले, 'जोशी जी, अखबार वालो की रकम तो जब वसूल होगी तब होगी।

होती है या नही इसमे भी शक है। पर लडकी की शादी तो दो महीने पर आ गई। मेरी जगल की रकम अभी गवर्नमेन्ट के पास अटकी पडी है। वही जल्दी मिल जाती तो लडकी के हाथ पीले करते समय रौनक बनी रहती।'

'कितनी रकम है?'

'यही पौने दो लाख रुपये।'

जोशी जी सोच-विचार मे पड गए। याद आया कि इसी रकम के आधार पर ही तो उन्होने धनजय को प्रोनोट लिखने के लिए कहा था। इस रकम को देने के पहले ही तो वे प्रोनोट वापस कराना चाहते थे। पर इस समय वे धनजय पर और अधिक कृपा करने के पक्ष मे नही थे। बोले, 'मुझे दिखवाना पडेगा कि फाइल कहा अटकी पडी है। फॉरेस्ट डिपार्टमेन्ट मे है कि फाइनेन्स मे। पुराना मामला है।'

राजा साहब समझ गए कि बात जोशी जी के दिमाग मे अटकी पडी है। वे उनके दिमाग का दरवाजा खोलने की चाबी ढूढने लगे। कुछ न सूझा तो मुह से इतना ही निकला, ''युगान्तर' की रकम का इशारा तो गिरधारी भैया ने ही किया था, पर इसमे देर होगी। शायद कोर्ट-कचहरी भी जाना पडे। पर जगल वाली रकम का कुछ करा देते तो बडी दया हो जाती। राजकुमारी की शादी न होती तो मै जोर नही देता।' राजा साहब ने मिमियाते हुए कहा।

'गिरधारी से आपकी मुलाकात हो गई? क्या कह रहा था?'

'कुछ मोटर-ऊटर का काम करना चाहते है।'

'मै तो जानता नही, पर कहते है, उसमे फायदा अच्छा है। उसने सरकारी अफसरो से जमा-जमू कर खदान के इलाके मे एक मोनोपली सर्विस कर ली है।'

'जी हा, अखबार से तो मोटर कपनी अच्छी।' राजा साहब बोले और नमस्कार कर उठ खडे हुए। दोनो एक दूसरे की तरफ देखकर बडे प्रेम से हसे। राजा साहब की समझ मे बात आ गई।

दूसरे दिन ही गिरधारी ने मामाजी को आकर सूचना दे दी कि राजा साहब मोटर कपनी मे पचास हजार लगाने के लिए तैयार है। बडे भले आदमी है। बेचारे तकलीफ मे है, लडकी की शादी का प्रबन्ध हो जाता तो इज्ज़त बनी रहती। अब आपके सिवा उनका कौन है?

तीन सप्ताह के भीतर ही राजा साहब को पौने दो लाख की रकम मिल गई।

पर गिरधारी की कपनी के नाम पचास हजार का चैक पहले लिखना पडा तभी वह रकम उनके हाथ मे पडी। और करीब-करीब उसी समय धनजय के हाथ मे राजा की तरफ से यह नोटिस पडा कि इक्कीस दिन के भीतर ही आप यदि हमारा पचास हजार रुपये का कर्ज अदा नही करेगे तो यह माना जाएगा कि आपकी कम्पनी अपने ऋण नही चुका सकती इसलिए उसके लिक्विडेशन (ऋण-चुकती) की कार्रवाई क्यो न शुरू की जाए ?

२७

नोटिस आते ही धनजय ने अपनी पत्नी से कहा, 'लो गीता, युद्ध के नगाडे तो बजने लगे। ऐसा दिखता है, काफी ठननेवाली है।'

'अब जो होगा सो होगा। पर अन्त तक हमे झगडा टालने की कोशिश करनी चाहिए और यह देख लेना चाहिए कि हमारी तरफ कोई नैतिक दोष तो नही आता है। उसके बाद लडाई ठनती है, तो ठनने दो। जो होगा सो देखा जाएगा।'

धनजय को दो-एक दिन कानूनी सलाह लेने मे लग गए। इसी बीच उसे पता लगा कि उसकी कपनी का एक क्लर्क एकाउण्ट्स विभाग के रजिस्टर चुरा ले गया। धनजय का माथा ठनका। इस प्रकार की यह पहली घटना थी जो उसके कार्यालय मे हुई थी। पर वह समझ गया कि यह पुलिस की करतूत है। उसके कान पर यह भनक आ ही गई थी कि उसकी कपनी के खिलाफ सी० आई० डी० काफी सर-गर्मी से काम कर रही है। उसने अपने सभी कर्मचारियो को आगाह कर दिया कि वे सतर्क रहे। दुश्मन की कार्रवाइया शुरू हो गई है।

राजा साहब जगपुरा के नोटिस का जवाब तो उसने अपने कानूनी सलाह-कार से दिला दिया कि आप जानते है कि यह कर्ज़ किसके कहने से कपनी को दिया गया था। आप यह भी जानते है कि आपकी और मेरी पहले कोई जान-पहचान नही थी, और वह हुई तो इस प्रदेश के एक अत्यन्त जिम्मेदार और प्रभावशाली व्यक्ति के कारण हुई। आप यह भी जानते है, जैसा कि मैने आपको स्वय बताया था, कि यह रकम अमानत के रूप मे दी गई थी जो आगे चलकर शेयर्स मे तबदील

की जाने वाली थी, हालाकि यह सच है कि हमने उसके लिए प्रोनोट लिखकर दिया है।

मै फिलहाल उन प्रभावशाली व्यक्ति का नाम नही लेना चाहता क्योकि उससे सार्वजनिक जीवन का अहित होगा पर आप उन्हे अच्छी तरह जानते है, और यह भी जानते है कि उनके अभाव मे आपका-मेरा कौडी भर का भी व्यवहार-सम्बन्ध नही था।

फिर भी चूकि उस प्रोनोट पर हमारे दस्तखत है, हम उसके नैतिक उत्तर-दायित्व को मानते है और आपको सूचित करना चाहते है कि यदि आप सारी पृष्ठ-भूमि और बातो को भूलकर रकम वसूल करने के लिए जोर ही दे तो हम आपकी रकम धीरे-धीरे किश्तो मे अदा कर देगे क्योकि रकम इस समय कपनी के बिजिनेस मे लगी है, और हमारे पास कैश के रूप मे नही है।

आप अच्छी तरह जानते है कि यह रकम आपको वापस करने की नही थी, पर आप बदली हुई परिस्थिति का लाभ उठाकर किसीकी कहा-सुनी मे आकर यह रकम वसूल करना चाहते है जो कि सर्वथा अनुचित है। फिर भी, जैसा कि हमने ऊपर कहा है, चूकि हमारे दस्तखत है, हम अपनी जिम्मेदारी से मुह नही मोडना चाहते और धीरे-धीरे समुचित किश्तो मे आपकी रकम अदा कर देगे।

इसके बावजूद आप यदि हमारी कपनी के लिक्विडेशन (ऋण-चुकती) की कार्र-वाई करेगे तथा कपनी की साख और प्रतिष्ठा पर धक्का लगाएगे तो उसकी जिम्मे-दारी पूरी तरह आपके कन्धो पर होगी और उसके हरजाने के देनदार भी आप ही रहेगे। हम यह आपको स्पष्टता और दृढता से बतला देना चाहते है कि राजनीतिक हथकण्डो के कारण की जाने वाली चालबाजियो से हम अपनी कपनी तथा उसके समाचारपत्र की सुरक्षा के लिए जी-जान से डटे रहेगे।

अन्त मे हम आपको तथा आपके सलाहकारो से यह निवेदन करना चाहते है कि व्यक्तिगत झगडो के निपटाने के ये मार्ग अशोभनीय है, जिनसे दोनो पक्षो का नुकसान होने के सिवा और कुछ हाथ लगने वाला नही है।

इस नोटिस का यह परिणाम हुआ कि कपनी को 'लिक्विडेशन' मे ले जाने की कार्रवाई तो रद्द कर दी गई, पर पचास हजार की वसूली के लिए राजा साहब ने दीवानी दावा दायर कर दिया।

धनजय को कुछ राहत मिली। दीवानी दावे मे वक्त लगता है, वक्त मिलता

भी है। लिक्विडेशन की कार्रवाई तो काफी तेजी से होती है। पता नही यह परिवर्तन कैसे हुआ। शायद चुनाव नजदीक आ रहे थे इसलिए राजा साहब के प्रभावशाली सलाहकारो ने सोचा होगा कि अभी कीचड-फेंक मचाने मे खतरा है। जो भी हो, सकट तुरत आने वाला था, वह तो टल गया।

इस बीच देश के राजनीतिक जीवन मे एक ऐसी घटना हो गई जिसका देशव्यापी असर पडा। अखिल भारतीय राष्ट्रीय दल के अध्यक्ष को, जिनका विधिवत् चुनाव हुआ था, प्रधान मन्त्री ने जोर-जबर्दस्ती करके इस्तीफा देने को मजबूर किया। वे अध्यक्ष तपस्वी थे, साधु प्रकृति के त्यागी व्यक्ति थे, उनके साथ ऐसी ज्यादती क्यो की गई, इसकी प्रतिक्रिया दूर-दूर तक हुई। उसका यही कारण था कि चुनाव आ रहे थे और प्रधान मन्त्री सभी सूत्र अपने हाथ मे रखना चाहते थे। पर जिस तरीके से यह किया गया उसमे न्याय या नीतिमत्ता नही थी, केवल राजनीति के दाव-पेच थे। उसमे हिसा की भावना थी। जनता को काफी दुख हुआ पर प्रधान मन्त्री के असाधारण व्यक्तित्व के कारण उसकी प्रतिक्रिया जितनी भयकर होनी चाहिए थी उतनी नही हो पाई। गाधी जी नही थे, और उनके मार्ग पर चलनेवाले लौह पुरुष की मृत्यु हो गई थी। राष्ट्रीय दल के सर्वेसर्वा केवल प्रधान मन्त्री बचे थे। सारी सत्ता एकमात्र उनके ही व्यक्तित्व मे समाई थी। उस दल के लोग खामोशी से इसे बर्दाश्त कर गए। यो बर्दाश्त करने के पीछे कोई ऊचा आदर्श नही था, महज व्यावहारिकता और दुनियादारी थी। दूसरी पार्टी के लोगो को इसमे बोलने का कोई कारण नही था क्योकि यह शासकीय पार्टी का आन्तरिक मामला था। समाचारपत्रो मे भी यही रुख लिया गया। राष्ट्रीय दल के समर्थक समाचारपत्र उन्ही कारणो से चुप रहे जिनसे राष्ट्रीय दल के लोग चुप थे। औरो ने इसपर विशेष ध्यान नही दिया।

पर 'युगान्तर' को यह बात अखर गई। उसने एक कडा अग्रलेख लिखा—'नितान्त अशोभनीय'। उसमे प्रधानमन्त्री के रुख की तीव्र आलोचना की गई थी और कहा गया था कि जो सस्था सत्य और अहिसा को अपना मूलमत्र मानती है उसमे यह हिंसावृत्ति क्यो दिखाई गई जो अध्यक्ष के चुनाव के काण्ड मे बरती गई? परिवर्तन कराना ही था तो अध्यक्ष महोदय को समझा-बुझा कर, उनकी रजामन्दी से, प्रतिष्ठित ढग से कराना चाहिए था। आखिर वे भी तो राष्ट्रीय जीवन के सधे हुए तपस्वी सेनानी है। यदि उनका इस्तीफा देश के हित मे आवश्यक

था तो वे स्वय-स्वेच्छा से उसे दे देते । फिर उनको असहयोग की धमकी देकर, उनके सिरपर ज़बर्दस्ती का ठेगा चढाकर यह क्यो किया गया ? प्रधान मत्री हमारे देश के महापुरुष है, पर अपने तगदिल सलाहकारो के प्रभाव मे आकर इस प्रकार की कार्रवाई करना उनकी श्रेष्ठता और अतर्राष्ट्रीय ख्याति के लिए नितात अशोभनीय है। हिसा का दुश्चक्र बुरा होता है और वह प्रतिहिंसा को जन्म देता है। इस घटना के कारण हमे राष्ट्रीय दल के भविष्य के बारे मे चिन्ता होने लगती है। क्योकि हिसा असत्य है, हिंसा अन्याय है, और अन्याय की कोई भी कृति हजम नही हो सकती, भले ही उसका कर्ता हमारे लोकप्रिय प्रधान मन्त्री जैसा श्रेष्ठ व्यक्ति ही क्यो न हो ?

मनमोहन-काण्ड के बाद 'युगान्तर' की नीति का जो स्वरूप प्रस्फुटित हुआ था उसमे इस प्रकार का अग्रलेख आ जाना एक साधारण घटना थी। पर प्रदेश के राजनीतिक यत्र पर उसकी घोर प्रतिक्रियाए हुई। एक तो यही कि जोशी जी के प्रतिस्पर्धी मणिलालभाई ने उस लेख की एक कटिंग प्रधानमन्त्री के पास भेजी, इस शिकायत के साथ कि जोशी जी पूर्व अध्यक्ष के पक्ष के व्यक्ति है, और उनका अखबार 'युगान्तर' जिसमे उनका आधा हिस्सा है, आपके खिलाफ आग उगल रहा है। इसके अलावा उनके खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोप आदि का एक लम्बा चिट्ठा भी भेजा गया, और कुछ देर के लिए लगा कि जोशी जी का आसन डावाडोल हो उठा है।

जोशी जी सफाई देने के लिए प्रधान मन्त्री के पास बुलाए गए। 'युगान्तर' के मामले मे तो उसके सपादक की गवाही ही सबसे मुख्य चीज थी। उन्हे इसकी चिन्ता पड गई। उन्होने फोन पर फोन लगाकर धनजय को हवाई जहाज से राजधानी बुलाया और बडे प्यार से कहा, 'देखो भाई धनजय, पत्र की नीति को लेकर तो आपमे और हममे मतभेद चल रहा है। आप स्वतत्र नीति अख्त्यार कर रहे है और मै पार्टी मे बधा हू। जब आप हमारी पार्टी का समर्थन करते थे, हमने आपकी मदद की। अब आप स्वतत्र हो गए है तो आपका-हमारा कोई सम्बन्ध नही।'

'आपका अठन्नी का हिस्सा ?'

'वह भी गया। उसका आप जो चाहे सो कीजिए। आज से हम आपको एक पाई के देनदार नही और आप हमे एक पाई के देनदार नही। समझे ? अब आप जाने और आपका काम जाने।'

'ठीक है जोशी जी, इसमे तो कोई एतराज की बात नही है। पर यह बात बिलकुल पक्की है न ?'

'हा, हा, बिलकुल पक्की। वल्कि आपको यदि प्रधान मन्त्री या उनकी तरफ से कोई व्यक्ति पूछे तो आप स्पष्ट कह दे कि जोशी जी का 'युगान्तर' से रत्ती भर भी सम्बन्ध नही है। उसीके बारे मे यह 'इनक्वायरी' हो रही है और मै आपसे वचन चाहता हू कि आप यही कहेगे। वह मणिलालभाई बडा तूफान मचा रहा है।'

'मै वचन देता हू जोशी जी, आप बिलकुल निश्चिन्त रहे।'

जोशी जी आश्वस्त हुए। उन्हे पूरा भरोसा था कि धनजय जो वचन देगा उसे अन्त तक निबाहेगा।

धनजय जानता था कि मणिलालभाई मुख्य मन्त्री बनने की जोरो से कोशिश कर रहा है। पर उसके चरित्र को देखकर तो उसे भरोसा था कि वह जोशी जी से सौगुना बदतर रहेगा। जोशी जी के परिजनो का स्वार्थ नही रहा तो वे लोक-कल्याण के कार्य भी करते है, नई-नई सस्थाओ का निर्माण करते है। पर मणि-लालभाई के राज मे तो हर काम की कीमत लगेगी, हर योजना पर नीलाम की बोली बोली जाएगी। वह तो बडी भयकर बात होगी।

धनजय को बडी प्रसन्नता हुई कि 'युगान्तर' का मामला ठीक तरह से सुलझ गया। वह भीतर ही भीतर यह सोचकर मुसकराया कि जब मुख्य मन्त्रित्व-पद और अखबार से उन्हे एक चुनना पडा तो स्वाभाविकत उन्होने मन्त्रित्व-पद को चुना और अखबार को तिलाजलि दे डाली। उसका कारण कोई भी हो, मुझे तो मुक्ति मिली। इसीमे वह खुश था।

वह तीन दिन तक राजधानी मे इसीलिए रुका रहा कि उसकी तलाश होगी तब उसे जोशी जी को दिए गए वचन के अनुसार बात करनी होगी।

पर सुना कि जोशी जी ने प्रधान मन्त्री के सामने सपूर्ण वफादारी और स्वामि-निष्ठा का पत्र समर्पित कर दिया और यह स्पष्ट आश्वासन दे दिया कि आप जैसा कहेगे वही करूगा। अध्यक्ष की पार्टी के लोगो से कोई ताल्लुक नही रखूगा और 'युगान्तर' पत्र से भी नही।

प्रधान मन्त्री उदार हृदय व्यक्ति थे। पल मे नाराज तो पल मे खुश हुआ करते थे। बच्चो जैसी सरलता उनमे थी। वे राज़ी हो गए। जोशी जी का मन्त्रि-पद पुन एक सत्र के लिए सुरक्षित हो गया। मणिलालभाई और उनकी सेना फिर मात खाकर अपना मुह लटकाकर राजधानी से लौट आई।

धनजय के तीन-चार महीने बडी शाति से बीते। सब लोग चुनाव की धीगा-धीगी मे लगे थे, और गिरधारी, रणदमन, डॉ० छदामीलाल सबका ध्यान उसी तरफ बटा था। चुनाव समाप्त हुआ, जोशी जी अपने दल के साथ बहुमत से जीते और वे ही पुन मुख्य मन्त्री बने। जब उनका आसन पुन पाच वर्ष के लिए दृढ हो गया तो गिरधारी और रणदमन सिह की मोटरे शहर की सडको पर फिर ठाठ से दौडने लगी। रमजान खा की कार्रवाइयो मे फिर जोश आना शुरू हुआ।

गिरधारी को जब मालूम हुआ कि मामाजी राजधानी मे 'युगान्तर' पर तिलाजलि छोड आए है तो वह उनपर बहुत जोर से भडका। 'आपको इतनी जल्दी क्या पडी थी ? मणिलालभाई क्या कर लेता जो उसकी धौस मे आकर आपने यह काम कर डाला ? धनजय के पास आपकी क्या लिखा-पढी है जो कोई बात सबूत हो जाती ? आप इतने बुजुर्ग और अनुभवी है, न जाने ऐसी गलती कैसे कर डाली ?'

जोशी जी को लगा कि हा, शायद कुछ गलती तो हो गई है। उस समय मुख्य मन्त्रिपद को खतरा था इसलिए उन्होने 'युगान्तर' से हाथ धो लिए थे। पर आज जब उनका आसन फिर दृढ हो गया तो गिरधारी और रणदमन के दबाव के कारण उन्हे अपने निर्णय पर पछतावा होने लगा और वे इस चाल म मात खा गए, ऐसी उनकी धारणा हो गई।

गिरधारी ने एक दाव और खेला। राजा साहब जगपुरा से फाइनेन्स डिपार्टमेण्ट मे एक दरख्वास्त दिला दी कि मैने युगान्तर कपनी पर पचास हजार का दावा किया है। मुझे उसके हिसाब मे गडबड दिखाई देती है, लिहाज़ा उसकी जाच के लिए कम्पनीज ऐक्ट के मुताबिक एक इन्स्पेक्टर बैठाया जाए।

गिरधारी और रणदमन सिह की दौडधूप के कारण धनजय को बिना नोटिस दिए इन्स्पेक्टर बैठ गया। वह भी ऐसा जो 'युगान्तर' के प्रतिस्पर्धी समाचारपत्र का ऑडिटर था, जो उसे नीचा दिखाना चाहता था।

हिसाब के रजिस्टर तो चोरी चले ही गए थे। धनजय ने उसकी शिकायत उसी समय पुलिस मे कर दी थी। पर पुलिस ने रजिस्टरो की तलाश मे कोई मदद नही की। चोरी गए हुए रजिस्टरो मे राजा साहब जगपुरा के लेन-देन के हिसाब वाले रजिस्टर भी थे। बाद मे पता चला कि जिस क्लर्क ने चोरी की थी उसे सरकारी छापेखाने मे दूने तनख्वाह पर नौकरी दे दी गई।

ऑडिटरो ने जाच की रिपोर्ट देने मे तीन महीने लिए। गायब रजिस्टरो का

उल्लेख तो उन्होने किया ही। पर साथ ही यह लिखा कि तीन वर्ष की अवधि के लिए 'युगान्तर' ने अपनी बिक्री अधिक बताने के लिए कुछ हिसाब इस तरीके से रखे जिनके कारण पैसे की खयानत तो नही हुई पर बैलेन्स शीट मे ऐसे आकडे आ गए जिनके कारण आमद और खर्च के आकडे फूले हुए दिखते है। इन आकडो को दोनो ओर से निकाल देने से मूल स्थिति मे कोई फर्क नही पडता। यह केवल पत्र के लिए अधिक विज्ञापन प्राप्त करने की गरज से किया गया था। पर इसके कारण हिसाब मे एक पाई की भी गडबड नही है।

यह ऑडिटर की रिपोर्ट सरकार ने एडवोकेट-जनरल के पास भेजी। ये वही महाशय थे जिनको इस पद पर बैठालने मे धनजय का हाथ था। वे पहले जोशी जी के कट्टर दुश्मन थे। पर उम्र बढ जाने के बाद हाईकोर्ट की जजी से निकाले गए थे। बेकार थे। किसी तरह धनजय और मुख्य मत्री की दोस्ती का लाभ उठाकर, उनकी सिफारिश से एडवोकेट-जनरल बन गए। गिरधारी ने पासे फेके और एडवोकेट-जनरल को पता चल गया कि धनजय मे और जोशी जी मे खटपट हो गई है। वे न तो न्याय के दोस्त थे न धनजय के, वे तो ओहदे के दोस्त थे। सो उन्होने भी धनजय या युगान्तर कपनी को बिना नोटिस दिए मुकदमा दायर करने की सलाह सरकार को दे डाली।

गिरधारी खुशी से नाच उठा और रायसाहब रणदमन सिंह के यहा पेडे बाटे गए। धनजय के गले की फासी अब तय हो गई और वह फन्दा अब धीरे-धीरे उसके गले पर जकडेगा। अब बोलो बच्चू, कहा जाओगे ? और करो पुलिस से छेडखानी और लिख लो भ्रष्टाचार कमेटी के खिलाफ लेख !

पुलिस विभाग मे धनजय के हितैषी दोस्त भी थे। उसी पुलिस कप्तान के जरिये उसे मालूम हो गया कि चार-पाच दिन के भीतर ही युगान्तर प्रेस तथा धनजय के मकान की तलाशी ली जाएगी और उसे तथा उसके डायरेक्टरो मे से किसी प्रमुख व्यक्ति को, शायद चेयरमैन को, कपनी के झूठे हिसाब रखने के आरोप मे गिरफ्तार कर लिया जाएगा। वक्त सिर्फ चार-पाच दिन का है। होशियार हो जाइए !

धनजय ने कहा—भगवान तेरी मरजी। अभी और अग्नि-परीक्षा बाकी है ! खैर, यह भी सही !

२८

फौजदारी मामले मे गिरफ्तारी होगी, इस समानार पर तो पहले धनजय का विश्वास नही बैठा। क्या ऐसा भी हो सकता हे ? अपने व्यक्तिगत झगडो को निपटाने के लिए सरकारी मशीनरी का उपयोग, और वह भी इस भद्दे और लाछनीय तरीके से ?

उसने इतना तो सुना था कि सत्तात्मक राजनीति बडी निष्ठुर होती है, और एक पक्ष के लोग ही सत्ता पाने की हाथापाई मे, एक दूसरे का गला घोटने मे लिहाज नही करते। फिर भले ही उनका प्रतिपक्षी स्वतत्रता-सग्राम मे उनका सह सैनिक रहा हो, और देश के लिए उसने कुर्बानिया की हो। तब की बात तब और अब की बात अब।

पर राजनीति का उससे रचमात्र भी सम्बन्ध नही था। उसने जोशी जी को कभी मन्त्रिपद से हटाने का प्रयत्न नही किया था, और न वह राजनीतिक क्षेत्र मे उनका किसी भी प्रकार का प्रतिस्पर्धी ही था। जब-जब मणिलालभाई ने उसे अपनी ओर खीचने की कोशिश की तब-तब वह उससे दूर भागता रहा। वह अवसरवादी नही था, और जो मार्ग उसे सही दिखाता उसपर वह सीधा चलता। न किसीके लेने मे रहता, न किसीके देने मे।

पर जो मार्ग उसे सीधा और स्पष्ट दिखाई देता, न्याय और औचित्य का मार्ग दिखता तो फिर वह उससे एक इच भी नही डिगता था, न इधर न उधर। लोभ और भय दोनो ही उसे अपने निर्धारित पथ से विचलित नही कर पाते। वह जानता था कि स्वातत्र्योत्तर भारत मे यही दो राक्षस, लोभ और भय, राहु और केतु की तरह जनता के नेता और कार्यकर्ताओ को ग्रस रहे है जिससे उनका तेज और सत्य क्षीण होता जा रहा है। गाधीजी ने कितनी साधना और तपस्या करके भारतीय जनता को, मिट्टी के पुतलो को, नई जान डालकर इस तेज और सत्व से सचारित किया था जिसके कारण घर-घर मे, गाव-गाव मे वीर पुत्रो और वीर नेताओ का निर्माण हुआ था। पर सत्ता के हस्तातर के बाद और गाधीजी के अवसान के बाद ये वीर पुत्र और वीर नेता सत्ता-कामिनी की विलास-क्रीडा मे उलझ गए और अपने समस्त तप और पुण्य को क्षीण करने लगे। पदो, अधिकारो और सुविधाओ का लोभ, और एक बार उन्हे पाने के बाद उनके छुटने का भय, बस ये दो प्रधान

प्रवृत्तिया ही देश मे उभरकर सामने आ गई। सत्य, सेवा, न्याय, अहिसा और प्रेम के तत्व कमजोर पड गए, केवल नाम भर रह गए। गाधी केवल मौखिक श्रद्धा और आदर की वस्तु रह गया। आचार और विचार मे अ-गाधीत्व सिर मे पैर तक भर गया। इस परिवर्तन के पीछे एक तत्व भी प्रतिपादित किया गया कि स्वतत्रता-प्राप्ति के पहले गाधी बिलकुल ठीक था, पर स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद देश का नव निर्माण करने मे हमे आधुनिक विज्ञान और जीवन-प्रणालियो को अपनाना होगा। उसके बिना हम अमेरिका, इग्लैंड और रूस की बराबरी कैसे करेगे? अर्वाचीन जगत की आवश्यकताओ के लिए गाधी उतने काम का नही है।

जब स्वय गाधी की उपयोगिता ही कम हो गई तब स्वाभाविकत उसके स्थापित किए हुए मूल्यो का भी महत्व कम हो गया। सयम और आत्मनियत्रण ढीला हो गया, त्याग और सेवा की वृत्ति क्षीण हो गई, नीतिमत्ता और चरित्र के मूल्यो का अवसान होने लगा, और देश का सचालन एक नये, अलग मार्ग पर होने लगा। सादगी और मितव्ययिता की जगह भडकीलापन, दिखावा और फिजूल-खर्ची आ गई। स्वतत्र भारत के मन्त्रियो को, राजपुरुषो को शान-शौकत से रहना चाहिए, इतने बडे मुल्क की इज्जत के मुताबिक उनका रहन-सहन चाहिए। इस दृष्टिकोण से बडे-बडे बगले, कालीन, फर्नीचर, जगमग-जगमग करती मोटरे, शानदार प्रीतिभोज और पार्टिया, सब कुछ शाही ढग से होना चाहिए। आदमी फिसलन पर बहुत जल्दी गिरता है और जब इस फिसलन के पीछे आधुनिक जगत की आवश्यकता के रूप मे एक तात्विक भूमिका दे दी जाए तो फिर उस अध पतन की गति का क्या पूछना है?

जो आचार-विचार दिल्ली मे उठा, वह सारे देश मे फैल गया। गाधीजी के नेतृत्व के ज़माने की मान्यताए तेजी से बदलने लगी, ऊपर का जामामात्र वही रहा, पर भीतर का स्वरूप समूचा बदल गया। गाधी-कालीन जोशी जी तथा उसके अनन्तर काल के जोशी जी मे जमीन-आसमान का फर्क पड गया। जब सभी बडे-बडे नेता उस नये मार्ग पर जा रहे है तो मैने ही क्या ठेका लिया है कि मै पुराने मार्ग का अनुसरण करू? यही विचार उनके मन मे उठा। जो सबकी गति होगी वह मेरी होगी। आखिर एक ही जहाज मे तो सब बैठे है। जहा सब पहुचेगे वहा मै भी पहुचूगा।

धनजय ही एक बेवकूफ था जो पुराने मार्ग से चिपका बैठा था, और नये मार्ग

पर चलने वालो के रास्ते मे अपशकुन के रूप मे खडा था । आख का यह काटा निकले बगैर राजमार्ग साफ नही होगा । उसी काटे को हटाने के लिए जोशी जी के कृपाछत्र के नीचे गिरधारी और रायसाहब रणदमन सिंह जी-जान से जुट पडे थे ।

उस रात्रिभर धनजय और गीता दोनो ही अपने बिस्तर पर छटपटाते रहे । नही, बात इतनी दूर तक नही जा सकती । जोशी जी कभी इतने नीचे नही उतरेंगे कि एक जमाने के अपने सहयोगी और भागीदार को मतभेदो के कारण, क्रिमिनल मुकदमे मे फसाकर जेल की हवा खिलाने का षड्यन्त्र चलने देंगे ? जोशी जी वैसे उदार हृदय के व्यक्ति है, पुराने मस्कारो और परम्पराओ को मानने वाले है, वे कम से कम ऐसा नही होने देंगे । हा, गिरधारी और रणदमन सिह के लिए सब सभव है । जिस रोज़ रणदमन सिंह पर 'युगान्तर' ने सीधा आक्रमण किया था उसी रात को गुण्डो के डण्डे से उसका सिर कैसे नही फटा इसीका धनजय को आश्चर्य था । पर जोशी जी के रहते इतनी मनमानी नही चलेगी ऐसी उसकी प्रामाणिक आस्था थी ।

क्योकि आखिर लडाई किस बात की थी ? जोशी जी से जो मतभेद चल रहा था, वह दिल्ली मे तो तय हो ही गया था । जोशी जी के सामने एक पेच था । 'युगान्तर' का सम्बन्ध उनके मन्त्रिपद के मार्ग मे कण्टक बना था । वह उन्होने निकाल डाला और धनजय को छुट्टी दे दी थी । वह अब पूरी तरह स्वतत्र था । मन्त्रिपद रहा तो दस 'युगान्तर' निकाल लेगे, ऐसी उनकी धारणा थी । वे भी खुश थे, धनजय भी खुश था ।

और उसी खुशी मे घर लौटकर उसने एक सम्पादकीय अग्रलेख लिख डाला था, 'आत्मनिवेदन', जिसपर उसने अपने हस्ताक्षर किए थे । उसमे उसने अत्यन्त प्राजलता और प्रामाणिकता से स्वीकार किया था कि कुछ वैधानिक एव सगठनात्मक कारणो से 'युगान्तर' की व्यवस्था ऐसी दिखाई देती थी कि लोगो की दृष्टि मे वह एक पक्ष-विशेष का, और उस पक्ष के भीतर ही एक व्यक्ति-विशेष का मुखपत्र बन गया है, और वह निर्भीक स्वतत्र वृत्ति का समाचारपत्र नही है । इसकी सफाई मे उसने जो लिखा था उसका आशय इस प्रकार था

हम स्वीकार करते है कि जनता की इस प्रकार की धारणा हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है । हमारा यह प्रामाणिक मत था कि स्वातत्र्योत्तर काल मे, जब देश

के सामने नव निर्माण का महान प्रश्न था, और हमे स्वस्थ प्रजातान्त्रिक परम्पराओ की स्थापना करनी थी, एक विधायक वृत्ति के जिम्मेदार समाचारपत्र की आवश्यकता थी जो राष्ट्रीय सरकार की इन प्रवृत्तियो का दृढता से समर्थन करे। प्रत्येक महान क्रान्ति के बाद एक प्रतिक्रान्ति होती है, जो प्रगति के मार्ग मे रोडा अटकाती है, उसे विफल बनाने का प्रयत्न करती है, तथा समाज को ध्वस और अराजकता की ओर ले जाने का प्रयत्न करती हे। इस प्रतिक्रान्ति मे वही तत्व मुख्यत कार्य करते है जो पुरानी शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत सशक्त थे, सबल थे, और जो अपनी सारी शक्ति राष्ट्र-द्रोह के तत्वो से तथा ब्रिटिश शासको के समर्थन से पाया करते थे। इन प्रतिक्रान्तिकारी तत्वो से खुलकर लडना और उससे समाज तथा शासन को बचाना हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य था, ऐसी हमारी भावना थी और उसीके मुताबिक 'युगान्तर' की नीति और कार्य रहा।

पर जैसे-जैसे इन विध्वसक और अराजक तत्वो का दमन होता गया वैसे-वैसे शासकीय क्षेत्र मे भी शिथिलता, कर्तव्यविमुखता और आरामतलबी तथा भोगवृत्ति बढने लगी। जिन ऊचे आदर्शो और मूल्यो के लिए 'युगान्तर' ने एक पक्ष-विशेष और व्यक्ति-विशेष को अपनी सेवाए अर्पित की थी उन आदर्शो और मूल्यो का अवमान होने लगा और समस्त शासन के वातावरण मे अनैतिकता, अन्याय और भ्रष्टाचार के तत्व प्रबल होने लगे।

इन तत्वो के साथ 'युगान्तर' की कोई सहानुभूति नही थी, और न उनके प्रति उसकी कोई जिम्मेदारी थी। इन तत्वो का निर्मूलन हो, यही उसका प्राथमिक कर्तव्य बन गया। और इसके लिए यह आवश्यक था कि 'युगान्तर' की नीति स्वतत्र हो, पक्षातीत हो।

हमे प्रसन्नता है कि आज अपनी नीति की पुनर्घोषणा करने का समय आ गया है और वह नीति यह है कि आज से 'युगान्तर' किसी पक्ष या व्यक्ति का मुखपत्र न रहकर केवल जनता का मुखपत्र ही रहेगा, उसीके सुख-दुख का, हित-सम्बन्धो का प्रहरी बनेगा। वह प्रजातान्त्रिक मूल्यो का कट्टर उपासक है और जनता की प्रभुसत्ता को सर्वोपरि मानता है। जनता का कल्याण और मगल करने वाली प्रत्येक कृति और प्रवृत्ति का वह प्रबल समर्थक रहेगा, इस कल्याण और मागल्य के मार्ग मे विघ्न बनने वाली प्रवृत्तियो का वह शत्रु रहेगा। सत्य, न्याय और समता उसके मार्ग के दीपस्तभ रहेगे और देश की सास्कृतिक, आध्यात्मिक तथा

सर्वांगीण उन्नति का वह अखण्ड पुजारी रहेगा। प्रामाणिकता और निर्भीकता से वह अपना मार्ग अनुसरण करेगा, व्यक्तिगत राग-द्वेष या अहकार से रहित होकर वह व्यक्तियो का शत्रु या मित्र नही होगा, सिद्धान्तो का होगा। जिन सिद्धान्तो की सेवा का उसने व्रत लिया है, उनका परिपालन करने वालो का वह मित्र है, उनकी हत्या करने वालो का वह अमित्र है। आज से वह अपनी सपूर्ण स्वतत्र नीति की घोषणा करता है।

इसका अर्थ यह नही है कि वह शासकीय दल या उसके प्रभावशाली नेतृत्व का शत्रु ही बन गया है। उस नेतृत्व के कारण 'युगान्तर' के निर्माण मे जो योग मिला है उसके प्रति वह कृतज्ञ है। इस दल और नेतृत्व की नीति-रीति यदि उसके सिद्धान्तो के अनुकूल रही तो वह उसका ठीक उसी तरह समर्थन करेगा जैसे कि पहले करता था। लेकिन वह यदि उसके विपरीत रही तो स्पष्ट है कि उन्हे उसका समर्थन कदापि नही मिल सकेगा।

'युगान्तर' दैनिक के निर्माण मे जिन मित्रो की पूजी लगी है उन मित्रो को हम आश्वासन देना चाहते है कि उसके लगाने मे उनकी जो भी दृष्टि और कारण रहे हो, हम उसे एक थाती और धरोहर के रूप मे ही मानते है, और एक ट्रस्टी के रूप मे ही हमने उसका विनियम किया है और करते रहेगे। हमारा दृढ विश्वास है कि जिस स्वतन्त्र नीति को लेकर पत्र चलने वाला है उसमे उसकी सामाजिक उपादेयता तो सुरक्षित है ही, पर आर्थिक समृद्धि भी पूरी तरह सुरक्षित है। हमारे भागीदारो के आर्थिक हित-सम्बन्धियो के प्रति हम आखो मे तेल डालकर जागरूक रहेगे और हमारे हिसाब-किताब सब समय उनकी जाच के लिए खुले रहेगे।

हमारी यह विनम्र श्रद्धा है कि जनता मे जनार्दन का वास रहता है, और पचो की वाणी मे परमेश्वर बोलता हे। हम उसी जनता-जनार्दन से गत चार-पाच-वर्षों की भूलो के लिए आज क्षमा मागते है और उन्हे आश्वासन देते है कि आज से हम सभी प्रकार के पक्षो या व्यक्तियो के हितो-अहितो से मुक्त हाकर केवल पच-परमेश्वर की सेवामात्र के लिए ही दृढ प्रतिज्ञ है ताकि हमारा पुरातन, गौरवशाली देश धन-धान्य से पूरित होकर सुख-समृद्धि प्राप्त करे तथा अपने उज्वल सास्कृतिक मूल्यो के आधार पर अपने देश मे तथा विश्व मे रामराज्य अर्थात् धर्मराज्य की स्थापना मे सक्रिय सहयोग दे ताकि विश्व की मानवता समता, एकता तथा प्रेम के सूत्र मे बधकर स्वर्णयुग मे पदार्पण करे।

हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह हमे इस विशाल पथ पर चलकर अपने स्वप्नो और आदर्शो का पालन करने की शक्ति दे।

'युगान्तर' के इस अग्रलेख ने प्रदेश की पत्रकारिता मे एक क्रान्ति कर दी। पाठको और जनता मे उत्साह की लहर बह निकली। अब फिर आ गया है 'युगान्तर' अपनी पुरानी आन पर, पुरानी शान पर! अब जनता मित्रविहीन और बेजबा नही रहेगी। उसका सगी-साथी आ गया है और उसे अब किसी भी शक्ति से डरने या घबडाने की जरूरत नही है। वाह रे युगान्तर! वाह रे धनजय!! शाबाश युगान्तर! शाबाश धनजय!! यही आवाज चारो तरफ सुनाई देती।

राजनीतिक पक्ष और नेता आम चुनाव की हुडदग मे अपने-अपने जोड-तोड मिलाने मे लगे थे। उन्हे इस तत्वपूर्ण और युगान्तरकारी अग्रलेख को पढने की फुर्सत ही कहा थी? वे तो 'भाइयो और बहनो, हमे वोट दो', की रट लगाते ही दिन-रात घूमते थे जैसे उनपर असेम्बली की सीटो के रूप मे अगिया बैताल ही चढ बैठा हो। पर जनता इस 'आत्मनिवेदन' को पढकर बाग-बाग हो उठी और 'युगान्तर' की बिक्री धडाधड बढने लगी। धनजय के उत्साह और आनन्द की सीमा नही थी। भारत को स्वतत्र हुए पाच साल हो गए थे, पर उसने आज पहली बार स्वतत्रता की सास ली।

पर उसका उत्साह और आनन्द कुल तीन-चार महीने ही टिका। जब चुनाव की हुडदग समाप्त हो गई और जोशी-मन्त्रिमण्डल फिर अपनी सत्ता पर दृढता-पूर्वक आरूढ हुआ तब उसकी शान्ति पुन भग होने लगी, और अब तो उसे नैतिक लाछन लगाकर एक अपराधी के रूप मे जेल मे भेजने की साजिश सामने नजर आने लगी।

उसका हृदय असीम व्यथा और ग्लानि से भर गया और उस दारुण दु ख की अभिव्यजना मे अपनी अन्तरात्मा के भाव से ओतप्रोत एक पत्र उसने जोशी जी को भेजने के लिए लिखा। उसे लिखने मे एक दिवस और दो रात्रिया लगी, पत्र की दीर्घता के कारण नही, उसकी गहनता के कारण। पत्र जब समाप्त हो चुका। तब वह बोला

'गीता, यह पत्र तुम स्वय जाकर जोशी जी को दे आओ। सघर्ष की भयकरता और दुष्परिणामो को टालने का यह मेरा आखिरी प्रयत्न है। यह असफल रहा तो फिर हरि की जो इच्छा होगी वही होगा।'

गीता कभी जोशी जी के बगले पर नही गई थी, हालाकि वे उसे कई वर्ष पहले, जब उसके घर आए थे, तब निमन्त्रण दे चुके थे। पर उसे पहली बार उनके यहा इस प्रकार का पत्र लेकर जाना पडेगा, यह विधि का विधान उसे बडा विचित्र लगा।

यह कोई विशेष आनन्द का कार्य नही था, यह वह जानती थी। इससे गलतफहमी भी हो सकती है, यह भी डर था। धनजय भी यह सब जानता और समझता था। पर केवल कर्तव्य-बुद्धि से ही उसने यह सुझाव दिया और गीता ने स्वीकार किया। वातावरण सर्वथा इसके विपरीत था, पर श्रेष्ठ पुरुषो का आचरण हमेशा तत्कालीन परिस्थिति के राग-द्वेष और क्षुद्रताओ से ऊपर उठकर होना चाहिए, ऐसी उनकी मान्यता थी। यह कदम योग्य था या अयोग्य, इसका निर्णय तो इतिहास करेगा। पर हम क्यो अन्त तक अपने प्रयत्नो मे कसर रखे? इतने पर भी प्रयत्न असफल हो जाए तो इसमे किसका दोष है? हमे तो अपना कर्तव्य-कर्म करते रहना चाहिए, फलाफल की ज़िम्मेदारी भगवान पर छोड देनी चाहिए।

जब गीता ने स्वय जोशी जी को टेलीफोन किया कि मै आपसे मिलने के लिए आना चाहती हू तो उन्हे आश्चर्य हुआ, और वे सोच-विचार मे भी पड गए। मुश्किल से एकाध मिनट चुप रहे होगे कि बोले

'आइए, कल सुबह नौ बजे।'

'धन्यवाद। मै कल सुबह नौ बजे जरूर आऊगी।'

२९

गीता ने जोशी जी के कमरे मे दाखिल होते ही धनजय का पत्र दिया। जोशी जी ने उसे खोलकर उसीके सामने पढा। पत्र इस प्रकार था

'आदरणीय जोशी जी,

'मै सुन रहा हू कि दो-एक दिन के भीतर ही झूठे हिसाब और झूठी बैलेस-शीट रखने के आरोप मे मेरी तथा मेरे कुछ सहकारियो की गिरफ्तारी होने वाली है। पता नही यह कहा तक सच है। पर यदि यह सच है तो इतनी दुर्भाग्यपूर्ण और खेदजनक घटना और कोई नही हो सकती।

'मै यह इसलिए नही कह रहा हू कि हिसाब की गडबडी से मै डर रहा हू। उसका जरा भी किसीको शक हो, और राजा साहब जगपुरा को यदि उसका शक हे, तो सारी बात उन्हे बखूबी समझाई जा सकती है, बशर्ते कि वे उसे समझने के लिए तैयार हो। जिस सतर्कता, जिम्मेदारी की भावना और कर्तव्यदक्षता से मैने युगान्तर का काम किया है उसमे एक पाई की गडबड नही हे, इसका मुझे पूरा विश्वास है। मेरी गिरफ्तारी की बात मुझे एक क्षण के लिए भी चिन्तित नही करती।

'पर जो बात मुझे अत्यन्त खेदजनक मालूम होती है वह यह कि जिस भद्दे और विद्रूप ढग से यह सब हो रहा है वह नितान्त अशोभनीय और गर्हणीय है। मै नही समझता कि यह आपकी प्रतिष्ठा और उच्च पद के अनुकूल है।

'विवाद मुख्यत पत्र की नीति को लेकर चल पडा है। आपकी कैबिनेट के एक मन्त्री के दुर्व्यवहार से, भ्रष्टाचार-निर्मूलन के आपके शासन के तौर-तरीके से यह वाद-विवाद उठा था। शासन मे जो भ्रष्टाचार व्यापक परिमाण मे फैल गया है वह किसी भी राष्ट्रीय शासन के लिए निन्दनीय है। सारे शासकीय तन्त्र मे शिथिलता, स्वेच्छाचारिता, नौकरशाही की मनमानी, हस्तक्षेप, और स्वार्थ-सिद्धि बडे परिमाण पर चली हुई है। राजनीतिक कार्यकर्ता और उनकी देखादेखी सरकारी कर्मचारी भी निन्यानवे के फेर मे पड गए है और जिसे जहा हाथ मारते बनता है वहा वह हाथ मारने से नही चूकता। इससे शासन की साख और धाक मिट्टी मे मिल रही है, खाऊ-खब्बे वालो की चादी बन रही है, गुणीजनो का निरादर हो रहा है। समस्त लोक-कल्याण की योजनाओ का प्रारभ तो ऊचे तत्वो से होता है पर वास्तविक अमल मे उसमे खीचा-तानी, लूट-खसोट, नौकरियो और सुविधाओ के प्रश्न को लेकर हाथापाई मच जाती है। पदो, अधिकारो और सुविधाओ का वितरण न्याय और योग्यता के बल पर नही होता, जिसके कारण द्वेष, जलन और सघर्ष की प्रवृत्तिया राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ मे भी फैल रही है। सच्चे त्यागी सेवको की कद्र नही होती, स्वार्थी, भोगी और खुशामदी लोगो की किस्मत खुल जाती है। लोग मेरे पास आकर कहते है कि जब स्वय मुख्य मन्त्री ही इन बातो को रोकने मे दिलचस्पी नही लेते, बल्कि उनके कृतित्व से जाने-अनजाने उनको प्रोत्साहन मिलता है, तो परिस्थिति कैसे सुधर सकती है ?

'इसलिए एक जिम्मेदार और कर्तव्य के प्रति जागरूक रहने का प्रयत्न करने वाले नागरिक की हैसियत से मेरे मन मे यह प्रेरणा उठी कि अब मै इन कामो मे

शासन का साथ नही दे सकूगा ।

'शासकीय पक्ष ही अपने आदर्शों और चरित्र के प्रति, केवल उदासीन ही नही, लापरवाह हैं, तो 'युगान्तर' की पक्षनिष्ठा का कोई अर्थ ही नही रह जाता। पक्ष और उसके नेतृत्व के तथा 'युगान्तर' के बीच जोडनेवाली जो कडी थी वह उच्च आदर्शो और स्वप्नो की थी, जिसके लिए परिश्रम करने, जीने और मरने मे भी आनन्द था, गौरव था । पर सत्ता की चकाचौध ने उन आदर्शों और स्वप्नो के सात्विक एव मागलिक प्रकाश को ही दबा डाला, और आपको-हमको एकसूत्र मे बाधने वाली वह कडी ही टूट गई। इसीलिए 'युगान्तर' को निश्चय करना पडा कि वह स्वतत्र नीति का अवलम्बन करे। इसका अर्थ यह नही है कि वह आपका तथा आपके पक्ष का विरोधी हो गया, बिलकुल नही। वह आपके प्रत्येक कार्यक्रम को अपनी विवेक-बुद्धि के सिल-बट्टे पर घिसकर देखेगा कि इसमे असली कितना है और नकली कितना है। उसीके मुताबिक निर्णय करेगा कि वह कितना समर्थन कर सकेगा और कितना नही।

'हालाकि स्वतत्र नीति पर चलने का मेरा विचार कई दिनो से था, और चूकि आपकी-मेरी बातचीत के अनुसार पत्र की नीति सर्वथा सम्पादक के क्षेत्र की ही बात थी, फिर भी मैने इसकी औपचारिक घोषणा तब तक नही की जब तक आपने स्वय मुझे दिल्ली मे बुलाकर 'युगान्तर' से अपना सम्बन्ध विच्छेद न कर दिया। आपने वह जिस परिस्थिति मे भी किया हो, पर मैने सोचा कि आपके-मेरे बीच का मामला समाप्त हो गया है, और मै जब घर लौटा तो आपके प्रति सद्भावना को छोडकर और कोई भावना नही थी।

'उसके बाद आए आम चुनाव और आप तीन-चार महीने लगातार उन्ही-मे उलझे रहे। इधर मै अपने पत्र मे स्वतत्र नीति की घोषणा कर चुका था। चुनाव के बाद पुन आपका मन्त्रिमण्डल बना। उसका मैने स्वागत भी किया और आशा व्यक्त की कि आपके नये कार्यकाल मे पुरानी गलतियो और कमजो-रियो को न दुहराया जाएगा और आप अपने नेतृत्व का नया पृष्ठ खोलेगे।

'मै कुछ निश्चिन्त था, पर मुझे शीघ्र ही मालूम हो गया कि मै गलती पर था। जगपुरा के राजा साहब ने ऑडिटर बैठा दिए, और उनकी रिपोर्ट पर अब हमारी गिरफ्तारी होने वाली है। रायसाहब रणदमन सिह, जिसके द्वारा आप भ्रष्टाचार के निर्मूलन का स्वप्न देख रहे हैं, मुझपर खार खाए बैठा है। उसने

मेरे दफ्तर के रजिस्टर उडवा दिए हैं, और क्या-क्या पचायत खडा करेगा, कहा नही जा सकता।

'आजकल वही रणदमन सिंह आपका मुख्य मित्र, शुभचिन्तक और सलाहकार बन गया है। जो आपके राजनीतिक क्षेत्र के मित्र थे, और जो आपसे कधे से कधा भिडाकर स्वातन्त्र्य-सग्राम मे लडे थे और जिनके सम्बन्ध आपके साथ देशभक्ति और कष्ट-सहन की अग्नि मे तपकर घनिष्ठ हुए थे, उनके लिए आपके पास कोई स्थान नही है, पर जो अग्रेजो की नाक का बाल था, जिसने देशभक्तो को सच्चे-झूठे मामले मे फासकर तथा देश-द्रोह की हजार बाते करके अपना उल्लू सीधा किया वह सदिग्ध चरित्र-व्यक्ति आपके गले का तावीज बन बैठा है। इस विचित्र दैव-दुर्विपाक के लिए क्या कहा जाए ?

'खैर, आपको अपने मित्र और सलाहकार चुनने का अधिकार है। इसके बारे मे मुझे कुछ नही कहना हे। पर यह नई मित्रता आपको कहा ले जाएगी इसका थोडा विचार कीजिए। पुलिस के क्षुद्र और वक्र दिमाग से शासन और प्रदेश की राजनीतिक समस्याए सुलझाने से क्या अनर्थ हो सकता है इस ओर मै इशारामात्र करना चाहता हू।

'फिर भी, सैद्धान्तिक मतभेद के अलावा, आपके-मेरे बीच व्यावहारिक मामले भी हैं जिनकी चर्चा करना आवश्यक है।

'आपने अपने अखबार 'युगान्तर' कम्पनी को बेचा, उसके लिए आपको एक लाख रुपये मिल गए। मैंने अपना अखबार भी बेचा तो मुझे पन्द्रह हजार मिले। चूकि मेरा अखबार जनता की मदद से चलता था वह रकम मैने एक सार्वजनिक ट्रस्ट मे दान कर दी। मेरे कार्य का क्षेत्र 'युगान्तर' छोडकर और कोई नही था। जिस तरह मै आपके दैनिक कार्य मे हस्तक्षेप नही करता था उसी तरह मैं अपने पत्रकारिता के क्षेत्र मे आपका हस्तक्षेप नही चाहता था। मुख्य मन्त्रित्व का क्षेत्र आपका था, पत्रकारिता का मेरा।

'फिर भी, आपका मेरा अठन्नी-अठन्नी का हिस्सा रहा, मेरा मेरे परिश्रम के लिए और आपका आपके प्रभाव के लिए, जिसके ज़रिये पूजी आई थी।

'यह आठ आना आपने दिल्ली मे छोड दिया। उसी दिन मैंने भी निश्चय कर लिया कि मै भी अपना आठ आना छोड दूगा। और उचित समय आते ही इसका ट्रस्ट बना दूगा ताकि आपको और दुनिया को यह कहने को न रहे कि यह लडाई

अठन्नी की या हिस्से की लडाई हे ।

'जिनकी पूजी लगी हुई हे वह सुरक्षित है और उसका एक न्यासी की तरह मै उपयोग कर रहा हू । उन्हे उसका मुआवजा मिले, इस ओर मेरा प्रयत्न रहेगा ।

'पत्र की नीति की घोषणा कर ही चुका हू कि वह स्वतत्र रहेगी, जनताभिमुख रहेगी । प्रत्यक्ष राजनीति से न मेरा सम्बन्ध है, न कभी रहेगा । युगान्तर पत्र अब जनता का पत्र रहेगा, उसका उपयोग कभी मेरे व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नही होगा इसका मै व्रत ले चुका हू । राजनीति से सर्वथा अलिप्त रहने के कारण यह सवाल ही नही उठता । अत 'युगान्तर' मेरी स्वार्थ-सिद्धि का साधन नही हो सकता । और इसके सम्बन्ध मे जो भी मैने किया है उसमे मेरा स्वार्थ नही हे, यह कम से कम आप तो मानेगे ही ।

'इसके बावजूद आप यदि अपना दिल्ली का निर्णय बदलना चाहते है, और वापस अपना आठ आने का हिस्सा लेना चाहते है तो उसमे मुझे आपत्ति नही होगी, क्योकि आप तो जानते ही है कि यह झगडा अठन्नी लेने या देने का नही है । पर शर्त यह है कि पत्र की नीति स्वतत्र ही रहेगी, जिसकी कि मै सार्वजनिक रीति से घोषणा कर चुका हू, और उसका सचालन मेरे ही हाथ मे रहेगा । आर्थिक पहलू पर आपकी कोई भी तजवीज मानने के लिए तैयार हू पर नीति और सचा-लन के मामले मे जो सद्य स्थिति है वही रहेगी ।

'मै अपने सचालन की बात इसलिए कहता हू कि 'युगान्तर' नामक पत्र का मूल जन्मदाता मै ही हू, वह मेरा जीवन का कार्य और मिशन है । उसके प्रतिपालन मे मेरा और मेरी पत्नी का रक्त समर्पित हुआ है । राष्ट्र की सेवा करने का वही मेरा एकमात्र माध्यम है । और जिस प्रकार स्वतत्रता की लडाई मे अपनी आहुति देकर उसे सफल बनाना मै अपना कर्तव्य समझता था, उसी प्रकार स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद इस देश मे स्वस्थ प्रजातन्त्र की परम्पराए कायम हो, शासन शुद्ध, दक्ष और लोकाभिमख हो, और विचार स्वातत्र्य सुरक्षित रहे ताकि स्वतन्त्र और निर्भीक पत्रकारिता का विकास हो, यह मेरी कामना है । जिस प्रकार एक कर्तव्यनिष्ठ पत्रकार विदेशियो के द्वारा अपने देश पर किए गए आत्याचारो और अन्यायो को बर्दाश्त नही कर सकता, उसी प्रकार स्वजनो द्वारा किए गए जुल्मो और अन्यायो को भी बर्दाश्त नही कर सकता, क्योकि वह स्वतन्त्र देश की स्वतत्र विचार-प्रणाली और जीवन-प्रणाली का, उसकी सास्कृतिक मान्यताओ का, उसके

स्वप्नो और आदर्शों का प्रहरी है। वह मेरा कर्तव्य-क्षेत्र है, कर्मक्षेत्र है, और कुरु-क्षेत्र है। इससे मुह मोडने के लिए मै तैयार नही हू।

'इतना छोडकर मै आपकी सब बात मानने के लिए तत्पर हू। यदि आपको मेरे खिलाफ कोई शिकायत हो या मतभेद हो तो उसे आपस मे बैठकर ही निपटना चाहिए, या फिर किसी मध्यस्थ को सौप देना चाहिए। पर कानून या पुलिस के माध्यम से डरा-धमकाकर निपटाने का यह अभद्र, असभ्य, अशोभनीय तरीका आपको छोड देना चाहिए। क्योकि मै यह देख रहा हू कि इसमे मेरा जो कुछ अकल्याण हो सो तो होगा ही, पर आपका भी घोर अकल्याण है। सार्वजनिक जीवन पर इसका विपरीत परिणाम होगा, प्रदेश के भविष्य पर इसका बुरा असर पडेगा। मेरी नम्र किन्तु स्पष्ट राय मे आपका पक्ष न्याय का पक्ष नही है इसलिए उसकी क्षति हुए बगैर नही रहेगी। हा, उसमे समय भले ही लगे। मैने अगर हिसाब मे गडबडी की है तो उसका दण्ड तो मुझे भोगना ही चाहिए। पर यदि आप न्याय के पक्ष को छोडकर केवल आपके हाथ मे सत्ता है इसलिए मुझे आपकी ही बात माननी चाहिए अन्यथा परिणामो को भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए, इसी बुनियाद पर डटे है तो ईश्वर ही आपका सहायक है।

'चूकि मुझपर सरकार द्वारा नियुक्त ऑडिटर की इनक्वायरी चल रही है, मैने स्वय आपके यहा आना उचित न समझा। इसलिए गीता को भेजना पडा। इससे गलतफहमी भी हो सकती है, यह मै जानता हू। और सब कीजिए पर ईश्वर के लिए कम से कम इतना तो मत कीजिए कि मै मुकदमे के डर से यह लिख रहा हू ऐसी धारणा बना ले, क्योकि उससे आपको सही निर्णय करने मे दिक्कत होगी। और एक बार आप भूल जाइए कि आप मुख्य मत्री है, और स्मरण रखिए कि आप और मै दोनो ही पुराने मित्र है, मित्रो को अपना झगडा प्रेम और न्याय के साथ ही मिटाना चाहिए।

'लेकिन आपने यदि इस सभ्य और सुसस्कृत तरीके से झगडा निपटाने की बात त्याग दी तो फिर आपके और मेरे बीच तो भगवान ही न्याय करेगे, पुलिस और अदालत क्या करेगी ? आपके पास सत्ता है, पुलिस है, सम्पत्ति है, राजा-महराजो का समर्थन है। मेरे पास तो ईश्वर को छोडकर और किसीका सहारा नही है। मुझ शक्तिहीन अकिंचन को खत्म कर डालने मे आपको ज्यादा समय नही लगेगा। यदि मेरा पक्ष अधर्म और अन्याय का है तो मेरा खत्म हो जाना ही श्रेय-

स्कर है। और यदि आपका पक्ष अधर्म और अन्याय का है, तब आपकी भी वही गति होनी अवश्यम्भावी है।

'पल-पल, क्षण-क्षण समय की घडिया बीतती जाती है। इसके पहले कि सार्वजनिक रीति से विस्फोट हो, क्या आप सारी परिस्थिति पर शातिपूर्वक विचार करेगे ? आप बुजुर्ग है, और आप ही इस भयकर काण्ड को बचाने की क्षमता रखते है।

आपका विनम्र,
धनजय'

जोशी जी ने पत्र बडी गभीरता से पढा, एक-एक शब्द ध्यान से पढा। और फिर दुबारा पढा। फिर सोच-विचारकर बोले, 'मै भी नही चाहता कि उनका नाम बदनाम हो, या नुकसान हो। यो तो मुझे अब 'युगान्तर' से कुछ नही करना है। उसका काम धनजय जाने और जो मरजी आए वह करे। पर चूकि उन्होने मुझे फिर वापस हिस्सा देने की बात उठाई है तो नौ आने पाए बिना इस मामले मे मै कोई दिलचस्पी नही ले सकता। या फिर वे इसके सचालन से इस्तीफा दे दे और जिसे मै कहू उसके हाथ सस्था सौप दे और उसके मुआवजे मे पचास हजार ले ले। अपना साप्ताहिक बेचने मे उन्हे पन्द्रह हजार मिले थे, मै तिगुनी से भी अधिक रकम दिलाने के लिए तैयार हू, इससे वे अपना अलग पत्र निकाल ले। चाहे तो इसमे मै पाच-दस हजार और मिलाकर दे सकता हू। आखिर उन्होने भी काफी कष्ट भोगे है और परिश्रम किया है।'

गीता ने कहा कि इसका जवाब तो मै उन्हीसे पूछकर दे सकूगी। कल सुबह नौ बजे तक आपको उत्तर मिल जाएगा।

गीता मामाजी से मिलने आई थी इसकी खबर सबसे पहले गिरधारी को लगी। उसने फौरन रणदमन सिंह को टेलीफोन किया।

रणदमन सिह बोला, 'बस, सरेण्डर (आत्मसमर्पण) का पैगाम आ गया! सफेद झण्डा दिखा दिया गया है, सो भी पहली घुडकी मे। वाह रे बहादुर!'

पाच मिनट बाद उसने गिरधारी को वापस फोन किया, 'यार, जरा पता तो लगाओ कि असल मे क्या बातचीत हुई ? जोशी जी पुरानी परम्परा के आदमी है। कही उसे कन्या मानकर सभी कुछ दान मे तो नही दे डाला, जैसे सावित्री को वर मिल गया था ? फिर तो यार कोई बात न बनी।'

गिरधारी ने कहा, 'देखिए, कोशिश करता हू।'

दूसरे दिन सुबह जाकर गीता ने धनजय का जवाब दे दिया कि दोनो बाते उसे मजूर नही है। नौ आने वाली बात इसलिए मजूर नही है कि वह तो फिर जोशी जी की नौकरी हो गई। नौकरी उसने जिन्दगी भर किसीकी नही की है, और अब भी नही कर सकेगा।

दूसरी बात इसलिए स्वीकार नही है कि आज इस इनक्वायरी के रहते हुए वह इस्तीफा दे देगा, तो दुनिया यही कहेगी कि दाल मे कुछ काला जरूर है, उसने रुपया खाया है, और अब मुकदमे के डर से आत्मसमर्पण करके भाग गया। चरित्र का यह कलक तो वह जन्मभर धोए नही धुल सकेगा। उसके पास चरित्र को छोड-कर और है ही क्या? उसीपर यदि लाछन लग गया तो फिर वह समाज की या देश की क्या सेवा कर सकेगा? और उसपर भी वह रुपये ले ले तो भय और लोभ दोनो का वह शिकार बन गया और रणक्षेत्र से भाग गया, ऐसा ही लोग कहेगे। इनक्वायरी की पिस्तौल सिर पर तानकर कोई उसे पचास हजार नही, पचास लाख भी दे दे तो वह स्वीकार नही कर सकता। जब तक इस इनक्वायरी मे वह निष्कलक होकर नही निकलता है तब तक सौदे की क्या बात हो सकती है?

जोशी जी को बडी झुझलाहट हुई। लगा जैसे कोई सिर पर तमाचा मार-कर चला गया हो।

गीता ने नित्य की तरह झुककर उन्हे नमस्कार किया और वहा से उठकर चली आई।

आकाश मे मेह गडगडाने लगे। चारो ओर बदली छा गई और अधेरा हो गया। थोडी-सी बूदाबादी भी हुई। न जाने मेह बेचारे किसके लिए आसू बहा रहे थे।

३०

दूसरे ही दिन पुलिस ने युगान्तर प्रेस पर छापा मारा। चार पुलिस के वान आए जिसमे से दो दर्जन के करीब जवान उतरे। सारे प्रेस के आसपास

घेरा डाल दिया। छ सब इन्स्पेक्टर थे। प्रेस और कार्यालय की कसकर तलाशी ली और मजिस्ट्रेट के हुक्म के मुताबिक हरेक कागज जप्त कर लिया। जिस किसी-पर 'युगान्तर' नाम था, वही आपत्तिजनक चीज मानी जाती। कैशमीमो भी जब्त कर लिए, और उस दिन जो रसीदे काटी गई थी वे भी। विज्ञापन, सर्कुलेशन, प्रेस विभाग के चालू रजिस्टर भी हटा दिए गए। अब बिल बने तो कैसे बने, वसूली हो तो कैसे हो? रोजमर्रा का काम कैसे चले? नीयत साफ थी कि कम्पनी का काम ही ठप हो जाए और दूसरे दिन का अखबार ही न निकले। एक दिन और एक रात तो तमाम कागज ढोने मे लगे। रात मे दफ्तर के आसपास पुलिस का पहरा बैठा दिया गया। न कोई भीतर जा सकता था न बाहर आ सकता था।

वही किस्सा धनजय के घर पर हुआ। एक मोटर गई, छ सिपाही और एक इन्स्पेक्टर। इन्स्पेक्टर जरा भला आदमी था। बोला, 'साहब, हमे यह अप्रिय काम करना पड रहा है, माफ कीजिए। हुक्म है इसलिए उसे तामील तो करना ही पडता है। पर अपने घर मे आप जो चीज इस आर्डर के मुताबिक आपत्तिजनक समझते है, वह मुझे दे दीजिए। मै क्यो तलाशी का तमाशा करू?'

धनजय की सूबे मे क्या इज्जत थी यह वह जानता था, और झगडा किस बात का है यह भी थोडा-बहुत समझता था।

धनजय ने कहा, 'नही, कोई अप्रियता की बात नही। आप अपनी ड्यूटी कीजिए और जो कागज आप ठीक समझते है, ले जाइए।'

इन्स्पेक्टर ने दो चार कागज उठाए और जप्ती का कागज लिखने लगा।

इतने मे नीचे एक मोटर आई और धडधडाते हुए सीढी चढते हुए दो आदमी आए—एक था भोलानाथ एडवोकेट और दूसरे आदमी को धनजय पहचान नही पाया।

'अरे भोलानाथ, इस समय तुम यहा कैसे?'

'मुझे अदालत मे मालूम हुआ कि तुम्हारे खिलाफ तलाशी और गिरफ्तारी का वारण्ट निकल चुका है। भागा-भागा आया और साथ जमानतदार ले आया।' और फिर इन्स्पेक्टर की तरफ मुडकर पूछा

'क्यो, गिरफ्तारी का वारण्ट भी है न?'

'जी हा', उसने कुछ शरमिन्दा होकर कहा।

'तो वह भी बजा लीजिए। मै यह जमानतदार लाया हू।'

इन्स्पेक्टर जमानतदार को पहचानता था। वह सतरे का बडा व्यापारी था, बगीचे थे, दलाली का काम था—एक-एक हजार की जमानत देने के लिए उसकी जायदाद काफी थी।

इन्स्पेक्टर ने गिरफ्तारी का वारण्ट भी बजा लिया और जमानत लेकर धनजय को रिहा कर दिया, और अपने कागजात उठाकर चलता बना।

'तुमने भी गजब कर दिया भोलानाथ। जैसे वक्त पर आ गए। जमानत के लिए किसीके दरवाजे तो जाना ही पडता, नही तो थाने मे जाकर बैठना पडता।'

'मर गए तुम्हे थाने मे भेजने वाले! खुद तो हराम की खा-खाकर मोटे हो रहे है और निर्दोष आदमियो पर तोहमत लगाते है? लिखकर रख लो, एक हजम नही होगी, एक भी नही। टे न बोल दी तो मेरा नाम भोलानाथ नही, चमार रख देना ' वह गुस्से से बोला। सात्विक सताप से वह तमतमा उठा था।

रह-रहकर धनजय को यही लगता कि ऐन मौके पर भोलानाथ कैसे टपक पडा—जैसे भगवान की कृपा बरस पडी हो, सात्वना देने तथा हिम्मत बधाने। एकाएक धनजय की आखे भर आई।

'तुम्हे कैसे पता चला?' उसने अपने आपको सम्हालकर पूछा।

'कल से मै देख रहा था कि वह हम्बग पब्लिक प्रॉसिक्यूटर गुप्ता बडी दौड-धूप कर रहा है, सोहनसिह मजिस्ट्रेट के साथ उसकी बडी घुसड-फुसड चल रही थी। मैने कहा, बात क्या हे? जब गुप्ता और डी० वाई० एस० पी० उसकी अदालत से हटे तो मै सोहनसिह के पास गया और पूछा—क्यो रे, क्या माजरा है? वह मेरा भी दोस्त है। बोला, 'युगान्तर' वालो के खिलाफ 'कम्प्लेण्ट' दायर हो चुकी है और वारण्ट निकल चुके है।—मैने कागज देखे तो तुम्हारा भी नाम दिखा। मुशी को काम सौपकर फौरन दौडा-दौडा आया कि जमानत की जरूरत पडेगी। ये हजरत मेरे मवक्किल है। मैने कहा, तेरा काम बाद मे करूगा, पहले चल मेरे साथ—एक जमानत देनी है। अच्छा हुआ जो हम लोग वक्त पर आ गए। वरना तुम्हे परेशानी हो जाती।'

धनजय भीतर ही भीतर गद्गद हो उठा। उसके कल्याण के बारे मे कितनी आस्था, कितनी चिन्तना! हजरत इतने महीनो कहा गायब रहे, भगवान जाने। पर ऐसे मौके पर आ धमके जब आदमी को दोस्त की जरूरत होती है। वाह रे भोलानाथ!

धनजय के दफ्तर से भी फोन आया कि वहा भी जप्ती गिरफ्तारी चली है। चार आदमी पकडे गए—धनशेट्टिवार, युगातर कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स का चेयरमैन और तीन कर्मचारी और। तलाशी भी सबके मकानो की हुई। कम्पनी का चेयरमैन धनशेट्टिवार पुलिस वालो पर बमक उठा। वैसे उसका 'युगान्तर' के दैनिक काम-काज से कोई सम्बन्ध नही था पर रणदमन सिह ने पुरानी दुश्मनी चुकाने के लिए उसे भी फास लिया। धनशेट्टिवार आई० सी० एस० से रिटायर हो चुका था। अब रोजगार-धन्धे मे लग गया था, पेट्रोल की एजेन्सी, बिजली के ठेके, रबर की फैक्टरी आदि मुतफरकात काम करता था और अब युगान्तर कंपनी का चेयरमैन बन गया था। राजनीति मे थोडी-बहुत दिलचस्पी रखता था और समाजवादी पार्टी का मेम्बर बन गया था। जब वह किसी ज़िले मे डी० सी० था तब वही रणदमन सिह पुलिस कप्तान था। रणदमन तो अपने तुर्रे मे किसीको कुछ नही समझता था, तो धनशेट्टिवार ने उसकी एक दिन क्लब मे अच्छी परेड ली। हसी-हसी का तो मामला था, पर इतने लोगो के सामने उसे नीचा देखना पडा इससे रणदमन जल उठा और भीतर ही भीतर खार खाने लगा। उसने महीने भर के भीतर ही वहा से अपना तबादला करवा लिया। बात कोई आठ-दस साल पुरानी थी। इस बीच गवर्नमेट बदली, अग्रेज चले गए, भारतीयो का शासन शुरू हुआ और धनशेट्टिवार ने अवकाश ग्रहण कर लिया। 'युगान्तर' से सम्बन्ध होने के कारण रणदमन को अच्छा मौका मिला। इसने उसको भी रगड दिया। इस समय तो सरकारी पक्ष की तरफ से वही युद्ध-सचालन का सिपहसालार था और पुलिस के पैतरो का निर्देशन वही कर रहा था। शाम को जब रणदमन सिह को दिन भर की जप्ती और गिरफ्तारियो की रिपोर्ट मिली तो खुशी के मारे नाच उठा। एक ही पत्थर से दो पक्षी मारे गए—धनजय और धनशेट्टिवार। अरे यार, हम तो पुराने अखाडिये है। हमारे सामने ये कल के लौडे क्या टिकेंगे ? फौरन 'युगान्तर' के प्रतिस्पर्धी सभी अखबारो को फोन किया—ज रा फ्रट पेज पर छापना इस सनसनीखेज घटना को। प्राय सभी प्रेस मे उसके आदमी थे ही। सिर्फ 'युगान्तर' प्रेस मे उसकी पहुच नही थी। सो उसकी नाडी इस तरह ठडी की।

दूसरे दिन सुबह ही अखबारो मे जोरदार हरफो मे 'युगान्तर'-केस का समाचार छपा। 'युगान्तर' ने भी छापा। शहर भर मे सनसनी मच गई। मन्त्रिमण्डल के क्षेत्रो मे तो उत्सव का-सा वातावरण था। गिरधारी तो उचका-उचका फिरता

था। प्रतिस्पर्धी अखबार भी खुश थे, कि यह अच्छा गड्ढे मे आया। उसकी लोकप्रियता से जलन जो हो रही थी। कुछ लोगो को शक हुआ कि जोशी जी और धनजय वगैरह दोनो मिलकर खाते थे। अब उनमे फूट हो गई है तो एक दूसरे पर उखड पडे। भुगतेगे। चालान पढकर कई लोगो के कान खडे हो गए। बिना आग के धुआ नही निकलता। धनजय सीधा-सादा आदमी हे, कही न कही जरूर फस गया होगा। वह बूढा मुख्य मन्त्री बडा घाघ है। बेचारे को अनजाने मे किसी खदक मे उतार दिया। चालान मे हमेशा ही अभियुक्त के खिलाफ सबसे काला चित्र रगा जाता है, क्योकि उसीपर तो सारे केस की दारोमदार रहती है। पर जनमत का एक बहुत बडा हिस्सा धनजय और 'युगान्तर' के साथ सहानुभूति रखता था। धनजय को इस शहर ने उसके कॉलेज-जीवन से देखा था। त्याग और तपस्या मे तथा सचाई और राष्ट्रीयता मे उसका सानी मिलना मुश्किल था। पुराने 'युगान्तर' का अग्रेजो के साथ का सघर्ष उन्होने देखा था। उसका जेल जाना, प्रेस को आग लगने का प्रसग, और फिर सार्वजनिक ट्रस्ट को सर्वस्व दान। रुपये-पैसे के बारे मे इतना खरा और निरिच्छ आदमी ऐसा काम कैसे कर सकता है ? असम्भव है। चार-पाच महीनो से पत्र की नीति स्वतन्त्र हो गई थी, उसके कारण भी उसके पक्ष मे कुछ अधिक सहानुभूति हो गई थी। यह दल मानता था कि यह शासकीय गुट के पैतरेबाजो की चाल है। देखे, क्या गुल खिलता है ? पर भीतर ही भीतर वे 'युगान्तर' और धनजय के कल्याण की कामना करने लगे। उनको किसी तरह आच न लगे। यही उनकी ईश्वर से प्रार्थना थी।

३१

धनजय ने गीता से कहा, 'देखो, समय की कैसी बलिहारी है। इसके पहले अग्रेजो के हाथ से देशभक्ति के लिए जेल गया था। अब अपने ही देशवासियो के हाथ से नैतिक अपराध के फौजदारी मामले मे जेल भेजने की तैयारी हो रही है।'

'होने दो ! पहले उसे भी हसते हुए बर्दाश्त किया। इसे भी करेगे। हमारी

आत्मा यदि शुद्ध है और हमे विश्वास है कि हमने कोई गलत काम नही किया है, तो भगवान हमे कभी नही बिसारेगे।' गीता ने दृढता से कहा।

'तुम्हे इससे चिन्ता तो नही होती, गीता रानी ?'

'रत्ती भर नही। चिन्ता क्यो होगी ? मुझे तो तुमपर अटूट और अखण्ड विश्वास हे। और मै यह भी मानती हू कि जो होता है, अच्छे के लिए ही होता है। इस घटना से भी कुछ कल्याण होने वाला है, तभी तो यह जहर का घूट पीना पड रहा है।'

'सो विश्वास तो मेरा भी है। असत्य और अधर्म पर टिकी हुई सत्ता राक्षसी होती है। वह विवेक-अविवेक का भेद नही करती, और अपने खिलाफ तनिक-सी भी चुनौती बर्दाश्त नही कर सकती है। पाशविक शक्ति पर उसका चरम विश्वास रहता है। कोई भी सिर उठाए तो उसे कुचल डालने का विचार उसके दिमाग मे सबसे पहले आता है। पर सत् और असत् की लडाई तो दुनिया मे हमेशा से चली आई है। सत् को बहुत कष्ट भोगना पडता है, अग्नि भक्षण करना होता है, रक्त का स्नान करना होता है, पर अन्त मे चलकर सत् की ही विजय होती है। पर उसके पहले उसे इस स्थिति मे से गुजरना ही पडता है। दु ख इसी बात का है कि मेरे साथ तुम्हे भी कष्ट होगा '

'ऐसी बात क्यो करते हो मेरे देव ? अग्नि की साक्षी मे जब हम-तुम एक हो गए तो यह मेरे-तेरे का विभेद कैसा ? तुम्हारे सुख मे मेरा सुख है, तुम्हारे दुख मे मेरा दुख। मेरे कष्ट की तनिक भी चिन्ता मत करो। मुझे सिर्फ इतना बता दो कि इस मुकदमे मे तुम्हे अधिक से अधिक कितनी सजा हो सकती है ? क्योकि यह मान-कर चलना चाहिए कि जो इतने नीचे उतर आए है वे कही भी रुकेंगे नही। पुलिस उनकी, अदालत उनकी। नीचे तो वे सज़ा ठोके बिना रहेगे नही ऊपर चाहे भले ही छूट जाओ। तब तक धब्बा लगा रहेगा। यही क्या कम तसल्ली है ?'—गीता बोली।

'तीन साल। इसमे अधिक से अधिक तीन साल की जेल हो सकती है।' धन-जय ने कहा।

'बस ! इससे ज्यादा तो तुम पहले जेल मे रह चुके हो। कोई बात नही है। तुम जेल मे लिखना-पढना, खूब अध्ययन करना, और मै यहा बाहर अर्चना को अच्छी तरह सभाले रहूगी। हम दोनो मा-बेटी को आखिर लगता ही कितना है ?

उसके गर्व का कोई ठिकाना न रहा। स्कूल की अध्यापिका ने उसे एक हार दिया, वह घर लाकर अपने बाबूजी को पहना दिया और एक पेडा बचाकर लाई सो उसके तीन हिस्से करके अपने हाथ से बाबूजी और अम्मा के मुह मे डाले। अर्चना के कारण उनका घर घर नही नन्दन वन था।

सो आज जब अर्चना स्कूल से आई तो घर मे घुसने के पहले ही पडौस की बच्ची ने उसे बताया कि दोपहर को तुम्हारे यहा पुलिस आई थी।

घर मे कदम रखते ही उसने देखा कि बाबूजी और अम्मा गभीर चेहरा बनाए हुए बैठे है। यह वक्त तो बाबूजी के दफ्तर मे रहने का है। इस समय घर कैसे ?

अर्चना ने बस्ता पटक दिया और मा के गले से लिपटकर बोली।

'अम्मा, आज अपने घर पुलिस आई थी ?'

'हा, बिटिया।'

'क्यो ? अब तो अंग्रेज़ अपने देश से चले गए है न ? अब क्यो पुलिस बाबूजी को सताती है ?'

मा ने अपने भरे हुए कण्ठ को सम्भालकर कहा, 'पुलिस बाबूजी का क्या बिगाडेगी बेटी ? उस बार भी पुलिस उनका कुछ न बिगाड सकी। इस बार भी कुछ न कर सकेगी। उस बार भी उनकी जीत हुई थी, इस बार भी उन्हीकी जीत होगी। तेरे बाबूजी के पीछे तो भगवान की शक्ति है।'

अर्चना का चेहरा खिल उठा। वह उत्साह से बोली, 'मै अभी कृष्ण भगवान से कह देती हू कि बाबूजी की ही जीत कराना।'

और वह उठी, बस्ता और जूते ठिकाने से रखकर हाथ-पैर धोकर ठाकुर जी के सामने बैठ गई। कपूर और ऊदबत्ती जलाई, वह हाथ जोडकर और आख मूदकर न जाने अपने कमल-दल जैसे पवित्र ओठो से क्या पुटपुटाती रही। माता-पिता अत्यन्त कौतुक से उसकी ओर देखते रहे। दो मिनट मे ही वह उठकर आई और पिताजी के गले मे दोनो हाथ डालकर बोली, 'बाबूजी, भगवान कहते है कि आपकी जीत होगी।'

धनजय ने अर्चना को छाती से लगा लिया और उसका चेहरा अपने वक्ष मे दबा लिया ताकि वह उसके आसुओ को न देख सके।

अर्चना एकदम निश्चिन्त हो गई। अम्मा से बोली कि भूख लगी है। खाना खाकर कूदती-फादती खेलने चली गई।

धनजय ने मुस्कराते हुए कहा, 'लो गीता, भगवान का आशीर्वाद तो प्रारभ मे ही मिल गया।'

'बस, फिर क्या देखना है ? बजने दो, पाचजन्य शख बजने दो, फिर एक बार कुरुक्षेत्र को धरती पर आने दो।' वह बोली।

'खेद यही है कि अपने आपस के लोगो से ही लडना पड रहा है।'

'अब यह खेद-विषाद छोडो। अपने-पराये का भेद छोडो। यह सब रण-विभीषिका बचाने के लिए ही तो कभी न जाने वाली मै तुम्हारा अन्तिम पत्र लेकर गई थी। पर जब सत्ता-मोह के अधत्व ने उस पत्र का सही-सही मूल्याकन न होने दिया, और पहला तीर उधर से छूटा तो अब क्या देखना है। अब तो सिवा लडने के, अन्त तक लडने के, और आवश्यकता पडे तो लडते-लडते मर जाने के और कोई चारा नही है।'

'तुम ठीक कहती हो गीता। आज के इस पुलिस-काण्ड के बाद तो कुछ सोचने-विचारने को रह ही नही जाता है। अब तो दो हाथ देना और दो हाथ लेना यही बचा है। होने दो, एक बार फिर महाभारत मच जाने दो। मै तुम्हे आश्वासन देता हू कि अब मेरा हाथ एक बार भी नही कापेगा।'

दोनो उठे, और ठाकुर जी की मूर्ति के पास गए। अर्चना का प्रज्वलित किया हुआ धूप-दीप अब भी जल रहा था। दोनो हाथ जोडकर बोले, 'हे चक्रपाणि योगेश्वर! हमारी लाज रखना, अब सर्वत तुम्हारे ही हाथ मे है।'

३२

इन जप्ती और गिरफ्तारियो से 'युगान्तर' प्रेस के कर्मचारी घबडा गए। अखबारो के समाचार पढकर सब लोग पूछते कि यह क्या हो गया, आगे क्या होगा ? उन बेचारो को अपने भविष्य की चिन्ता होने लगी। मुख्य मन्त्री और उसके समूचे शासन से पाला पडा है, सारी हुकूमत की ताकत उनके साथ है, पुलिस है, धनिक वर्ग है, सरकारी वकील है, सरकार का खजाना है। और यहा तो कुछ भी नही है। कैसे नैया पार लगे ? कही सस्था बैठ तो नही जाएगी ? फिर उन सौ

परिवारो का क्या होगा जो उसके कारण अपना चरितार्थ चला रहे है ?

धनजय को वास्तव मे उन्हीकी चिन्ता थी। एक आदमी ही ऐसा निकला कि जिसने रमजान खा के प्रलोभन मे आकर रजिस्टरो की चोरी करा दी। पर जब उसने देखा कि बात इतनी बढ गई कि उसके 'मालिक' की गिरफ्तारी तक हो गई तो उसे बडा पश्चात्ताप हुआ। कर तो कुछ सकता नही था क्योकि नई जगह नौकरी कर ली थी। पर जिस दिन उसने गिरफ्तारी का समाचार पढा उसी रात एकाउटेन्ट के घर जाकर उन रजिस्टर के नाम और उसमे दर्ज किए हुए हिसाब का मुख्य-मुख्य ब्यौरा बता दिया। बोला, 'धनजय बाबू को तो अब मै मुह नही दिखा सकता। तुम्ही मेरी ओर से मेरे लिए मुआफी माग लेना। मैने कभी नही सोचा था कि उनके जैसे देव पुरुष पर ही यह फन्दा लगाया जाने वाला है।'

एकाउन्टेन्ट तो यो भी उस चोरी से चिन्तित नही था। क्योकि उन रजिस्टरो मे ही क्या, कही भी ऐसी कोई बात नही थी कि जिसके लिए लज्जित होना पडे या खोट सहनी पडे। सब मामला साफ था। यदि ग्राहक-सख्या बढाने के लिए आकडे बढाए गए थे तो वे आमद और खर्च दोनो ओर बराबरी से बढाए गए थे। यह भी मैनेजर ने जोशी जी की सलाह से ही किया था क्योकि वे पत्र के भागीदार थे, पत्रकारिता मे उनका भी कुछ अनुभव था। अधिक विज्ञापन प्राप्त करने का, यह आसान तरीका था। कई प्रकार के समाचारपत्र यह साधारण तौर पर करते है। सवाई-ड्यौढी बिक्री तो हर कोई बताने की कोशिश करता है। जो किया वह न किया जाता तो उचित था। पर जो हुआ उसमे बेईमानी की कोई बात नही थी और हेतु मे कोई दोष नही था। हेतु था तो यही कि ज्यादा बिजिनेस बढे और भागीदारो को अधिक फायदा मिले तथा कम्पनी का हित हो। व्यक्तिगत हित की तो कोई बात नही थी।

बहुत साधारण-सी बात थी। अपने माल के गुणो को बढा-चढाकर बताने जैसा मामला था। पर मुख्य मन्त्री से मतभेद हुआ तो उसीका फायदा उठाकर मुकदमा दायर कर दिया गया। य आकडे किसीको न समझाए जाए तो गलतफहमी होना स्वाभाविक है। जरूर पैसे खाए गए होगे इसलिए हिसाब-किताब के आकडे मे हेर-फेर किया गया। और चूकि सस्था के सचालन की जिम्मेदारी धनजय की थी, उसके चरित्र पर ही सबसे अधिक लाछन लगता। असल मे शासकीय दल का सारा घटाटोप यही था कि किसी न किसी तरह धनजय पर कलक लगे। तभी छाती

ठडी होगी। उन्हे 'युगान्तर' से कोई सरोकार नही। वे चाहते तो 'युगान्तर' जैसे दस दैनिक निकाल सकते थे। रुपये-पैसो की कमी नही थी। बस, आग लगी थी वह इसी बात की कि हमारे भ्रष्टाचार पर उगली उठाने वाला यह होता कौन है? इसकी इतनी हिम्मत और जुर्रत! एक बार इसपर कलक का धब्बा लगा दिया कि ब्रह्मानन्द प्राप्त हो जाएगा। रणदमन सिह, रमजान खा और उसकी तमाम पुलिस सेना इसी काम मे जमीन-आसमान के कुलाबे एक कर रही थी।

धनजय का एकाउन्टेन्ट बडा होशियार कर्मचारी था। ईमानदार था, बहुत बुद्धिमान भी था और हिसाब-रोकड की बारीकियो को अच्छी तरह समझता था। उसने हिसाब इतनी स्पष्टता और दक्षता से रखा था कि किसीको मीन-मेख निकालने की गुजाइश नही थी। वह व्यक्तिगत रूप से धनजय का आदर करता था, और उसके प्रति बडा वफादार था। उसने कई बार धनजय को आश्वासन दिया था कि आप हिसाबो के बारे मे एक क्षण की भी चिन्ता न करे। कोई दोष निकाल दे तो मै हाथ कटा दू। धनजय आश्वत हो गया। मुकदमो के फौजदारी पहलू मे कोई दम नही। अब केवल कानूनी और राजनीतिक पहलू बचा था। सो उसने भी तय कर लिया था कि अब ठन गई है तो ठन कर ही रहेगी। लडाकुओ का रक्त था। एक बार हाथ उठा तो फिर सीधा पडता था, एक घाव दो टुकडे। जो होना होगा सो होगा। देखी जाएगी।

पर 'युगान्तर' प्रेस के कर्मचारियो को भला यह सब पृष्ठभूमि कैसे मालूम हो? वे चिन्तित हो उठे। घबडाकर उसके पास दौडे आए, 'महाराज, अब क्या होगा?'

उसने कहा, 'तुम सब लोग इकट्ठे होकर आ जाओ तो बताऊ।'

सब विभागो के कर्मचारी आ गए। करीब-करीब अस्सी आदमी थे। रात-पाली के लोग भी समाचार सुनकर घबडाए हुए आए थे। उनसे धनजय ने कहा, 'यह हमारी कठिन परीक्षा का समय है। इस सस्था पर ऐसा भयकर वार पहले कभी नही पडा था। यह तो हमारी सस्था के अस्तित्व पर ही सीधा और करारा हमला है, और हमारे चरित्र पर लाछन है।

'इस सस्था की मैने गत कुछ वर्षो से सेवा की है, उसको पालने-पोसने मे अपना रक्त दिया है, ठीक उसी तरह जैसे मा अपने शिशु का पालन करती है। मा आखरी दम तक अपने शिशु को मरने नही देती। मै भी इस बात पर दृढ प्रतिज्ञ हू कि सस्था

को मरने नही दूगा। वह मेरे लिए अपनी मृत्यु से बढकर है।

'पर इसका सरक्षण अकेले मेरे हाथ मे नही है। सबसे पहले तो वह भगवान के हाथ मे है, और बाद मे आपके हाथ मे, जिनका रक्त-पसीना इस सस्था को बनाने मे लगा है।

'यदि हमारा पक्ष न्याय, सत्य और धर्म का पक्ष है तो भगवान हमारी सहायता किए बगैर नही रहेगे। इसमे कोई फर्क नही पड सकता। मेरी यह श्रद्धा अटल है। चन्द्र टल जाए या सूरज टल जाए, पर मेरी यह श्रद्धा विचलित नही हो सकती।

'इस लडाई को टालने की मैने कितनी कोशिश की और मै कितना झुका इसकी कहानी शीघ्र ही आप लोगो को मालूम हो जाएगी। पर मै इतना ही कह सकता हू कि यह लडाई हमारे किए की नही है, हमपर लादी गई है।

'पर इस सस्था को जीवित बचाए रखने मे सबसे बडा हाथ आपका होगा। आपने अपना कर्तव्य बिना किसी डर या घबडाहट के पालन किया तो सस्था के सरक्षण मे तथा हमारी विजय मे कोई सन्देह नही।

'अपना यह 'युगान्तर' जनता का पत्र है, उसके सुख-दुख का प्रहरी है। हमारा अन्नदाता 'युगान्तर' है और 'युगान्तर' की अन्नदात्री जनता है। हम अपने अन्नदाता से, जो हमारा पालन-पोषण करता है, कभी बेईमान न हो, उसकी निष्ठा और वफादारी से सेवा करते रहें, तो वह हमे कभी भूखो मरने नही देगा। हमारे अन्नदाता का प्रतीक वह सर्वसाधारण जन है जो रोज इकन्नी खर्च करके हमारा दैनिक पत्र लेता है। वही हमारा पच परमेश्वर है जिसकी हमे निस्सीम भाव से सेवा करनी है।

'उसका राजनीति से या और दूसरे लडाई-झगडो से कोई सम्बन्ध -नही है। वह तो एक ऐसा अखबार चाहता है जो स्वतत्र हो, निर्भीक हो, सत्य, न्याय और धर्म का पक्ष लेकर चले। जो हमेशा जनता के कल्याण और मागल्य के लिए, सुख-समृद्धि के लिए, जागृति और सेवा के लिए ही जीता है, जो किसी दल-विशेष का, व्यक्ति-विशेष का समर्थक नही है, और जिसके दरवाज़े सबके लिए खुले हो, जिस किसीपर सार्वजनिक अन्याय या दुख-दर्द छाया हो, 'युगान्तर' उसका मित्र और सेवक है। अन्याय और अत्याचार का वह शत्रु है। व्यक्तियो से उसकी दोस्ती या बैर नही है, सिद्धान्तो और सार्वजनिक कार्य की रीति से ही है। आज उसकी शासन

से लडाई है, पर इसका अर्थ यह नही है कि वह शासन की हर चीज को कोसता ही रहेगा। नही, इस लडाई का पत्र की नीति से कोई सम्बन्ध नही है। पत्र तो अब भी शासन के शुभ और विधायक कार्यो का समर्थक रहेगा, अमगल और अन्याय के कार्यों का कठोर आलोचक रहेगा। हमारे व्यक्तिगत या सस्थात्मक सघर्ष के कारण पत्र की नीति मे तनिक भी कटुता नही आने पाएगी।

'प्रजातन्त्र मे पत्रकारिता का स्थान सर्वोपरि है। सफल प्रजातन्त्र के लिए निर्भीक और निस्स्वार्थ पत्रकारिता अत्यन्त आवश्यक है। जब सत्ताधारी दल के लोग पथभ्रष्ट हो जाते है, कर्तव्य-विमुख हो जाते है, और प्रजा के त्रास और पीडा के निमित्त बन जाते है तो अत्यन्त स्पष्ट और निर्भीक शब्दो मे उनकी भर्त्सना कर उन्हे सन्मार्ग पर लाने की कोशिश करना यह समाचारपत्र का कर्तव्य है। समाज मे सत्प्रवृत्तियो का प्रचार करने मे जो भी व्यक्ति या सस्था कार्य करती है, फिर वह शासन ही क्यो न हो, उसका समर्थन करना, उसकी ताकत बढाना हमरा धर्म है। हमे बिना किसी राग-द्वेष के अपना कर्तव्य-कर्म करते जाना चाहिए, और यह कदापि नही भूलना चाहिए कि प्रजातन्त्र मे जनता की प्रभुसत्ता ही सार्वभौम है, और जनता की आवाज़ परमेश्वर की वाणी है। उसकी हम निष्ठापूर्वक सेवा करते रहे तो हमारी विजय निश्चित है।

'मुकदमो के इन सत्रो के कारण सभव है कि मुझे उनकी तरफ अधिक ध्यान देना होगा। पर आप लोग, युगान्तर प्रेस और कार्यालय के कर्मचारीगण मेरी सेना है। आप यदि अपना काम यन्त्रवत् करते रहे, और उन आदर्शो के प्रति विमुख न हो जो कि हमारी मस्था की नीति का निर्धारण करते है, तो मुझे भविष्य के बारे मे तनिक-सी भी चिन्ता नही है।

'अदालतो मे कुछ भी होता रहे, पर हमारा दैनिक पत्र नियमपूर्वक समय से निकलता रहे, उसका प्रकाशन और उत्पादन व्यवस्थित ढग से हो, उसके स्टैंडर्ड मे किसी प्रकार की कमी न आए, हमारे ग्राहको, विज्ञापनदाताओ और आश्रय-दाताओ की हम ईमानदारी से चोख सेवा बजाए, तो इस सस्था को नष्ट करने वाला कोई नही है।

'प्रजातन्त्र मे पत्रकारिता को मन्दिर की तरह शुद्ध और पवित्र होना चाहिए। स्वार्थ या अर्थ-साधन के लिए उसका उपयोग उसकी पवित्रता और मागल्य को नष्ट करना है। विचारो की शुद्धता, न्याय-निष्ठुरता और सत्यधर्म का प्रचार ये

उसकी पूजा के साधन है। हम पत्रकार-जगत के निष्ठावान सेवक, शब्द-शक्ति के उपासक है, शब्द को ब्रह्म मानते है, और उसीके द्वारा जनता-जनार्दन की सेवा करते है। ऐसे सेवको का अमरपद अक्षय है, अक्षुण्ण है, सुरक्षित है। इसलिए मुझे अपनी विजय मे किंचिन्मात्र सन्देह नही है—बशर्ते कि मेरी सेना मेरा साथ दे, मेरे साथी मेरे साथ खडे रहे।'

सभी कर्मचारियो ने उठकर उत्साह के साथ आश्वासन दिया कि हम अन्त तक सस्था का और आपका साथ देगे। आप कोर्ट-कचहरी मे लडते रहिए, जो चाहे कीजिए, पत्र के प्रकाशन मे कभी कोई अन्तर नही पडेगा।

धनजय ने नम्रतापूर्वक हसकर सबको हाथ जोडकर प्रणाम किया। सब कर्मचारी उत्साह के साथ चिल्ला उठे—युगान्तर की जय ! धनजय बाबू की जय ! !

घर जाकर उसने गीता से कहा, 'अपना भीतर का किला तो मजबूत हो गया है, अब हमे केवल अपने शत्रु की तरफ ही देखना है '

पर अभी एक अग उसका कमजोर था। प्रत्यक्ष किले से तो उसका उतना सम्बन्ध नही था, जितना उसकी बाहरी शोभा मे था। वह उसी तरह था जैसे कि बाहर मिट्टी के या सगमरमर के शोभा के हाथी रहते हो। वे न खाते है, न काम करते है, सिर्फ महल की शोभा बढाते है। पर उनका स्वरूप सुन्दर, सुशोभित और अखण्डित बना रहना भी उतना ही जरूरी होता है।

वह कमजोर अग था—धनशेट्टिवार—युगान्तर कपनी का चेयरमैन। और उसीकी तरफ अब धनजय का ध्यान गया।

३२

धनशेट्टिवार चार-पाच साल से युगान्तर कपनी का चेयरमैन था। भीतर से वह समाजवादी पार्टी का सदस्य था, पर चूकि युगान्तर शासकीय दल का समर्थक था, वह अपने मतो का आग्रह नही रखता था, और न उन्हे लादने की कोशिश ही करता था। यो पत्र की नीति सर्वथा सपादक के अर्थात् धनजय के हाथ मे थी। डायरेक्टरो के कुछ भी मत-मतान्तर हो, उनका इस नीति-निर्धारण

ग्रौर सचालन से कोई सम्बन्ध नही। वे केवल उसका आर्थिक बाजू ही देखा करते थे और चूकि आर्थिक मामले मे धनजय बडा चोख था, कपनी का कार्य बडे सुचारु रूप से चलता था। धनशेट्टिवार को 'युगान्तर' की चेयरमैनी काफी फली थी। सबसे प्रभावशाली समाचारपत्र का चेयरमेन होने के कारण उसे बिजली के, रबर के माल के तथा अन्य धन्धो के काफी सरकारी कामकाज मिलते थे। कमाई अच्छी थी, समाज मे प्रतिष्ठा थी, अपने क्लब, सिनेमा, होटल, मित्र-परिवार मे बडी साख थी। सब तरफ से चादी ही चादी थी।

जब धनजय का जोशी जी से मतभेद हुआ तो वह मन ही मन खुश हुआ कि यह अच्छा मौका है जब पत्र की नीति समाजवादी पक्ष के अधिक अनुकूल बन सकेगी। उस सघर्ष मे उसने काफी दिलचस्पी ली।

पर जब एक फौजदारी मामले मे उसकी गिरफ्तारी हो गई तो वह सन्न रह गया। आई० सी० एस० की परम्परा मे पला हुआ आदमी—इस तरह की गिरफ्तारी से तो उसकी होटल-क्लब की सामाजिक दुनिया ही तितर-बितर हो गई। चूकि उसकी कपनी का मुख्य मन्त्री से झगडा हो गया था, सभी सरकारी अधिकारी अब उसे टालने लगे। आखिरकार वही उसकी असली दुनिया थी, क्योकि यद्यपि वह नौकरी से अवकाश-प्राप्त कर चुका था, उसी दुनिया मे रमा हुआ था और उसीके बीच मडराया करता था।

अब जब यह दुनिया ही खत्म होने पर आई तो वह भीतर ही भीतर घबडा गया, हालाकि ऊपर से बताने को बडी बहादुरी छाटा करता कि मै क्या परवाह करता हू? जगल मे अकेला आदमी अपना डर भगाने के लिए जिस तरह सीटी बजाया करता है उसी तरह उसकी बक-झक थी पर भीतर से तो उसकी पतलून ढीली हो गई थी। उससे भी ज्यादा असर उसकी पत्नी पर पडा जो अब भी लिपस्टिक, पुरुषो की तरह कटे बाल, शॉपिग और खानसामा-बावर्ची की दुनिया मे रहती थी। वह अपने पति से बोली, 'यह क्या हो गया? तुम इसमे कैसे फस गए? यह तो बडी मुसीबत हुई।'

धनशेट्टिवार ने अपने घबडाए हुए चेहरे से यही बात जब धनजय से कही तो वह तुरन्त समझ गया कि यह आदमी शेर का चमडा ओढे बहादुरी छाटता था, पर जब असली शेर की वीरता दिखाने का मौका आया तब लटपटा गया।

धनशेट्टिवार को लगा कि धनजय या उसके कर्मचारियो ने कही न कही हिसाब

मे जरूर गडबड की होगी तभी यह नौबत आई। शक्की आदमी था, इसलिए सोचता था कि लाखो रुपयो का लेन-देन हुआ है, कभी थोडा-बहुत मोह हो भी गया होगा। उसने भी कुछ कम्पनिया खोली थी, और सचालक गण कानून की गिरफ्त से बचकर किस तरह पैसा बनाते है यह वह जानता था। धनजय ने भी स्वाभाविकत ऐसा ही किया होगा, ऐसा भीतर ही भीतर उसे सदेह था, पर ज़ाहिर नही कर पाता था।

उसका सचमुच रोजमर्रा के हिसाब-किताब से कोई सम्बन्ध नही था, और उसको इस केम मे फसाना निहायत ज्यादती थी, यह धनजय जानता था। रण-दमन सिंह का सारा व्यापार जुल्म-ज्यादती पर ही तो चलता है, फिर मौका आने पर वह अपनी पुरानी दुश्मनी चुकाने का लुत्फ क्यो छोडे ?

धनशेट्टिवार ने धनजय को फोन किया कि भई, जरा फ़ुर्सत हो तो आ जाओ। सारी परिस्थिति पर विचार कर ले। उसकी आवाज मे डर का कपन था।

धनजय समझ गया कि यही कच्ची गोटी है, इसे जरा सम्हालना होगा। इस जानलेवा लड़ाई मे एक भी कडी कमजोर रही तो सर्वनाश निश्चित है।

वह जब धनशेट्टिवार के बगले पर पहुचा तो देखा कि वहा मुर्दनी छाई हुई है। वह और उसकी पत्नी बरामदे मे बैठे थे, हाथ पर हाथ धरे, हताश होकर। ऐसे लगता था कि जैसे घर मे कोई मर गया हो। हा, जिस विश्व मे वे विचरण करते थे उसकी इज्ज़त और प्रतिष्ठा तो सचमुच मरने पर आ गई थी, फिर उन्हे शोक न हो तो किसे हो ?

'क्यो भई, हिसाब-किताब की क्या गडबड है ? अब इस परिस्थिति मे क्या किया जाए ?' धनशेट्टिवार ने पूछा।

'धेले की भी गडबड नही है, इसका मुझे पूरा विश्वास है। मै अपने आदमियो को जानता हू। पर अब उन्होने राजनीतिक कारणो से हमे फासा है तो उसमे झूठा-सच्चा कौन देखता है? जबर्दस्ती का ठेगा जो है ! वही भेडिये का किस्सा हुआ कि तूने गाली नही दी तो तेरे बाप ने दी होगी, इसलिए मै तो तुझे खाऊगा। जो खा डालने पर उतारू है वह न्याय-अन्याय की बात थोडे ही सोचता है ?'

'फिर ? अब क्या होगा ?'

'क्या, क्या होगा ? हमे लडना होगा, और डटकर लडना होगा !'

'पर हमारे पास साधन ही क्या है ? उनके पास तो तमाम सत्ता है, पुलिस

है, सरकारी वकील है, सरकारी पैसा है। यह तो एक राक्षस और बौने की लडाई है, इसमे हम क्या टिकेगे ?'

'क्यो नही टिकेगे ? उनका पक्ष अधर्म का पक्ष है, असत्य का पक्ष है, अन्याय का पक्ष है, वे हर्गिज नही जीत सकते।' धनजय ने दृढता से कहा।

धनशेट्टिवार प्रत्यक्ष व्यावहारिक जगत का आदमी था, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो की या आदर्शो की भाषा उसकी समझ मे नही आती थी। बोला, 'धर्म-अधर्म को कौन पूछता है धनजय बाबू ? यह तो ताकत और रिसोर्सेज (साधनों) का सवाल है। उसमे तो उनका-हमारा कोई मुकाबला नही।'

धनजय समझ गया कि उन दोनो के विश्व मे दो ध्रुवो का अतर है। असमानो का साथ या असगो का सग करने मे यही अडचन होती है। जोशी जी के साथ यही हुआ, और इधर धनशेट्टिवार के साथ भी यही हो रहा है। अभी तो लडाई की पहली सलामी हुई है, और यह पहले ही से हाथ-पाव ढीले कर रहा है।

पर वह जानता था, कि एक चेयरमैन के नाते कानूनी दृष्टि से वह बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। एक सहअभियुक्त के नाते उसने कमजोरी मे या घबराकर कोई उल्टा-सीधा बयान दे दिया तो नाहक निर्दोषो को फासी लग जाएगी और जीतने वाली बाजी हारी जाएगी। इसको मजबूत करना पहला काम है।

'उन्होने आपको नाहक इसमे फसाया, यह मै मानता हू—आपका तो दैनिक हिसाब-किताब से कोई सम्बन्ध नही था। उसके लिए तो दफ्तर ज़िम्मेदार है—मै जिम्मेदार हू।' धनजय बोला।

धनशेट्टिवार को यह सुनकर तसल्ली हुई, कुछ ढाढस बधा। उसको तो यही डर लग रहा था कि अब जो लोग फसे है वे अपनी निर्दोषिता साबित करने के लिए एक दूसरे पर जिम्मेदारी डालने की कोशिश करेगे। यदि धनजय ने अदालत मे कह दिया कि सब चेयरमैन के हुक्म से हुआ है तो मै तो बिना मौत के मरा !

यही एक डर था जो उसे धनजय के साथ बाधे हुए था, वरना वह तो कब का कूद-फादकर अलग हो गया होता।

'हा-हा, आप ठीक कह रहे है,' धनशेट्टिवार बोला। 'आप तो जानते है कि मै तो सिवा बोर्ड की मीटिग के और कभी आपके कामो मे ध्यान ही नही देता था ?

सोचता था कि आप लोग जिम्मेदार व्यक्ति है, कामकाज सभाल रहे है, मै क्यो बीच मे पडू ? पर यहा बिना मतलब के फसा दिया गया।'

'देखिए मिस्टर धनशेट्टिवार, आपका इसमे कोई दोष नही है, यह मै मानता हू और इसका खुले आम इजहार भी कर सकता हू। यदि दोष कोई है ही तो वह मेरा है, हालाकि मै जानता हू कि मेरा भी कोई दोष नही है। युगान्तर कम्पनी मे ऐसी कोई बात नही हुई है, जिसकी सफाई नही दी जा सकती हो या जिसके लिए नीचा देखना पडे। यह बिलकुल तय है। पर आपको अभियुक्त बनाना तो मेरे हाथ मे नही था, वह तो उनकी चाल है। इसके लिए भला मै क्या कर सकता हू ? फिर आपकी पोजीशन साफ करने के लिए आप जो कहे वह करने के लिए तैयार हू।'

धनशेट्टिवार इस बात से बहुत आश्वस्त हुआ। उसकी तथा उसकी पत्नी के चेहरे की मायूसी कुछ कम हुई और जरा-सी मुस्कराहट खिल उठी। शिष्टाचार के खातिर बोला

'अमुक करो या तमुक करो, यह मै नही कहता। आप जो ठीक समझे वह करे। पर यह लडाई है बडी 'सीरियस' और हमे बहुत सोच-समझकर ही कदम उठाना चाहिए।' वह बोला।

'यह भी भला कोई बताने की ज़रूरत है ? आपका तो इसमे बहुत ही सीमित हित अटका हुआ है। जिस वक्त मै कह दूगा कि दोष सर्वथा मेरा है, आपका नही है, उसी क्षण आपका चरित्र तो निष्कलक हो ही जाता है, मुकदमा भले ही चलता रहे। पर मेरा तो यहा सारा जीवन और चरित्र ही दाव पर लगा है। एक भी कदम उलटा पडा कि मेरा तो सारा खेल खतम हो जाएगा और 'युगान्तर' बैठ जाएगा। सौ परिवारो की रोजी नष्ट हो जाएगी और उसके लिए मैने जो रक्त दिया है वह अकारथ जाएगा। और फिर एक निर्भीक स्वतन्त्र पत्र के मर जाने से सार्वजनिक जीवन का जो नुकसान होगा वह तो अलग है ही। इसलिए इसे मै भला 'सीरियस' क्यो न मानूगा ? यह तो जीवन-मरण की लडाई है, यह मै जानता हू और यह भी जानता हू कि किन भयकर दुश्मनो से पाला पडा है।' धनजय ने आवेश मे कहा।

'यही मेरा कहना है,' धनशेट्टिवार ने कहा, 'उनका सारा रोष अखबार ही पर है। उसे ही यदि जब तक केस खतम नही होता तब तक के लिए बन्द कर दिया

जाए, तो क्या हर्ज है ? सस्था का सारा खर्च घट जाएगा और जो बचेगा उससे मुक-दमा मजे मे लडा जा सकेगा '

धनशेट्टिवार ने यह प्रस्ताव इसलिए किया कि धनजय डरा-धमकाकर दबने वाला आदमी नही है। शासन के आक्रमण का जवाब, ईट का जवाब पत्थर से देगा। उसकी लेखनी मे लोहा है, और अब तो वह आग बरसाएगा। इस आग मे घी डालने का काम होगा, और उसमे जो दावानल भडकेगा उसमे मै भला टिक सकूगा ? मै, मेरे उद्योग-धन्धे, जिनमे पचास बार सरकार से काम पडता है, मेरा शराब का परमिट, मेरी सारे सुख और आराम की दुनिया ! !

धनजय और धनशेट्टिवार के विचारो मे जमीन-आसमान का अतर था। और फिर यह तीन पैरो की लगडी दौड ! यह कपनी क्या हुई जी का जजाल हो गई। इस आवले की मोट को बाधे-बाधे वह कहा तक फिरता रहेगा ? अब तक वह अपने आपपर बहुत नियत्रण कर रहा था, पर अखबार बन्द करने की बात सुनते ही वह भडक उठा, 'अखबार क्यो बन्द किया जाए ? वह क्या मेरी या आपके बाप-दादा की जायदाद है ? या मुख्य मत्री की ? वह तो जनता का पत्र है, जनता के साथ द्रोह करे तभी वह बन्द हो सकता है। आपके हाथ-पाव ढीले पड गए हो, मेरे तो नही पडे है। मेरे और मेरे सहयोगी कर्मचारियो का इसमे खून लगा है। वे सब कहा जाएगे ? आपको क्या लगता है कहने को कि अखबार बन्द कर दिया जाए ! हमारे दुश्मन भी तो यही चाहते है ?'

'नही-नही, मैने उस मतलब से नही कहा, केवल लडाई की सुविधा की दृष्टि से कहा।' धनशेट्टिवार ने नरमाकर सफाई पेश की।

'लडाई की सुविधा के लिए ही अखबार का चलना निहायत जरूरी है और वह चलेगा। वह तो मेरे लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना अर्जुन के लिए गाण्डीव धनुष। मै जेल मे चला जाऊ तब भी वह चलेगा—मेरे साथी उसे चलाएगे। अखबार यदि बन्द कर दे तो हमारे दुश्मन तो हमे नोच-नोचकर खा डालेगे, जनता के कानो तक खबर तक नही पहुचेगी। जब हमारे और शासन के बीच युद्धपर्व चल रहा है तो उसका इन्साफ तो जनता ही करेगी न ? आखिर जनता शासन की भी मालिक है और हमारी भी।'

'पर अपने खिलाफ सरकारी चालान से जो वातावरण बिगड गया है वह कैसे सुधरे ?'

'वह सब मै सुधार लूगा, बशर्ते कि आप घुटने न टेक दे और मै जो करता हू, उसमे दस्तदाजी न करे।'

'वह मै नही करूगा, पर मुझे व्यक्तिगत रूप से मेरी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए जो-जो करना पडे उसमे आप भी मत पडिएगा।'

'उसे मै भला कैसे रोक सकता हू ? आपको जिस तरह अभियुक्त बनने से नही बचा सका उसी तरह आपके अभियोग को धोने के लिए आप जो करना चाहे उससे मै आपको मना भी नही कर सकता, बशर्ते कि उससे हम सबके कॉमन डिफेन्स (बचाव) मे फर्क न पडे।'

'नही, उसमे फर्क नही पडेगा क्योकि 'डिफेन्स' की बुनियाद तो आपके स्टैण्ड पर ही रहेगी।' धनशेट्टिवार ने आश्वासन दिया।

'तो ठीक है, मै अब चलता हू। आप चिन्ता मत कीजिए मिसेज धनशेट्टिवार।' धनजय ने उठते हुए कहा, 'तीन दिन के भीतर ही हमारे खिलाफ का सारा वातावरण बदल जाएगा। मै खुद चाहता हू कि आपके पति इस बला से सबसे पहले छूटे।'

मिसेज धनशेट्टिवार अपने काजल लगे नेत्रो को विस्फारित कर उसकी ओर देखने लगी, मानो पूछ रही थी कि यह सब कैसे होगा ? अब उनके चेहरे पर मायूसी नही थी, कुछ उत्साह ही आ गया था। धनजय की कार्यशक्ति के बारे मे अपने पति से उसने जो सुन रखा था उससे उसे विश्वास तो हुआ कि वह जो कहता है सो करेगा। पर कैसा करेगा इसका कुतूहल बना रहा।

पर अब दोनो पति-पत्नी आश्वस्त थे, और उनकी हिम्मत लौट आई थी। धनजय के जाते ही मिसेज धनशेट्टिवार ने अपनी सहेली मिसेज आर्डेशर को फोन किया कि 'आओ डियर। अपने हजबैण्ड को लेकर आ जाओ। आज यही ब्रिज पार्टी उडे।'

३४

धनजय सीधा घर गया और बोला, 'गीता, वह धनशेट्टिवार अच्छा डर-पोक निकला। वह तो सारे हथियार डालकर बैठा था। पर उसे अब थोडा गरम करके आया हू इसलिए लगता है घोडा कुछ दूर तक अब चलेगा। जब तक इस केस के कारण उत्पन्न वातावरण नही बदलता तब तक शायद वह घर से नही निकलेगा।'

'वातावरण बदलने के लिए अब तुम क्या करोगे ?'

'एक स्टेटमेट लिखूगा, जिसमे मुझे 'युगान्तर' कम्पनी की स्थापना, प्रगति और सघर्ष का पूरा इतिहास देना होगा और जोशी जी के बारे मे वे सब तथ्य देने पडेगे जिन्हे मै टालना चाहता हू। उसीके लिए मैने तुम्हे शान्ति-दूत बनाकर भेजा था। पर उन्होने तुम्हारा जाना मेरी कमजोरी समझा और अपमानास्पद शर्ते पेश की जो मै कभी भी स्वीकार नही कर सकता था। उसका जवाब मेरी गिरफ्तारी से दिया। अब जब उन्होने मुझे अपराधियो और खयानतदारो की श्रेणी मे बिठालने का प्रयत्न कर ही डाला है, और पहला गोला भी चला दिया है, तो अब मुझे पूरा-पूरा सत्य उघाडकर ही रखना होगा कि कौन अपराधी और कौन खयानत-दार है। अगर मै हू तो, चूकि वे मेरे पार्टनर है, वे कैसे इस इलजाम से बच सकते है ?'

'हा, अब तो तुम्हे दूसरा कोई चारा भी नही है। उन्होने तो तुम्हारे लिए एक चीज़ भी नही रख छोडी और सारे दरवाज़े बन्द कर दिए। अब तुम जो करना चाहो, उसे कौन रोक सकता है ?'

धनञ्जय भोलानाथ के यहा गया और धनशेट्टिवार के यहा जो किस्सा हुआ था, वह जाकर कह सुनाया।

'तुम भी अजीब आदमी हो धनजय। कैसे-कैसे चुगद लोगो का तुमने साथ किया ? न जोशी जी तुम्हारी वृत्ति के आदमी है न यह धनशेट्टिवार ! असमानो की दोस्ती कभी सुखदायी नही होती।'

'सो तो ठीक कहते हो भोला। पर अब गलती तो हो गई। यह कपनी का कारोबार कुछ अजीब होता है जिसमे दस जनो की लकडी ढोनी पडती है। मेरा पुराना 'युगान्तर' बना रहता तो मै खूब मज़े मे रहता। न उधो का लेना न माधो

का देना। अपनी झोपडी मे बादशाह बना रहता। पर फिजूल आदर्शों की मरीचिका मे यह कर गया, सो अब भुगतना तो होगा ही।'

'तुम्हारे और इनके आदर्शो मे कोई समानता भी है ? जोशी जी आदर्शो का नाम लेकर चले तो सत्ता के लोभ और मोह मे अपने आदर्शों को ही भूल गए है, उन साथी-सगियो को भी, जिनकी साधना और तपस्या से वे उस पद पर जा बैठे है। जिन्होने कधे से कधा भिडाकर काम किया, उन्हे ही, जरा-से मतभेद पर, जेल की हवा खिलाने पर उतारू हो गए, और वह भी घृणित जुर्म मे। वाह री दुनिया ! और यह धनशेट्टिवार ! जिन्दगी भर अग्रेजी सरकार की नौकरी की और स्वराज्य मिलते ही रोजगार-धन्धे मे घुस गया और टकसाल बनाने लगा। एक फूटी कौडी का भी त्याग उसका नही है, आदर्श की बात तो छू तक नहीं गई है। उसकी क्या औकात है कि वह तुम्हारे जैसे साधु पुरुषो की कपनी का चेयरमैन बने। और एक तुम हो कि उसे सिर पर लेकर नाचते हो।'

'क्या करू भोला ? तुम जो कहते हो सो ठीक कहते हो। सीधेपन के कारण कहो, या अत्यधिक विश्वास कर लेने के कारण कहो, या आदमियो को परख न कर सकने के कारण कहो, जो गलती हुई है उसका दण्ड तो भोगना ही होगा। यह लाछन शायद उसीका परिणाम हो।'

'अरे छोडो इस गलती-वलती को। जो तुम्हे जेल का रास्ता बता रहे है उनसे तो पूछो कि वे कितने चूहे खा चुके है ? कोई फिक्र की बात नही। लडाई सिर पर आ ही गई है तो कहना कि लड लेगे। तुम भी अब क्यो छोडते हो ? दो एक बत्ती। सिर्फ एक बात पर अटल रहना कि एक क्षण के लिए भी सत्य से मत डिगना, सजा भले ही हो जाए। जो सत्य है वही भगवान का स्मरण करके सही-सही कहना। न अपनी ओर से रग मिलाना और न नमक-मिर्च। सत्य कभी छिपा नही रह सकता, एक नही हजार मुख्य मन्त्री सिर पटक के मर जाए तब भी सत्य की विजय हुए बिना कभी नही रह सकती। यह ब्रह्मवाक्य लिख लेना '

धनजय ने भोलानाथ को छाती से लगा लिया। गद्गद होकर कहा, 'इतने दिन कहा छिपे थे मेरे दोस्त ? मेरे सुख और प्रभाव के दिनो मे कही नही दिखे और मेरे दुर्दिनो मे अकस्मात् मेरा साथ देने चले आए, जैसे अकस्मात् भगवान की कृपा बरस पडी हो।'

'दुर्दिन-उर्दिन कुछ नही है धनजय। अत्याचारी को कभी फायदा नही होता,

श्रौर जो निर्दोष ग्रादमी को सताता है उसका कल्याण कभी नही होता। सतो का वचन है

'दुरबल को न सताइऐ, जाकी मोटी हाय। बिना जीव की स्वास ते, लोह भस्म ह्वै जाय। अरे, रावण का राज्य नही रहा तो जोशी जी का क्या रहेगा ? तुम एक मिनट के लिए भी चिन्ता मत करना। मै तुम्हारे साथ हू, श्रौर बाबा जी मेरे साथ है।'

'बाबाजी ? कौन बाबाजी भोलानाथ ?'

'ये एक अपने इलाके के ही सत है। कृष्ण भगवान के परम भक्त है। बहुत पहुचे हुए है। उन्होने यदि तुम्हारी पीठ पर हाथ रख दिया तो समझ लो कि तुम तर गए। मै तुम्हे ले चलूगा उनके दर्शन को।'

'जरूर, भोला, मै तुम्हारा बडा ग्रहसान मानूगा। इस समय तो मेरे पास सिवा ईश्वर की कृपा के श्रौर कोई सहारा नही है।' धनजय बोला।

'वही सबसे बडा सहारा है। अठारह ग्रक्षौहिणी सेना एक तरफ है श्रौर चक्र-धारी कृष्ण एक तरफ। जिस ग्रोर कृष्ण है, उस ग्रोर विजय निश्चित है। यह हजारो वर्षो का पुराना कथन है। बाबाजी कृष्ण भगवान का ही ग्रश है। वे तुम्हारा साथ ग्रवश्य देगे, क्योकि तुम्हारा पक्ष न्याय का पक्ष है, श्रौर तुम ग्रन्याय श्रौर जुल्म के शिकार हो।' भोलानाथ ने कहा।

धनजय को बडी सात्वना मिली श्रौर उसकी हिम्मत दुगनी हो गई। उसका हृदय भोलानाथ के लिए कृतज्ञता से भर गया।

वह सीधा घर ग्राया श्रौर ठाकुर जी के सामने धूप-दीप जलाकर उनका ग्राशी-र्वाद लेकर ग्रपना बयान लिखने बैठा

लिखने बैठा तो लिखता रहा, लिखता ही रहा। न खाने की सुध न पीने की। न सोने की इच्छा न ग्राराम करने की। जैसे उसका हृदय कचोट रहा हो, पीडा से मर्माहत हो रक्त का एक-एक कतरा बहाकर लिख रहा हो, जैसे रक्त श्रौर ग्रासुग्रो से मिलकर ही उसकी स्याही बनी हो।

चरित्र पर इतना बडा लाछन ! पैसे खाने का ग्रभियोग, झूठे हिसाब श्रौर दस्तावेज बनाने का, जालसाजी का इलजाम !

स्वप्न मे भी कभी नही सोचा था कि उसे विष का यह प्याला पीना पडेगा, वह भी जोशी जी के हाथ, जिन्हे एक बार उसने पितृ-तुल्य मानकर ग्रपने हृदय का

सारा स्नेह और आदर समर्पित किया था ! और आज वे सत्तात्मक राजनीति के नशे मे मदहोश होकर उसके सत्व की हत्या करने के लिए ही तुल पडे है ? कहा तो वे उसे अपनी पहली नम्बर की सरकारी मोटर मे बराबर मे बिठाकर घूमाया करते थे, और अब चूकि मतभेद हो गया है, वे उसे एक दरोगा के हाथ हथकडी लगवाकर पुलिस की काली मोटर मे जेल की हवा खिलाने का षड्यन्त्र रच रहे है !

एक बार वह जेल गया था, उसी तरह की पुलिस की काली मोटर मे बैठकर, जब अग्रेजो का राज था, और वह उनका विद्रोही था, जिसका उसे गर्व था ।

पर आज की यह जेल ! स्वतत्र भारत मे स्वतत्रता के सग्राम मे कन्धे से कन्धा भिडाकर लडने वाले मित्रो का मित्रो के प्रति यह व्यवहार !

उसका यह कहना नही था कि यदि उसने कोई जुर्म किया हो तो उसके साथ इसलिए रियायत की जाए कि वह राष्ट्रीय सग्राम का सैनिक था । पर कोई जुर्म भी तो हो । जिनके हाथ कृष्णकृत्यो से काले रगे हुए हो, वे दूसरे पर उगली उठाए, जो स्वय काच के मकान मे रहते हो वे दूसरे के मकान पर पत्थर बरसाए, इससे बढकर विडम्बना क्या हो सकती है ?

क्या उसने कभी यह भी सोचा था कि जिस स्वतत्रता के लाने मे उसने आसुओ और रक्त का अर्घ्य दिया था, उस स्वतत्रता मे उसे स्वर्ण विहान देखने की बजाय घृणित अपराध का अभियुक्त बनकर कारा की दीवारे देखनी पडेगी ?

यह विचित्र छलना क्यो ? ऐसा दण्ड किसलिए ? और विधि की यह अकल्पित और अनपेक्षित लीला क्यो ?

इसीलिए कि सत्ता-सुन्दरी के बाहुपाशो ने हमारे विवेक को हर लिया है और कामातुरो की तरह हमे न भय और न लज्जा रह गई है ।

हमारे पास सत्ता है, इसलिए हम जो कहते है वह मानो, वरना हम तुम्हे चौपट कर देगे । इसमे योग्यायोग्य का, न्याय-अन्याय का कोई सवाल ही नही उठता ।

पर यह तो सीधी हिंसा हुई, क्रूर, नग्न, अभद्र । इसके सामने, धनजय, यदि तू और तेरा अखबार युगान्तर दब गया तो एक सर्वसाधारण नागरिक की बिसात ही क्या ? उसकी चटनी बनने मे क्या देर लगेगी ? फिर मदान्ध सत्ता का हौसला कितना बढ जाएगा ? उसका रौरव नृत्य किस पाशविकता से चिंघाड उठेगा ?

नही धनजय, नही । इस अशोभन पाशविकता के लिए, इस निर्मम अत्याचार

के लिए, ताकत के इस निर्लज्ज प्रदर्शन के लिए स्वतत्रता नही चाही थी। लक्ष-लक्ष शहीदो का रक्त मुट्ठी भर लोगो के भोग-विलास और अह की तृप्ति के लिए नही गिरा था। हा, एक बार इन लोगो ने भी त्याग का नाटक खेला था, इनमे से कुछ लोगो ने तो यथार्थ मे त्याग का यज्ञ ही किया था, पर अधिकाश तो परिस्थिति की मजबूरी से और अपनी अनिच्छा से ही इस त्याग के नाटक मे खीचे गए थे, और उसमे इसीलिए चिपके रहे कि न चिपकने से मुह काला होगा। गाधीजी की कृपा कि थोडे ही से त्याग से देश स्वतत्र हो गया। पर गाधी जी का प्रयत्न तो दो शताब्दियों की बलिदान-परम्परा के पाये पर बने हुए रक्तरजित मन्दिर का कलश बना। समय की गति से जो कलश पर जा बैठे उन्हे क्या मालूम कि पाये के भरने के लिए कितनी मागो का सिन्दूर पुछा, सौभाग्य की कितनी चूडिया टूटी, शहीदो की कितनी आहे और कराहे निकली, शोणित की कितनी नदिया बही ? जो बन्ध्या है वह प्रसव-वेदना क्या जाने ? जो किराये के मकान मे रहता है उसे क्या चिन्ता कि इस मकान मे आग लगती है, या नही । पर जिसने अपने हाथ से अपने पसीने से मकान बनाया है वह उसमे आग कैसे लगने देगा, भले ही वह घर का चिराग ही क्यो न हो ? जिसने जीवन की समस्त श्रद्धा, समस्त निष्ठा, समस्त परिश्रम, समस्त स्वप्नो और आदर्शो की आहुति देकर भारतीय स्वतत्रता के गगनचुम्बी मन्दिर को बनाया हे, वह उसे आततायियो के हाथ से भग्न और खण्डित कैसे होने देगा ? यह मन्दिर केवल इसी पीढी की बिरासत नही है, यह तो आने वाली असख्य पीढियो की धरोहर है जिसकी हमे अपने प्राणो के साथ रक्षा करनी है।

माना कि इन आततायियो मे वे लोग भी शामिल हो गए है, जिन्होने कल कष्ट भोगा था, त्याग किया था। तब हमने उनकी पूजा की, और उन्हे सिरपर लेकर हम नाचे।

पर आज जब वे स्वार्थ और भोग मे लिप्त है, और उस त्याग की पूजी पर अपना घर भरने का अनाचार कर रहे है तो उन्हे सिर से उतारकर उन्हे दण्ड देना भी हमारा कर्तव्य हे। वे स्वजन हो या परजन हो, हमे इस मोह मे पडना ही नही है। जिन्हे धर्मरूपी राम और सेवारूपी वैदेही प्रिय न हो उन्हे तो—'तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।' क्योकि,

तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कत ब्रजबनितनि, भये मुद-मगलकारी !!

इसलिए धनजय, तुम्हारा मार्ग स्पष्ट है ! कर्तव्य-कर्म तुम्हे फिर बुला रहा है। उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! उठो, जागो ! और श्रेष्ठ पुरुषो ने जो मार्ग बताया है उसका असनुरण करो।

३५

तीन दिन और तीन रात के समुद्र-मथन के बाद धनजय का बयान तैयार हुआ। तीन दिन और तीन रात तक उसके लिए सारी बाहरी दुनिया बन्द हो गई थी। वह अकेला था, उसके साथ उसका आत्मदेवता था, और शब्दो के माध्यम से वह उससे बोल रहा था।

बयान लेकर भोलानाथ एडवोकेट के घर गया, 'भोला, इसे आज ही कोर्ट मे दाखिल करना है।'

'आज ही ? क्यो, इतनी जल्दी क्या पडी है ? वह तो जब अभियुक्त का बयान फाइल करने की स्टेज आएगी तभी किया जा सकता है।'

'नही भोला, यह कानून के प्रोसीजर की बात नही है। इसे तो अब अविलम्ब जनता के सामने जाना ही चाहिए। यदि यह आज अदालत मे पेश नही किया जा सकता तो मै कल सुबह इसे 'युगान्तर' मे प्रकाशित कर दूगा। फिर भले ही कटेम्प्ट ऑफ कोर्ट (अदालत की मानहानि) हो। वह मुकदमा लड लेगे क्योकि मेरा मतव्य अदालत का मानभग करने का थोडे ही है, सत्य का उद्घाटन करने का है।'

'यार धनजय, तुम बडे जिद्दी हो। कानून-वानून तो जानते नही, न जाने कहा घपला कर दोगे।'

'भोला, ये बाते कानून की किताबे पढकर नही होती। ज्वालामुखी का स्फोट ज्योतिषियो के पचाग की बाट नही देखता। मन का उबाल यदि बाहर न निकले तो मेरा तो दम घुटकर ही मरण हो जाएगा।'

भोलानाथ समझ गया कि यह बात ही कुछ दूसरी है। बोला, 'दिखाना तो अपना स्टेटमेट।'

धनजय ने उसे निकालकर दिया। अपना चश्मा लगाकर, जिसकी एक डण्डी

टूट गई थी, भोलानाथ ने उस वक्तव्य का एक-एक शब्द प्रस्तर मूर्ति बने दत्त-चित्त होकर पढा। धीरे-धीरे भोलानाथ की काया ही पलटने लगी, उसका शरीर कापने लगा, ओठ थरथराने लगे, क्रोध और विषाद की मिश्रित भावनाओ से उसका हृदय भर आया। स्टेटमेट समाप्त होते ही उसने एक दीर्घ वाष्पोच्छ्वास लिया और बोला, 'यह स्टेटमेट क्या है, यह तो तुम्हारे अन्तरात्मा की आवाज है, भगवान की वाणी है, इसे मै कैसे रोक सकता हू ?'

भोलानाथ उठा, और बाबाजी के चित्र के सामने कपूर और अगरबत्ती लगाकर वह वक्तव्य उनके सामने रखकर बोला, 'सत शिरोमणि देवाजी महाराज ! मेरे मित्र की लाज रखना !'

फिर दोनो मित्रो ने सलाह की और उसके मुताबिक अपराह्न को साढे चार बजे के करीब धनजय सोहनसिह मजिस्ट्रेट की अदालत मे हाजिर हुआ। साथ मे भोलानाथ था।

अदालत पाच बजे बन्द होती थी, और सोहनसिह थका हुआ घर जाने की तैयारी कर रहा था। उसे शाम की बोतल की याद आ रही थी। शहर मे शराबबन्दी थी इसलिए वह चोरी-छिपे देशी शराब या ठर्रा पीता था। पर 'युगान्तर' केस के फाइल होते ही पब्लिक प्रॉसिक्यूटर गुप्ता ने दौड-धूप करके उसे एक परमिट दिला दिया था। उसीकी खुशी मे सोहनसिह मस्त था।

धनजय को देखते ही सोहनसिह पहचान गया। जोशी जी के साथ कई बार सभा-सोसाइटियो मे उसे देखा था। थोडा सहम गया, और सहमकर बैठ गया। आदर के साथ बोला

'कहिए ?'

'साहब, धनजय बाबू एक स्टेटमेट फाइल करना चाहते है ?' भोलानाथ ने अदालत से कहा, 'इनका 'युगान्तर' वाला मुकदमा आपकी अदालत मे पेश है।'

'सो तो है। पर यह स्टेटमेट फाइल करने की कौन-सी स्टेज है ? अभी तो अभियुक्त अदालत मे भी पेश नही हुए है—महज गिरफ्तारी ही तो हुई है।'

'लेकिन अभियुक्त को तो किसी भी समय कोई भी कागज फाइल करने का हक है। आप उसपर क्या राय बनाते है, यह अलग बात है, और वह तो सर्वथा आपके अधिकार की बात है। पर कागज लेने से तो इन्कार नही किया जा सकता।' भोलानाथ ने बहस की। सोहनसिह मजिस्ट्रेट भोलानाथ की बुद्धिमानी और अनुभव के

सामने जरा दवता था। भोलानाथ ने उसे कई बार अडचनो से बचाया था। जो गैर-कानूनी ढग से शराब पीते है, और उसके बिना एक दिन भी नही रह सकते, उनकी अडचनो का क्या पूछना ? पर शराब पीने वाले लोगों मे अक्सर एक प्रकार की उदारता और हृदय की विशालता रहती है, तबीयत का फक्कडपन रहता है।

सोहनसिह ने धनजय का स्टेटमेट हाथ मे लिया और सरसरी तौर पर उलट-पुलटकर देखा।

'यह तो बहुत बडा है।' वह बोला।

'जी हा,' धनजय ने कहा। 'आखिर मुकदमा भी तो बहुत बडा है। मुझे उसकी सारी पृष्ठभूमि समझानी पडी। इसमे कुछ आत्मस्वीकृति भी है। सभव है इससे आपका काम भी आसान हो जाए।'

'अच्छी बात है। आप इसके प्रत्येक पृष्ठ पर अपने दस्तखत कर दीजिए।' मैजिस्ट्रेट ने कहा।

धनजय के दस्तखत होते-होते घडी ने पाच बजा दिए। मजिस्ट्रेट ने एक ऑर्डर-शीट ली और लिखा कि अभियुक्त ने आज एक बयान पेश किया। वह रिकॉर्ड पर ले लिया जाए। मुशी को बुलाकर केस की फाइल मे इसे लगाकर बस्ता कसकर बाधा और कहा

'इसे ताले मे बन्द कर दो और चाबी मुझे दे दो।'

धनजय ने मजिस्ट्रेट को धन्यवाद दिया और नमस्कार करके बाहर निकल आया।

भोलानाथ ने थोडी देर तक सोहनसिह की हलचलो पर नजर रखी, और जब उसे भरोसा हो गया कि वह केस का बस्ता घर नही ले गया, और वह अदालत की अलमारी मे ही बन्द है, तब वह भी वहा से चल दिया।

धनजय सीधा प्रेस मे गया, और उस स्टेटमेट की प्रति कम्पोज करने के लिए दे दी। प्रेस के आसपास अपने ही विश्वासी आदमियो का पहरा लगा दिया कि कुछ भी हो जाए, अगली प्रात काल के 'युगान्तर' मे यह वक्तव्य प्रकाशित होने मे कोई फर्क न पडे।

रात भर वह आखो मे तेल डालकर कम्पोजिग और छपाई की देख-रेख करता रहा।

पुलिस को इसकी खबर तक न लगी। उसके सर्वेसर्वा और युद्ध-सचालक राय-

साहब रणदमन सिह इस समय सुरा-सुन्दरी के पाशो मे मदहोश पडे थे। धनजय को जेल मे भिजवाने की साजिश मे उन्हे जो प्रारभिक विजय मिली थी उसकी खुमारी अब तक उतरी नही थी।

दूसरे दिन प्रात काल मुह अधेरे ही अखबार बेचने वाले लडको ने शहर की गली-गली मे चिल्लाना शुरू किया—'मुख्य मत्री पूरणचन्द्र जोशी मेरे साथ अभियुक्त के कटघरे मे खडे हो!'

'युगान्तर के सम्पादक श्री धनजय का अदालत मे सनसनीखेज बयान!!'

'मदान्ध सत्ता के नग्न प्रदर्शन की रोमाचकारी कहानी!!'

'ताजा युगान्तर एक आना! लीजिए नया समाचार पढिए! ताजा युगान्तर एक आना!!!'

गली-गली मे, कूचे-कूचे मे, घर-घर मे, बाजार-बाजार मे, होटलो मे, मोटर-बसो मे, सब जगह यह आवाज़ गूज उठी।

'मदान्ध सत्ता के नग्न-प्रदर्शन की रोमाचकारी कहानी!'

'ताज़ा युगान्तर एक आना!!'

३६

धनजय ने फर्स्टक्लास मजिस्ट्रेट श्री सोहनसिह की अदालत मे जो बयान दाखिल किया था उसमे उसने अपने और जोशी जी के सम्बन्धो की पूरी पृष्ठभूमि दी थी और स्वातत्र्य सग्राम के जमाने मे जेल की मैत्री का उल्लेख किया था। आदर्शो की पृष्ठभूमि पर वे कैसे निकट आए, उन दिनो जोशी जी कैसे उदार-चरित और उज्वल गुणो के व्यक्ति थे, कैसे उन्होने साथ मिलकर प्रदेश की सेवा करने का व्रत लिया था, स्वातत्र्योत्तर भारत मे किस प्रकार नव निर्माण के कार्य मे, प्रजातन्त्र की स्वस्थ एव शुद्ध परम्पराओ को डालने मे, तथा देश और प्रदेश की सुख-सपन्नता के विधायक कार्य मे सहयोग देने की बात तय हुई थी, और किस प्रकार यह निर्णय हुआ था कि दोनो अपने-अपने क्षेत्रो मे इन ध्येयो के अनुसार कार्य करेगे—जोशी जी शासन के क्षेत्र मे, और धनजय पत्रकारिता के क्षेत्र मे।

धनजय का आदर्श और मार्ग बिलकुल स्पष्ट था, इसलिए कैसे उसने विधानसभा या पार्लमेण्टरी जीवन मे जाने से इन्कार कर दिया, और किस तरह वह तन-मन से पत्रकारिता के क्षेत्र मे कूद पडा आदि बाते थी।

बाद मे यह बताया गया कि किस प्रकार युगान्तर कम्पनी की स्थापना हुई, कैसे जोशी जी के व्यक्तिगत पत्र का तथा धनजय के साप्ताहिक का सौदा हुआ, क्या-क्या रकमे उन्हे मिली, उनका कैसे विनियोग हुआ, और नई सस्था के सचालन की कैसी व्यवस्था निश्चित की गई, और किस प्रकार जोशी जी का आर्थिक हित नई सस्था मे भी सुरक्षित रखा गया। बाद मे यह बताया गया था कि उसकी पूजी का सचय कैसे हुआ, किन्होने किन कारणो से पैसा लगाया और धनजय ने कम्पनी के लिए किस वृत्ति से उसे स्वीकारा।

फिर यह बताया गया कि कैसे धीरे-धीरे सत्ता के सान्निध्य मे और उसका उपभोग करने मे जोशी जी की आदर्शवादिता शिथिल होती गई और किस प्रकार स्वार्थी और सुखासीन खुशामद करने वालो की सलाह और प्रभाव के कारण वे शासकीय भ्रष्टता को न केवल सरक्षण ही देने लगे लेकिन जाने-अनजाने उसे प्रोत्साहन भी देने लगे। और किस प्रकार धीरे-धीरे उनके निष्कलक चरित्र को तपोभ्रष्टता का ग्रहण लग गया, ठीक उसी तरह जैसे राहु चन्द्रमा को धीरे-धीरे ग्रस लेता है।

शैतान का हमेशा यही तरीका रहा है कि वह पहले प्रलोभनो से मन आकर्षित करता है, फिर बुद्धि-भ्रश करता है, विवेक-शक्ति को क्षीण बना देता है, ताकि हम अपनी फिसलन को देख नही पाते, और देखते है तो उसको न्यायोचित और अनिवार्य मानने के लिए दलीले खोजा करते है। यह आत्मवचना और अपने आपको धोखा देने की वृत्ति हमे रसातल की ओर ले जाती है। उसमे फिर अधिकार के मद के कारण और भी बुराई आ जाती है। खुशामद की आदत पड जाती है, मधुर असत्य आकर्षक लगने लगता है, अप्रिय सत्य सुनने की इच्छा नही रहती, विरोध बर्दाश्त नही होता, और विरोध यदि शात नही होता तो उसका सिर किसी भी मार्ग से कुचलने का लालच आ जाता है, और क्षुद्र और स्वार्थी आदमियो के प्रभाव के कारण सत्ता का दुरुपयोग कर अपने विरोधियो को नष्ट करने की प्रेरणा होने लगती है।

सत्ता के कारण आसपास इन स्वार्थी, खुशामदी और क्षुद्र लोगो की एक ऐसी

मजबूत दीवाल खडी हो जाती है, जिसके कारण नि स्वार्थी, स्पष्टवक्ता और आदर्शवादी लोगो को वहा पहुचने की न तो क्षमता होती है न रुचि। धीरे-धीरे होता यह है कि समाज का जो स्वस्थ, सात्विक और उच्च अग है, जो समाज का भूषण है, जिसका चरित्र और चिंतन समाज को धारण करता है, वह शासन से खिचकर दूर चला जाता है, और इस तरह सत् और असत् शक्तियो के बीच की खाई और भी अधिक चौडी और गहरी होती जाती है।

नतीजा यह होता है कि शासन का स्तर गिरता जाता है, सज्जनो और सतो का उसे समर्थन नही मिलता, और राज-काज का राजसी गुण तामस की तरफ झुकने लगता है और जनता को त्रास होने लगता है, उसकी पीडा बढ जाती है, और प्रजा दुखी हो जाती है।

प्रजा की पीडा सज्जनो और सतो से देखी नही जाती, वे इसका प्रतिकार करते है, शासन उनके साथ छल करता है, जिसके कारण उसके नैतिक मूल्यो मे और भी क्षति होने लगती है। इस पतन के कारण वह और भी चिढता है, क्रोधित हो जाता है, मूढ हो जाता है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और उसका विनाश होने लगता है।

शासन-तन्त्र की इसी उत्थान और पतन की प्रक्रिया की पृष्ठभूमि मे मुख्य मत्री और युगान्तर की लडाई है। इस पृष्ठभूमि को समझ लेने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि कैसे जोशी जी ने युगान्तर को दबाने की, हथियाने की, उसे बर्बाद करने की कोशिश की और जब कोई भी बात न जमी तो फिर अपना अन्तिम अस्त्र निकाला—युगान्तर और उसके सम्पादक के चरित्र की हत्या।

'इसी प्रसग मे, न्यायाधीश महोदय, मै आपके सामने अभियुक्त बनकर खडा हू।' धनजय ने अपने बयान मे कहा, 'मुझपर झूठे हिसाब-किताब रखने का जालसाजी और फरेबी का इलजाम है। पर मुझे यह कहना है कि यदि मैने झूठे दस्तावेज बनाए है, और जालसाजी और फरेब किया है तो मेरे बराबरी के साझेदार जोशी जी कैसे इस इलजाम से बच सकते है? इसलिए, न्यायाधीश महोदय, सचाई और इन्साफ तो यही कहता है कि आज उन्हे भी कटघरे मे खडा होना चाहिए। जिस समय मेरे मकान की तलाशी ली गई उस समय उनके बगले की भी तलाशी ली जानी चाहिए थी, और जब मै गिरफ्तार किया गया तब उन्हे भी गिरफ्तार कर इस न्यायालय मे पेश किया जाना चाहिए था।'

'पर यह इसलिए नही हुआ कि वे मुख्य मन्त्री के पद पर बैठे है और मै एक सर्वसाधारण नागरिक हू। उनके पीछे शासन की शक्ति है, मेरे पास सत्य की शक्ति के सिवा और कोई शक्ति नही है।

'उसी सत्य को स्मरण कर मै स्वीकार करता हू कि अधिक विज्ञापनो की प्राप्ति के लिए मेरे कार्यालय के कर्मचारी ने जो किया वह अवाछनीय है, और उसकी जिम्मेदारी सर्वथा मै अपने कन्धो पर लेने के लिए तैयार हू। वह न होता तो अच्छा होता। पर उसमे किसीकी नीयत गैरकानूनी या नाजायज तरीके से लाभ उठाने की नही थी, और उसके कारण कम्पनी के हिसाब मे एक पाई की गडबडी भी नही हुई है। फिर भी वह गलत कार्य था जिसके लिए मै जनता से और इस न्यायालय से सार्वजनिक रूप से क्षमा मागता हू।

'पर इसमे भी मजा यह है कि यह सब कार्रवाई जोशी जी के कहने से हुई, क्योकि वे ही मेरे व्यावमायिक भागीदार थे, और समाचारपत्र की आर्थिक एव व्यावसायिक स्थिति दृढ बनाना उन्हीका उत्तरदायित्व था। मेरे ऊपर तो मुख्यत सम्पादन की जिम्मेदारी ही थी।

'जो बात उन्हे एक भागीदार के नाते मालूम थी उसका उपयोग उन्होने एक मुख्य मन्त्री के नाते किया, और वह भी अपने भागीदार के खिलाफ। व्यक्तिगत राग-द्वेष को शासन की मशीनरी के जरिये शमन करने का यह कौन-सा तरीका है? क्या इससे हमारे नैतिक और सास्कृतिक मूल्यो की, राजनीतिक या शासकीय मूल्यो की प्रतिष्ठा बढती है?

'मुझे खेद है कि मुझे इन सब बातो का स्फोट करना पड रहा है, और इसके लिए मुझे घोर लज्जा है। व्यक्तिगत मतभेदो की लडाई को बाजार के चौराहे पर लाना अच्छा नही। व्यक्तिगत रूप से मेरे ही चरित्र की बात होती तो सम्भवत मै बर्दाश्त कर लेता और अदालत मे अपने आपको निर्दोष साबित करने की कोशिश करता, और कुछ न करता।

'पर यहा तो जनता के प्रिय समाचारपत्र पर ही सीधा मरणान्तक प्रहार किया गया है, जो यदि सफल हुआ तो जनता का प्रहरी सो जाएगा और वे सारे परिवार जो उसके कारण अपनी आजीविका चला रहे है, निराश्रित हो जाएगे। इस पत्र का प्रतिपालन करने मे मैने अपने रक्त और घर्म-बिन्दुओ का अर्घ्य दिया है। उसकी हत्या मै खुली आखो कभी नही देख सकता। उसका सरक्षण करना मेरा आद्य

कर्तव्य है और उसी हेतु से मुझे आज यह वक्तव्य देना पड रहा है।

'मै फिर कहता हू कि मुझे यह कहते हुए बडा क्लेश हो रहा है क्योकि एक समय था जब जोशी जी के तथा मेरे सम्बन्ध बडे घनिष्ठ और मीठे थे, और वे मेरे लिए पितृतुल्य आदरणीय थे। आज भी मेरे मन मे उनके प्रति इसी प्रकार की भावनाए है।

'पर आज अधिकारो के नशे मे तथा अपने हलके सलाहगीरो के कान भरने के कारण ये अपने मित्रो को ही शत्रु मान बैठे है, और जिनकी सलाह उन्हे सर्वनाश के गर्त मे ले जा रही है, उन्हे मित्र मान रहे है। भगवान ही उन्हे योग्यायोग्य का निर्णय करने की शक्ति दे।

'जहा तक मेरा सम्बन्ध है, मेरी आत्मा स्पष्ट है, मेरा हृदय निष्कलक है, और मेरी विवेक-बुद्धि निर्दोष है। मुझे नही लगता कि मैने ऐसा कोई कार्य किया है जिससे नैतिक अध पतन की कोई बात हो या जिसकी योग्य और उचित सफाई न दी जा सके।

'फिर भी चूकि यहा मै एक क्रिमिनल के नाते घसीटा गया हू तो फिर आपके सामने हाज़िर हू ही। जो-जो सबूत आपके न्यायालय के सामने आएगा उसका जवाब देने के लिए मै तैयार हू।

'पर मै अपने पुराने दोस्तो को आगाह करना चाहता हू कि बने हुए झूठे केस अन्त तक कभी नही टिकते और सत्य का कितना भी विपर्यास करो, वह छप्पर फाडकर बाहर निकल पडता है और सर पर चढकर बोलता है।

'गाधीजी के चरणो के पास बैठकर नम्रतापूर्वक मैने उनके सिद्धान्तो का अध्ययन करने की कोशिश की है, और अपनी अल्पबुद्धि और शक्ति के साथ मै उनका अनुसरण करने का प्रयत्न करता हू। उनकी दो बातो का मुझपर बहुत गहरा प्रभाव पडा है। एक तो यह कि सत्य का पथ कभी मत छोडो और दूसरा यह कि अपनी गलतिया स्वीकार करने का साहस रखो, और उन्हे प्राजलतापूर्वक कुबूल करने के बाद उनका परिणाम भोगने की तैयारी रखो। उसी सीख का स्मरण करके मैने आपके सामने यह वक्तव्य पेश किया है। गाधीजी का यह आश्वासन मुझे भगवान का आश्वासन मालूम पडता है कि तुमने यदि सत्य का पथ नही छोडा तो ईश्वर भी तुम्हारा साथ नही छोडेगे, क्योकि सत्य ही परमेश्वर है। न्यायाधीश

महोदय, मै आपको नमस्कार करता हू और अपने भाग्य का निर्णय आपके हाथो सौंपता हू। धन्यवाद।'

३७

धनजय का स्टेटमेट प्रकाशित होते ही सारे शहर मे तहलका मच गया। वाह रे बहादुर! शाबाश! गजब की हिम्मत दिखाई इसने कि खुद मुख्य मन्त्री को डके की चोट कह दिया कि मेरे साथ कटघरे मे खडे हो। यदि इसके पक्ष मे सचाई न होती तो इसे हर्गिज ऐसा कहने का साहस नही होता। स्टेटमेट का एक-एक शब्द दिल की गहराई से निकला है। साफ दिखता है कि यह आदमी निर्दोष है। जो कुछ रोजगार-धन्धे के लिए किया वह सब करते है। पर एक छोटे-से तिल का ताड बनाकर सत्ताधारी उसे मटियामेट करने पर आमादा है। क्या अन्धेर है!

शासकीय दल के अधिकाश लोग भी भीतर ही भीतर खुश थे। वे जानते थे कि धनजय जो कह रहा है वह सच है, हालाकि खुले तौर पर वैसा कहने की उनकी हिम्मत नही थी। आखिर जोशी जी की ज्यादतियो से वे भी तग आ गए थे। पर चूकि उनके हाथ मे सत्ता थी, कुछ कर नही पाते थे।

स्वय जोशी जी तो एकदम सन्न रह गए। उनकी तो स्वप्न मे भी कल्पना नही थी कि यह झगडा ऐसा अनपेक्षित स्वरूप ले लेगा। धनजय ने जो बात कही थी वह नितात सच है यह भीतर ही भीतर वे भी जानते थे, पर उसका ऐसा भण्डाफोड होगा और वह इस तरह हिम्मत दिखा सकेगा, ऐसी उन्हे उम्मीद नही थी। उनकी नैतिक पोजीशन को इससे गहरा धक्का लगा और वे भीतर ही भीतर तिलमिला उठे। पर अब किसे दोष दे? एक निकटवर्ती मित्र की घृणित अपराध मे गिरफ्तारी हो जाए और वह अपने बचाव मे यह सब कह डाले तो इसमे क्या आश्चर्य? अब तो निकला हुआ तीर वापस नही आ सकता। जो होना होगा सो होगा।

रणदमन सिह और गिरधारी तो गुस्से के मारे पागल हो गए, पागल। न

खाना सूझता था, न पीना। रणदमन सिह को लगा कि ऐसे आदमी को तो शूट कर डालना चाहिए। एकाध बार उसका हाथ पेण्ट की पिछली जेब की तरफ भी गया जिसमे पिस्तौल रखी थी। ऐसी लडाई तो उसने जनम भर नही देखी थी। एक आदमी इतना साहस कर सकता है, इसकी उन्हे स्वप्न मे भी कल्पना नही थी। यह तो ऐसे दिखता है जैसे सिर से कफन बाधकर मैदान मे कूद पडा हो। ऐसे आदमी से पेश आना भी तो मुश्किल है।

गिरधारी को लगा कि उसके गाल पर किसीने कसकर तमाचा मारा हो। राजनीतिक क्षेत्रो में, सरकारी अधिकारियो मे, पत्रकारो मे, सब जगह लोग तो यही कहते थे कि धनजय की सफाई पुख्ता और मजबूत है और जोशी जी का पक्ष एकदम कमजोर और असमर्थनीय है। पर वे जबान से कुछ नही कहते। गिरधारी का जोश भी इस वातावरण मे ठडा होने लगा। ऐसी परिस्थिति की तो उसने स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी। अजीब आदमी से पाला पडा है!

उधर पब्लिक प्रॉसिक्यूटर गुप्ता ने सोहनसिह के घर जाकर उसका गला धर दबाया, 'यह स्टेटमेट ऐसे कैसे तूने ले लिया? स्टेटमेट लेने की भी यह कोई स्टेज थी?'

उसने हाथ जोडे और कहा, 'क्या करू गुप्ता। कानून मे तो ऐसा कही नही लिखा है कि अभियुक्त का कोई भी स्टेटमेट लेने से हम इन्कार कर सकते है। हा, उसपर विश्वास करना या न करना यह हमारा काम है, पर उसे बयान देने से कैसे रोका जा सकता है?'

गुप्ता को भी इसका जवाब नही सूझा, पर वह तो इसलिए आया था कि अदालत के मोर्चे का वह नायक था। जोशी जी ने पूछा तो कम से कम यह तो कह सकेगा कि सोहनसिह को डाट-फटकार कर आया।

सोहनसिह मन ही मन मौज मे था, और तमाशा देख रहा था। वह इसीमे खुश था कि इस मुकदमे के कारण उसका महत्व बढ गया है और लोग अब उसके घर के चक्कर काटने लगे है।

वह अदालत मे पहुचा तो चपरासी भेजकर भोलानाथ को बुलवाया और कहा, 'अरे हजरत! वह स्टेटमेट तो आग का पूला निकला। बाप रे! मुझे क्या मालूम था कि उसमे इतना डायनामाइट भरा है। तहलका मच गया। लोग मुझसे पूछने आए कि ऐसा कैसे कर दिया? मैने साफ-साफ कह दिया कि मै कानून के

खिसाफ कैसे जा सकता हू ? कानून बताओ ’

‘तुम यार बडे बहादुर हो सोहनसिह। आखिर ठाकुर ही तो ठहरे।’ भोलानाथ ने उसे ताव पर चढाने के लिए कह दिया।

दिन भर अदालत मे, बार-रूम मे उसकी चर्चा चलती रही। अधिकाश की सहानुभूति ‘युगान्तर’ के साथ थी। जो सीधे शासकीय पक्ष के थे वे भीगी बिल्ली-से चुपचाप बैठे थे, और चर्चा टालने थे। अभी उनके हाई कमाण्ड से इशारा नही मिला था कि क्या रुख अख्त्यार किया जाए।

एक सीनियर एडवोकेट ने कहा, ‘इस स्टेटमेट के बाद वकीलो का काम जरा मुश्किल हो जाएगा क्योकि वे, अभियुक्त ने जो पोजीशन स्वीकार कर ली है उसके बाहर नही जा सकेगे। डिफेस प्ली (बचाव की दलील) के बाकी के सब दरवाजे उनके लिए बन्द हो गए।’ फिर उसके व्यावहारिक पहलू के बारे मे गभीर होकर बोले, ‘जोशी बडा खतरनाक आदमी हे। अब ‘युगान्तर’ और धनजय की खैरियत नही। वह इनका भुरता बनाकर छोडेगा भुरता ! और ये बेचारे कुछ नही कर पाएगे। इस दृष्टि से तो यह स्टेटमेट बडा रॅश (उतावला) है।’

धनशेट्टिवार और उनकी मिसेज़ का हाल क्या पूछना है ? खुशी के मारे उचक-उचक रहे थे। बाप रे ! यह धनजय टेरिबल (भयकर) है। हमने तो सोचा भी नही था कि वह इस तरह का स्टेटमेट देगा। अब तो बाजी उलट गई है। अब हम शान के साथ अपना सिर ऊचा रख सकेगे। फिर एकाएक धनशेट्टिवार ने अपनी औरत से कहा, ‘चलो हनी, हम लोग धनजय के यहा कॉल कर आए।’

वे जब धनजय के घर आए तो रातभर के जागरण के बाद वह खुर्राटे लेता सो रहा था। दिन के नौ बजे थे, फिर भी नही जागा था। सुबह से बधाई के पचीसो टेलीफोन आए, सब गीता ने ही लिए। धनशेट्टिवार-दम्पति का भी स्वागत उसीको करना पडा। वे दात निपोर-निपोरकर उसकी तारीफ कर रहे थे, उसकी बहादुरी के लिए उसका अभिनन्दन कर रहे थे। ‘सोना उनका वाजिब है, बडा स्ट्रेन (दवाब) पडा होगा। परसो हमारे यहा आए थे, बडे एजिटेटेड (उत्तेजित) थे, फिर हमने जरा शात किया और वही यह स्टेटमेट पेश करने की सलाह पक्की हुई। फिर एक सफेद टोपी वाले आगन्तुक को आया देखकर वे चलते बने।

गीता ने बाद मे जब धनजय के सामने उनके आने का और उनके उत्साह का वर्णन किया तो बोला, ‘परसो तो दब्बू और कायर बनकर बैठे थे। अब फालतू

उछल-कूद कर रहे है। उनकी तारीफ मे कोई मतलब नही।'

धनजय के एक साहित्यकार मित्र आए तो बोले, 'इस वक्तव्य को पढकर तो मुझे सॉक्रेटीस (सुकरात) की याद आ गई, 'ट्रायल ऐण्ड डेथ ऑफ सॉक्रेटीस' हमारे कोर्स मे था।'

दूसरे एक सज्जन ने फ्रास के एमिल जोला और ड्रेफस केस से इसकी तुलना की।

गीता भी खुश थी। बोली, 'तुम्हारी नैतिक पोजीशन साफ हो गई, यह सबसे बडी बात है।'

'हा गीता, मन भीतर ही भीतर घुटन अनुभव कर रहा था। वह सब निकल गई और जी हल्का हो गया। अब जो भी हो उसकी मुझे परवाह नही।'

'हा, सच बात है। होगा क्या, अब जोशी जी के लोग चिढकर और भी तेज़ कदम उठाएगे, भारी यन्त्रणाए देगे पर दुनिया जान लेगी कि यह सब क्यो हो रहा है। अब जो कष्ट होने वाला है उसके लिए तो हम तैयार बैठे है। माथे पर कलक तो नही रहेगा? लाछन लेकर तो महलो मे रहना भी चुभता है, और निष्कलक होकर काटो की शय्या मे भी असीम सुख है।'

धनजय गीता की ओर कौतुक से देखकर मुस्करा दिया। अभी नीद से उठा था, आखे लाल थी, भरी हुई थी। पर उनमे एक अजीब किस्म की तृप्ति झलक रही थी। गीता अनिमेष नेत्रो से बडे प्यार से उसकी ओर देखती रही।

पर सबसे खुश था भोलानाथ। दिनभर कचहरी की प्रतिक्रियाए लेकर वह धनजय के घर आया। अपनी हमेशा की तरह की फक्कडता से बोला, 'बडी कस-कर पडी धनजय। सब म्या बैठकर सेक रहे है। बाप जनम मे ऐसी नही घली होगी। सारा निष्पक्ष ज्यूडिशियल ओपिनियन (अदालती विचार) तुम्हारे साथ है। सुना है कि तुम्हारे स्टेटमेट की कॉपिया दिल्ली भेजी गई हे, और हाई कमाण्ड से कहा गया है कि देखो अपने लाडलो के कारनामे।'

भोलानाथ के आने से दोनो को बडी खुशी हुई। हिम्मत का वह बडा जबर्दस्त आधार था। मनुष्य के जीवन मे ऐसी भयकर स्थिति अक्सर आ जाती है, ऐसी 'क्राइसिस' जब एक सच्चे मित्र या सखा का सहारा आदमी को छिन्न-विच्छिन्न होने से बचा लेता है। जब धनजय पर आपत्ति आई तब वही सबसे पहले मदद का प्याला लेकर दौडा। सच है, सच्चे मित्रो की पहचान तो विपदा मे ही होती

है। वाह रे भोला! उसके अच्छे दिनो मे जाने कहा दुबका बैठा था, और बुरे दिनो मे हमेशा साथ रहता है। यह भी कोई पूर्वसचित पुण्य होगा जो ऐसा मित्र मिला।

३८

भोलानाथ के जाने के बाद गीता ने पूछा, 'ये तुम्हारे पुराने मित्र हैं। पर इतने दिन कहा गायब रहे? अभी-अभी दिखने लगे हैं।'

'हा गीता। है तो बहुत पुराना मित्र। पर बीच मे ऐसा कुछ सयोग हुआ कि वर्षो का खण्ड पड गया और मुलाकात ही नही हुई। जैसे एक दूसरे की दुनिया से कोई ताल्लुक ही नही। पर बडे मजे का आदमी है। तुम इसके बारे मे अधिक जानोगी तो ताज्जुब करोगी।'

इतने मे टेलीफोन आ गया तो बात वही रुक गई। दफ्तर से सोल एजेण्ट ने सदेशा भेजा कि आज जितनी प्रतिया ज्यादह निकाली थी वे हाथो हाथ बिक गई। पाच हजार प्रतियो की और जरूरत है। कल सुबह मिल जाए तब भी बिक जाएगी।

धनजय ने छपाई विभाग को फोन करके तुरन्त इसका इन्तजाम कर दिया। और फिर बैठकर उसने भोलानाथ का किस्सा सुनाया

'भोलानाथ एक बडे मालगुजार का बेटा था। खासी जायदाद थी, घर मे घी-दूध की नदिया बहती थी। पिताजी ने देहाती स्कूल मे डाला जो उनके गाव से दो मील दूर था। पर स्वभाव से नटखट था, इसलिए पढने की बजाय बेर और इमली खाने मे, लौडो को पीटने मे, कुश्ती खेलने मे उसे ज्यादा दिलचस्पी थी। मास्टर शिकायत करते कि हफ्ते के सात दिन मे से मुश्किल से दो दिन उसकी हाजरी लगती थी, बाकी वक्त आम के दरख्त के नीचे या खेतो-खलिहानो मे कटता। यह सुनकर पहले पिताजी ने अच्छी तरह पीटकर मरम्मत की फिर एक आदमी देकर खच्चर पर उसे स्कूल भेजने लगे। आदमी बस्ता और लगाम लेकर आगे चलता और ये बादशाह की तरह पीछे बैठते। जब कही पगडडी गहरी हो जाती

और दोनो पैर जमीन पर लगने लगते, तो वे चुपचाप पैरो के बल ज़मीन पर खडे हो जाते और खच्चर चुपचाप खिसककर आगे बढ जाता। खच्चर के ज़बान नही थी इसलिए वह साईस को बता न पाता कि उसका बोझ उतर चुका है। साईस को देर तक पता न लगता। जब स्कूल मे पहुचकर साईस पीछे मुडकर देखता तो भैया नदारद। उस आदमी को काटो तो खून नही क्योकि जानता था कि मालिक बिगडे मिजाज़ है, घोडे के हटर से मरम्मत किए बगैर रहेगे नही। मास्टर साहब भी मजाक करते कि अच्छा, आज भैया की जगह खच्चर जी बस्ता लेकर पढने आए हैं। बेचारा साईस ढूढते-ढूढते वापस लौटता तो भैया के न दिखने से परेशान हो जाता। जोर-जोर से बडबडाता कि 'इन भय्यन के मारे तो हमारे नाक मे दम है। उतै दद्दा हमे चमकाउत है, और इतै जे भय्यन हमे परेसान करत है। अब हमारी नौकरी जैहे कि रैहे कह नही सकत। इन भय्यन के मारे तो हमे भूखन मरने की नौबत आ गई है—साची!'

''भूखन मरने' की सभावना से भैया का दिल पसीज जाता तो वे ऊपर से आम की डाल पर से चिल्लाते—'कूकी।'

'साईस को खुशी भी होती और गुस्सा भी आता। 'अब उतै बदरन की नाई का कर रहे हो? उतरो, और घरे चलो अब्बई दद्दा से तुम्हे पिटवाउत है।'

'कहने को तो वह कह गया पर असली डर खुद के पिटने का था।

'स्कूल मे दद्दा ने समझ लिया कि जनाब पढेगे नही तो घर मे एक मास्टर लगा दिया। कुछ दिन यह सिलसिला चलता रहा। पर एक दिन विचित्र घटना हुई

'भोला की उम्र उस समय दस-ग्यारह साल की होगी। घोडे का शौक भी था। उसके किसी दोस्त ने बताया कि पाच मील दूरी पर जो बडा कस्बा है वहा रामलीला होने वाली है। रात अधेरी थी और जगल का रास्ता था। बीच मे एक नाला पडता था जिसे खूनी नाला कहते थे। यहा कई बार लूट-मार और खून के कारनामे हुए थे। वहा भूत-प्रेत भी रहते है, ऐसी धारणा थी। भोला ने यह सब सुन तो रखा था पर सोचा कि हमारे पास क्या धरा है जो हमे कोई लूटेगा और हमारा खून करेगा? और भूत-प्रेत का देखा जाएगा। रामचन्द्र जी की लीला देखने जा रहे है तब वे क्यो सताएगे? दद्दा जब ऊपर सोने चले गए तब जनाब धीरे से उठे और चुपचाप घुडसाल से एक घोडा छुडा लाए। जीन घर मे थी। निकालते खडबड होती, इसलिए सिर्फ उसकी नाक मे रस्सी बाधकर उसकी नगी

पीठ पर बैठ गए और चले उस कस्बे की तरफ। उस घुप्प अधेरे मे कुछ सूझता नही था पर घोडा बेचारा अपने रास्ते से जा रहा। जब उस खूनी नाले का उतार आया और वह ढलान के सबसे निचले हिस्से मे पहुचा तो ऐसा लगा कि अकस्मात सामने से आग की लपटे उठी हो ? घोडा अड गया और पिछली दो टागो पर सीधा खडा हो गया। भोला जोर से चिल्लाकर नीचे जमीन पर गिर पडा और घोडा भागकर वापस घर आ गया। उसका चिल्लाना सुनकर सामने एक साधू दिखा और बोला, 'बस ठहर जाओ ! आगे मत बढो ! खतरा है !'

'भोला तो जमीन पर पडा था। डर के मारे काप रहा था। इतने मे सामने से चार-पाच आदमियो की आवाज़े आई—'कौन है रे भैया। घबडाना मत, हम लोग आ रहे हैं।' इतने मे साधू गायब हो गया, और भोला वही हिम्मत बाधे पडा रहा। वे आदमी आए और चिलम पीने के लिए चकमक जलाई तो बोले, 'अरे, जे तो पटेल साहब के भय्यन आय। इतनी रातै अकेले इते कैसे आए भय्यन ?'

'भोला ने अपनी रामभक्ति की कथा कह सुनाई ताकि उनकी हिमाकत पर कुछ परदा पडे। वे लोग उन्हे साथ लौटा लाए और दद्दा को जगाकर सब हाल बताया। भय्यन सकपकाकर खडे थे और डर के मारे अपनी चोटो को छिपाते रहे। दद्दा ने धोती और कुरता उघाडकर देखा तो बदन छिल गया था। गुस्सा तो खूब आया पर उसके जख्म देखकर कुछ नही बोले। सेका-साकी का इन्तजाम कराकर वे फिर सोने चले गए और पास दो आदमियो को सुला गए।

'तीन-चार दिन के भीतर ही भोला का गाव से टीन कस गया और वे अपने बडे भाई के यहा भेज दिए गए जिन्हे हाल ही सरकारी नौकरी लगी थी। शहर मे उनका मन कुछ ज्यादा रमा। बुद्धिमान तो थे ही, बिना खटके मैट्रिक पास हो गए —दूसरे दर्जे मे।

'भोला हॉकी का बहुत अच्छा खिलाडी था और अच्छा तैराक था। रग तो काला-सावला था पर खासा अच्छा जवान था। हमेशा ही ज़रा सनकी-सा रहा है। हॉकी खेलेगा तो लगातार दिनभर खेलता रहेगा। तैरने की शर्त लग जाए तो चौबीस घण्टो तक पानी मे पडा रहेगा—फिर झील मे साप हो तो, मगर हो तो। बडा दिलेर था और अक्सर खतरो से खेलने मे उसे मज़ा आता था। मैट्रिक पास होकर घर गया तब गाधीजी का सन् बीस-इक्कीस का असहयोग आन्दोलन छिड़ा तो जनाब सिर पर गाधी टोपी का गट्ठा लेकर बेचने निकलते। राष्ट्रीय

वृत्ति बचपन से ही थी।

'मैट्रिक का रिजल्ट आने के बाद साइन्स कोर्स मे भरती हो गए। पर साल भर पढाई कम की, खेलकूद मे ज्यादा दिलचस्पी ली। इधर पिताजी ने उनकी शादी तय कर दी जो फर्स्ट इयर की परीक्षा के एक महीना पहले हुई। शादी करके लौटे तो सामने परीक्षा देखकर उनकी हवाइया उडने लगी। ठण्ड का मौसम तो टूर्नामेण्ट्स खेलने मे बीता। पढाई कहा से करते ? और अब इधर तीन सप्ताह शादी की बरात-पगतो मे बीत गए। उन्हे भरोसा हो गया कि उनका अग्रेज प्रिंसिपल सख्त है, एक भी विषय मे फेल हुए कि 'डिटेन' कर देगा। फिजिक्स और केमेस्ट्री मे तो किसी तरह निकल जाने की उम्मीद है, पर गणित मे कोई आशा नही। फेल हो जाऊगा तो लडके मजाक उडाएगे कि ले, और कर ले शादी! ससुराल वालो के सामने तौहीन होगी सो अलग। पिताजी पर झल्लाहट भी हुई कि शादी करने की इतनी जल्दी क्या पडी थी ? पर लडकी अच्छी मिली थी, मुहूर्त भी फलता था, और यह भी मालूम था कि इस वर्ष तो यूनिवर्सिटी की परीक्षा नही है—विवाह कर डाला गया। पर मुसीबत तो हमारी हो गई—भोला ने सोचा।

'सोमवार को गणित का पेपर था तो उन्हे एक अक्ल सूझी। गणित का पेपर उनके एक बगाली प्रोफेसर मिस्टर बैनर्जी निकालने वाले थे जो शहर से नौ मील दूर एक उपनगर मे रहते थे जहा से वे रोज लोकल ट्रेन से आते और जाते थे। भोलानाथ साइकिल पर उनके यहा रविवार को पहुचे। प्रोफेसर साहब की शादी हुए चार-पाच साल हुए थे। वे बडे दयालु प्रकृति के आदमी थे। भोला ने सोचा, उन्हीके सामने रो-गाकर काम चला ले। फेल होने के कलक से तो बचे! पर दुर्भाग्य से प्रोफेसर साहब घर नही थे। वे पेपर साइक्लोस्टाइल कराने के लिए कॉलेज गए हुए थे। भोला अपना रुआ-सा मुह लेकर प्रोफेसर साहब की पत्नी के सामने खडे हो गए। उसने पूछा, 'तुम कैशे आया ?'

''मा, मै प्रोफेसर साहब से मिलने के लिए आया था। वे कब आएगे ?'

'भोला ने कही पढा था कि बगाल मे सभी स्त्रियो को मा कहने की परिपाटी है। मिसेज बैनर्जी यह सबोधन सुनकर प्रसन्न हो गई। वे भी अपने पति की तरह बडी सहृदय और दयालु थी। बोली, 'प्रोफेसर शाहब तो शाम तक आएगा।'

'तो मा, मै शाम तक यही बैठा रहूगा।' भोला ने कहा।

''क्यो ? प्रोफेशर शाहब से काम है ?'

''हा मा, मै बडी तकलीफ मे पड गया हू ।'

''क्या तोकलीफ है ?'

''मा, पिछले महीने ही मेरी शादी हुई है। इसलिए मैं कुछ पढाई नही कर सका। गणित मे फेल हो जाऊगा। प्रिंसिपल साहब बहुत सख्त आदमी है, डिटेन कर देगा। फिर मैं अपना मुह ससुराल वालो को कैसे दिखाऊगा ? उससे तो मैं मर जाना ज्यादा पसद करूगा। मै फेल हो गया तो आत्महत्या कर लूगा मा।'—उसने रोनी सूरत बनाकर कहा।

''ओ बाबा! तुम ऐशा काहे बोलता है ? खुदकशी कोरने शे ओ खोकी बिधवा नॉय हो जाएगा ? ना बाबा, ऐशा कैशे होने शकता है ?' ऐसा कहकर उस बेचारी महिला ने अपने दोनो गालो पर तमाचे मार लिए।

''तो आप ही बताइए मा, मैं यह काला मुह किसको दिखाऊगा ?'

''तो तुम किया चाहता है ?'

''मा, प्रोफेसर साहब पास होने लायक दो-चार सवाल बता दे, तो मेरा उद्धार हो जाएगा।'

''अच्छा, हाम देखता है कि शाब ने तोमारा पेपर घोर मे रोखा है या नॉय।'

'मिसेज बैनर्जी ने पति का ड्रावर खोला तो पेन्सिल से लिखे हुए तीन-चार पेपर निकले। भोला को बुलाकर कहा कि 'देखो तो। इशमे तोमारा पेपर हाय कि ?'

'भोला ने देखा तो उसका पेपर सचमुच था। और खोजा तो उसकी एक टाइप की हुई कार्बन कॉपी भी मिली, जिसकी मूल प्रति शायद प्रोफेसर साहब ले गए थे।

'भोला ने पूरा पेपर कॉपी कर लिया और मिसेज बैनर्जी को झुककर चरण छूकर प्रणाम किया। वे दयार्द्र होकर बोली, 'इतनी दूर जाएगा, तो भूख लगेगा। हाम तुमको दो ठौ रशोगुल्ला देता हाय।'

'रसगुल्ले बडे थे। भोला ने बडे प्रेम से खाए। इम्तिहान की अब फिक्र नही रही थी।

'जाती बार मिसेज़ बैनर्जी से कहा कि इसका हाल प्रोफेसर साहब को मत बताना। उसने कसम खाकर वादा किया।

'पर मिसेज़ बैनर्जी ने शाम को पति के आते ही सब हाल बता दिया। बोली कि उसकी पत्नी पर तरस खाकर पेपर बता दिया। दोनो का एक दूसरे से बडा स्नेह था, किसी बात का आड-पर्दा नही था। प्रोफेसर साहब बोले कि बडा चालाक लडका

है। होशियार तो है, पर पढता नही। नही तो फर्स्टक्लास मे पास होता। खैर कोई बात नही। वैसे मै भी उसके प्रमोशन पर जोर तो देता ही।

'भोला ने रात भर में पेपर अच्छी तरह तैयार कर लिया और दूसरे दिन परीक्षा के हाल मे पहुचा तो प्रोफेसर बैनर्जी ने कहा, 'तुम बडा मिश्चीव्स (शरारती) लडका हाय। तुम हमारा घोर मे जाकर क्या-क्या किया, ओ शब हमको मालूम है। अब ऐशा करेगा तो तुमको हम फेल कर देगा।'

'कहना न होगा कि उस पेपर मे भोला को डिस्टिंक्शन के मार्क मिले जिसके बल पर उसने अपने भाई तथा ससुराल वालो पर धौस जमाई।

'उन्ही दिनो भोलानाथ के जीवन मे एक विचित्र रोमान्स आ गया। वह हॉकी का बहुत अच्छा खिलाडी तो था ही पर उसे पता भी न था कि उसके खेल पर एक पारसी लडकी फिदा है जो उसका कोई भी मैच देखने से नही चूकती। भोला के खेल मे चपलता थी, फुर्ती थी और बडी स्टाइल थी। वह सेंटर फॉरवर्ड खेलता था और देखते-देखते गेंद विरोधी टीम के रिंग मे पहुचा देता, उनके सम्हलने के पहले ही गोल कर देता। वह जिस तरफ रहता उस टीम की विजय प्राय निश्चित थी।

'यह पारसी लडकी, मिस शिरीन कप्तान भी हॉकी की बहुत अच्छी खिलाडी थी, और लडकियो की टीम का नेतृत्व किया करती थी। वह भी भोला के कॉलेज मे ही पढती थी। उन दिनो पूरे कॉलेज मे चार-पाच लडकियो से अधिक नही थी, जिनमे क्रिश्चियन, ऐंग्लो इण्डियन और पारसी लडकिया ही अधिक थी। कभी भूले-भटके एकाध हिन्दू लडकी निकलती। शिरीन गौर वर्ण की अनिद्य सुन्दरी थी।

'शिरीन जब कभी मैच देखने आती तो दर्शको को लगता कि हॉकी मे उसकी दिलचस्पी है इसीलिए वह आती है। पर असल मे शुरू से आखिर तक उसकी आखें भोला पर ही गडी रहती। उसकी एक-एक अदा पर वह फिदा थी और भोला को पता तक नही था।

'एक रोज प्रैक्टिस देर तक चली। शाम हो रही थी, अधेरा बढने लगा था। सब देखने वाले भी उठकर जा रहे थे पर शिरीन बैठी ही रही। भोला को भी नल पर हाथ-पैर धोने मे कुछ देर लगी और वह ताजा-तवाना होकर आया तब तक भी शिरीन का ध्यान उसीकी तरफ था। शिरीन ने उसकी तरफ देखकर स्मित किया और अग्रेजी मे बोली, 'आप तो वडरफुल (अद्भुत) हॉकी खेलते है।'

'भोला को तो पसीना आ गया। यह उसका पहला मौका था कि किसी लडकी से प्रत्यक्ष बात करे, और वह भी ऐसी सुन्दर लडकी से जिसपर सारा कॉलेज जान देता था। वह छुई-मुई-सा हो गया। अब तक तो वह अपनी औरत से भी बात न कर सका था। उसकी शादी तो हो गई थी, पर गौना नही हुआ था इसलिए लडकी सालभर और मायके ही रहने वाली थी।

'शिरीन ने उसे चॉकलेट का एक पैकेट देते हुए कहा, 'तुम बहुत थक गए होगे इसलिए तुम्हारे लिए यह लाई हू।'

'भोला को लगा कि उसके आसपास की धरती घूम रही है।

'शिरीन ने अपनी लेडी साइकिल उठाई और भोला के साथ निकल पडी। दोनो पैदल ही अपनी-अपनी साइकिले हाथ से ढकेलते हुए बाते करते जाते। प्रेम और स्त्री-पुरुष के सम्बन्धो के बारे मे शिरीन भोला से ज्यादा परिपक्व थी क्योकि उसके घर का रहन-सहन और वातावरण ही वैसा था, अग्रेजो का राज्य था, पारसी लोग यो भी अपने को आधा अग्रेज समझते थे और उन्हीके अनुसार रहा करते। सिनेमा, लव स्टोरी मैगजीन, डान्स पार्टिया आदि के कारण शिरीन रोमान्स क्या है यह जानती थी और वह भोला पर आकर्षित हुई तो फिर अपने को न सम्हाल सकी। भोलानाथ बेचारे निपट देहात से आए थे, शिरीन के अग्रेसत्व के कारण अपने आपको कितने दिन रोक पाते ? जब ऋषि विश्वामित्र मेनका के कोमलागो के प्रलोभन से अपने आपको बचा नही सके तो बेचारे भोलानाथ की क्या कथा, जो मुश्किल से उन्नीस-बीस वर्ष का अनुभवी युवक था ? सो वह शिरीन के साथ सुख-सरिता मे बह गया।

'भोलानाथ तो डेअर डेविल (दुस्साहसी) था ही। वह रात को अपने होस्टल से साइकिल उठाकर, दीवाल कूद-फादकर भाग निकलता और शिरीन के बगले के पास आकर हलकी सीटी बजाता। शिरीन का सोने का कमरा अलग था। वह भी चुप-चाप भीतर का बोल्ट लगाकर अपने बाथरूम के दरवाजे से सटक जाती। भोला उसे अपनी साइकिल के डडे पर बिठाकर पाच-पाच सात-सात मील तक जाता, कभी जगली पहाडी पर तो कभी झील के किनारे। कई घण्टो तक चन्द्रमा और तारो की साक्षी मे उनका प्रेमालाप चलता और रात को एक-दो बजे वह शिरीन को वापस बगले पर छोड आता और उसी प्रक्रिया से वह भी वापस होस्टल मे आ जाता था। भोला का यह पहला प्रेम-प्रकरण था और उसकी मिठास और कसक

भाग'निकले और घर पहुचने के बाद गाधीजी को एक लम्बा माफी-पत्र लिखा। गाधी जी ने अपने ही हस्ताक्षर से एक कार्ड लिखा

'प्यारे भोलानाथ,

तुम एक बडे कायर आदमी हो।

तुम्हारा सस्नेह—
बापू

'भोलानाथ खिल उठे कि डाट-फटकार मे भी बापू का स्नेह अक्षुण्ण है। उस कार्ड को भोलानाथ बरसो तक जतन से रखे रहे।

'इस बीच भोलानाथ ने वकालत पास करके प्रैक्टिस शुरू की। काफी उठा-पटक करने वाले आदमी थे सो अच्छी कमाई कर लेते थे। पर सारी दिनभर की कमाई रात को शिरीन ले जाती। वे दिल से इतने उदार थे कि किसीको नाही करना तो जानते ही न थे। अदालत से ही उनकी कमाई का बटवारा शुरू हो जाता। मुशी को देते, तागे वाले को देते, होटलो मे खर्च करते, कोई गरीब मागता तो उसे देते, विद्यार्थियो की मदद करते, अडोस-पडोस मे कोई दीन-दुखिया हो तो उसका भी ध्यान रखते। इतना सब होने के बाद जो रकम बचती वह शिरीन ले जाती, क्योकि उसका हाथ-खर्च भी काफी बढ गया था, वह अच्छे स्टैंडर्ड से रहती और अच्छे खान-पान व रहन सहन का उसे शौक था। शिरीन की शादी की बात-चीत भी कई बार चली। एक बडे पारसी बैरिस्टर ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया, एक बर्फ के कारखाने का मालिक उसपर सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तैयार था, फिर टाटा कम्पनी का एक मैनेजर भी उसपर अपना दिल फेक चुका था। पर शिरीन का मन इनमे से किसीपर नही रमा। उसे तो बस भोलानाथ ही पसन्द था, पर उससे शादी करने की हिम्मत नही पडती थी। अच्छी जोड़ी जमी।

'इधर भोलानाथ के भाई को शिरीन-प्रकरण की खबर लगी तो वे दुबारा भोला की शादी करने पर तुल पडे। भोला की तनिक भी इच्छा नही थी, क्योकि उसका भी मन यही था कि यदि वह शादी करेगा तो शिरीन से। उधर शिरीन के माता-पिता को भी शक हो गया कि उनकी लडकी का भोलानाथ के साथ अनुचित सम्बन्ध है। उनकी देखरेख सख्त हो गई। शिरीन का बाहर निकलना भी मुश्किल हो गया। उसका त्रास शुरू हुआ। कई दिनो से शिरीन नही मिली थी इसलिए उनके वार्षिक दिवस 'पटेटी डे' पर भोलानाथ एक बडी केक लेकर उन्हे

भेट करने गया तो शिरीन की बडी बहिन उसपर बिगड पडी और उसका अपमान-कर उसे घर से निकालने लगी। शिरीन को यह बर्दाश्त नही हुआ तो वह अपनी बहिन पर झपट पडी और दोनो मे इतनी हाथापाई और बालो की खीचातानी हुई कि भोलानाथ महाराज वहा से चुपचाप खिसक गए। बात उसमे यही थी कि बडी बहिन की भी शादी नही हुई थी, और वह खुद भी भोलानाथ को चाहती थी, पर भोलानाथ उसकी तरफ फूटी आख से भी नही देखता था इसलिए वह शिरीन से भी जलती थी।

'भोलानाथ को यह कॉम्प्लिकेशन (उलझन) तो बाद मे मालूम हुआ पर इतना पक्का था कि शिरीन के घर का दरवाज़ा अब उसके लिए बन्द हो गया था। शिरीन पर जबर्दस्त पहरा लग गया जिसके कारण उनका मिलना-जुलना भी कम हो गया।

'इतने मे भोला के ससुराल मे एक शादी हुई, उसकी स्वर्गवासिनी पत्नी के भाई की। उसके बूढे ससुर खुद उसे निमन्त्रण देने आए। बोले, 'लाला जी, बिटिया तो अपने भाग से भगवान के घर चली गई पर यह रिश्ता थोडे ही टूटता है? मेरे घर मे लडके का पहला कार्य है। आपकी सासू जी और सालियो की बडी इच्छा है कि आप इसमे जरूर शरीक हो।'

'भोला ने फिर थोडी बहुत टाल-मटोल की पर उसे अपनी छोटी साली का एक पत्र मिला कि आप किसीकी नही सुनते और हम लोगो से अलग-अलग रहा करते है जिसका हमे बडा दुख होता है। दीदी तो चली गई पर आपका-हमारा जो सम्बन्ध है वह तो नष्ट नही होता। मै आपसे आग्रह करती हू कि आप भैया के विवाह मे अवश्य आए। हम सब लोग आपकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करेगे।

'यह उसकी पत्नी की पीठ की बहिन थी, कुसुम! वह अब काफी सयानी हो गई थी। न ज़ाने क्यो भोला उसका आग्रह नही टाल सका। वह शादी मे शरीक होने चला गया। उन लोगो ने उसका उसी स्नेह और आत्मीयता के साथ आदर-सत्कार किया जैसा कि जेठे दामाद का किया जाता है। इस पारिवारिक प्रेम को पाकर भोला को सुख हुआ। भावुक था, स्नेह का भूखा था, कुछ तसल्ली पा गया।

'भोला ने देखा कि कुसुम अब बडी हो गई है और सुन्दर दीखती है। वह भोला की ओर विशेष ध्यान देती थी। जीजा-साली का मजाक भी काफी चलता था। भोला एक सप्ताह वहा रहा पर चलते-चलते उसे पक्का भरोसा हो गया कि कुसुम उससे प्रेम करती है और उससे विवाह करने को उत्सुक है। कुसुम की माता को

भी यह सम्बन्ध पसन्द था। भोलानाथ पर उनका बडा प्यार था और इस नाते वह और भी दृढ हो जाता। पर भोला ने कुछ नही कहा और वापस चला आया। उसके जीवन मे यह एक विचित्र बात थी कि प्रेम के बारे मे हमेशा पहला कदम स्त्रियो ने ही उठाया था। उसकी भावुकता, सहृदयता और वफादारी के प्रति शायद उन्हे सहज आकर्षण हो जाता था।

'महीने भर के बाद ही कुसुम का पत्र आया जिसमे उसने अपना मन्तव्य स्पष्ट रीति से व्यक्त किया था और कहा था कि आप यदि अपने चरणो मे मुझे स्थान नही देगे तो मुझे जीने मे कोई आकर्षण नही रहेगा। इस निराशा की जिन्दगी से तो मर जाना ही अच्छा।

'भोला बडी मुसीबत मे पड गया। किसी कदर खट्ट-पट्ट करके शिरीन से मिला और यह पत्र दिखाया। शिरीन ने एक गहरा नि श्वास लिया और अपनी वही पुरानी असमर्थता ज़ाहिर की कि अभी माता-पिता ज़िन्दा है, वे बडे दकियानूस है, पुराने ख्यालो के है, वे अपनी शादी की इसलिए इजाज़त नही देगे कि उनका सोशल बायकॉट (सामाजिक बहिष्कार) हो जाएगा और बुढापे मे उन्हे जो दु ख होगा वह मै बर्दाश्त नही कर सकूगी। उनकी दस लाख की जायदाद मे से मुझे कुछ भी हिस्सा नही मिलेगा, सो अलग।

'उधर कुसुम के पिता ने भोलानाथ के बडे भाई को भी इस नये सम्बन्ध के बारे मे लिखा। वे अब सीनियर असिस्टेंट कमिश्नर हो गए थे, और इस बात के इच्छुक थे कि भोला की यदि दुबारा शादी हो जाए तो उस पारसी लडकी के साथ की गिट-पिट बन्द हो जाए। भोला भी कुसुम के पत्र से प्रभावित था, और उधर शिरीन की परिस्थिति मे भी कोई फर्क नही पडा। बडे भाई का ज़ोर भी पडा, और भोलानाथ ने दूसरी बार विवाह कर लिया।

'इस पत्नी से भोलानाथ को जितना सुख मिला उतना उसे जीवनपर्यन्त किसी भी व्यक्ति से नही मिला। वह सचमुच भोला को जी-जान से प्यार करती थी, और जो नारी इस तरह प्यार करती है वह अपने प्रिय पात्र के लिए क्या-क्या नही करती ? अपने सर्वस्व का होम करके भी वह उसे सुखी बनाने का निरन्तर प्रयत्न करती रहती है। अपने 'स्व' को, 'अह' को सर्वथा शून्य बनाकर अपने पति के व्यक्तित्व मे पूर्णत विलीन हो जाने मे ही उसे जीवन का परमानन्द प्राप्त होता है।

'कुसुम को भी शिरीन-प्रकरण का हाल मालूम हुआ। भोला ने उससे कुछ न छिपाया। कुसुम ने पूछा कि जब आप लोगो मे इतना प्रेम था तो विवाह क्यो नही किया ? भोला ने शिरीन के कारण बताए—वही समाज की कट्टरता, माता-पिता का विरोध, सामाजिक बहिष्कार का भय, और पिता की जायदाद का हिस्सा खो जाने का डर।—तो कुसुम ने नाक-भौ सिकोडकर कहा कि हिन्दू स्त्री के सामने तो ऐसे कारण किचिन्मात्र भी महत्व नही रखते। वह जिसको हृदय से चाहती है उससे विवाह कर वह तो उसके लिए परम दारिद्र्य को भी खुशी से स्वीकार करती है और दुनिया की बडी से बडी सुख-सुविधाओ का भी त्याग कर डालती हे क्योकि पति का प्रेम ही उसका सर्वोच्च सुख है। भोला भी नही कह सका कि कुसुम गलत कहती है। सचमुच शिरीन और कुसुम मे कितना विशाल अन्तर है ?

'कुसुम ने अपने पति के साथ ऐसा बर्ताव-व्यवहार किया कि उसे शिरीन की याद ही न आने पाए। छाया की तरह वह उसके साथ रहती और उसकी इतनी-इतनी-सी सुख-सुविधा का ध्यान रखती।

'भोला बार-बार कहता कि कुसुम के कारण स्वर्ग ही उसके घर मे उतर आया था। पर दुर्भाग्य की बात थी कि यह स्वर्ग-सुख केवल बारह वर्ष तक ही टिका और कुसुम बीमार पड गई। उसे अतडियो का टी० बी० हो गया। उसी जमाने मे भोलानाथ की मुझसे मुलाकात हुई।

'कुसुम का प्रेम पाकर भोलानाथ आदमी बन गया था, उसे जीवन मे रस मिल गया था। दूसरे महायुद्ध का जमाना था, रोजगार-धन्धा खूब चलता था, चादी की नदिया बहती थी, उसकी प्रैक्टिस अच्छी थी। रोज़ पचहत्तर रुपये से लेकर सौ रुपये तक कमा कर लाता। कमाने मे, और, कुसुम पर ही नही, सारे परिवार पर खर्च करने मे उसे बडा उत्साह रहता। घर मे अच्छा फर्नीचर था, मोटर थी, सोने के जेवर थे। सभी प्रकार की सम्पन्नता थी।

'कुसुम की बीमारी मे भोलानाथ ने पैंतीस हजार से भी अधिक खर्च किए। रुपये पानी की तरह बहाए। भुवाली ले गया, मदनापल्ली भी हो आया, सब कुछ किया, पर वह घुलती ही गई। कुसुम को यही चिन्ता थी कि मेरे बाद इनकी देख-भाल कौन करेगा ? शिरीन से उसे कोई आशा नही थी क्योकि उसकी धारणा थी कि वह एक स्वार्थी किस्म की औरत है, और उसके समाज की प्रेम की कल्पना बिलकुल अलग है। उलटे वह भोलानाथ को ही चाट जाएगी, अपने आपको कोई

आच न लगने देगी।

'भोला भी कुसुम की गिरती हुई हालत देखकर बच्चो-सा रोता। रात-रात भर उसके पलग के पास जागता बैठता। और झपकी आती तो कुसुम के पैरो के पास ही सिर टिकाकर दस-पाच मिनट को सो लेता। कुसुम गद्गद हो जाती, धन्य हो जाती। मै अपने पूर्ण सौभाग्य को लेकर अपने पति की गोद मे अपना शरीर छोड रही हू इस आनद मे ही वह डूबती-उतराती रहती। मृत्यु का जैसे उसे कोई भय ही नही हे। सदा-सर्वदा उसके चेहरे पर परम शान्ति और परम आनन्द की दीप्ति ही आलोकित रहती।

'और एक दिन कुसुम ने अपने पति के समस्त परिवार के लोगो को नमस्कार कर सबको रोता-रुलाता छोड, पति के चरणो मे सिर रखकर ही अपना शरीर त्याग दिया। भोलानाथ के जीवन की लक्ष्मी चली गई। उसके घर का दीपक बुझ गया और वह अधकारभरे ससार मे अकेला का अकेला रह गया।'

जब धनजय से उसकी भेट हुई, उन दिनो भोलानाथ बहुत निराश था। उसके भाई-भतीजे और परिवार के लोग सब उसे छोडकर चले गए थे। उसे प्रैक्टिस मे कोई दिलचस्पी नही रह गई। पत्नी की बीमारी के कारण कई महीनो तक वह अदालत से गैरहाजिर रहा। उसके मुवक्किल सब तीन-तेरह हो गए। उन्हे वह वापस बुलाना चाहता तो वे जरूर आ जाते क्योकि वह सचमुच बहुत बुद्धिमान वकील था, क्रिमिनल साइड मे उसका हाथ पकडने वाला नही था, और उसके हाथ मे यश था। पर उन्हे वापस बुलाने की उसे कोई इच्छा नही थी। प्रैक्टिस मे ही क्या, जीवन मे ही उसे अब कोई दिलचस्पी नही बची थी। मोटर बिक गई थी। जेवर और दूसरा सामान उसके रिश्तेदार ले गए थे। दिल से कर्ण जैसा उदार था, जिसने जो मागा सो उसे दे दिया। घर से बाहर नही निकलता, पागल-सा भीतर ही भीतर चक्कर काटता। कभी कुर्सी पर बैठता, तो पाच मिनट के बाद उठकर टहलने लगता। फिर पाच मिनट बाद बिस्तर पर बैठ जाता, फिर उठता, फिर बैठता। क्या करे क्या न करे कुछ सूझ ही नही पडता था। उसकी स्त्री का और सर्वस्व का नाश हो जाने के बाद फिर जीवन मे बच ही क्या रहा? इतने बडे मकान मे अकेला का अकेला बैठा रहता। बिजली कट गई तो उसे दुबारा लगाने की इच्छा भी नही। बस एक मिट्टी का टिमटिमाता दिया जलाकर अकेला ही बैठा रहता।

उसकी यह दशा देखकर धनजय की आखो मे आसू आ गए। सोने सरीखा आदमी इस तरह बर्बाद हो रहा है यह देखकर उसका दिल कचोटता। पर वह क्या कर सकता था ? हा, उसे अपना पूरा स्नेह और सहानुभूति देता। दुनिया मे जब सब कोई उसे छोड गए थे तब भोला को लगा कि धनजय ही अकस्मात न जाने कहा से टपक पडा जो उसे अपने स्नेह की स्निग्धता से जीवन-दान दे रहा है, उसके टिमटिमाते हुए, बुझते हुए दीपक मे प्राण-रस डाल रहा है। भोलानाथ ने कई बार कहा, 'उन दिनो तुम न मिलते धनजय, तो मै तो खतम हो चुका था। तुम्हारे ही कारण मुझे जीवन मे कुछ इटरेस्ट लौटा। और अब तो यह मुकदमा आ गया है—तुम्हारा और जोशी जी का सघर्ष ! जब साधुत्व और पाशविकता का इतना भयकर रणक्रदन मचा हुआ है तो भला मै कैसे चुप बैठ सकता हू ? मेरी सहानुभूति तो ज़िन्दगी पर पीडितो, त्रस्तो और अभिशप्त व्यक्तियो के साथ ही रही है। खुद भी दुखिया हू, इसलिए दुखी हृदय के लिए ही मुझे दर्द होता है। अहकारियो और दुराचारियो से तो मेरी मिनट भर भी नही पटती।'

और युगान्तर-केस की पृष्ठभूमि मे, धनजय का स्नेह और ममता पाकर भोलानाथ अपनी व्यथा और विरह-वेदना के अज्ञातवास से निकल पडा। और इस युद्ध मे ऐसा जूझ पडा जैसे जोशी जी ने प्रत्यक्ष उसीपर वार किया हो। इस युद्ध को वह धर्मयुद्ध मानता था, और उसमे धर्मपक्ष का समर्थन करना वह अपना कर्तव्य समझता था।

धनजय को भी सहारा मिला। वह भी आततायियो के अत्याचारो का शिकार था। एक से दो हुए। सम दुखी साथ मिले और उनकी मित्रता ने एक अपूर्व दिव्यता का स्वरूप ले लिया। और यह दिव्यता अधिक पावन हुई सत देवाजी महाराज के कारण, जिनके चरणो मे भोलानाथ ने अपना सारा शोक और दु ख समर्पण करके शान्ति पाई थी। सत देवाजी महाराज को, जो महाराष्ट्र के सतो की परम्परा के एक पहुचे हुए पुरुष थे, सब लोग बाबाजी कहते थे।

धनजय स्वत भी बाबाजी के दर्शनो के लिए उत्सुक हो उठा। पर इन मुकदमो की दौडधूप के कारण तो उसे दम मारने की फुर्सत ही नही थी। उसके स्टेटमेट ने तो जैसे उसपर चारो तरफ से आग बरसाना शुरू कर दिया।

३९

दिल्ली के नेताओ ने जोशी जी से पूछा कि यह सब क्या माजरा है ? आपके खिलाफ इस तरह का स्टेटमेट क्यो ?

जोशी जी ने इसका कानूनी उत्तर दिया कि मै तो इस स्टेटमेट का मुहतोड जवाब दे सकता हू और इसकी धज्जिया उडा सकता हू क्योकि यह शुरू से आखिर तक सरासर झूठ है। पर क्या करू ? मामला अदालत मे विचाराधीन है इसलिए मेरा कुछ कहना गलत होगा। ये लोग सख्त अपराधो मे फस गए है इसलिए इतनी चिल्ल-पो मचा रहे है। इसमे मेरा तो कोई सम्बन्ध ही नही है—कानून अपना काम स्वय कर रहा है।

पर दिल्ली को इससे सतोष नही हुआ। जोशी जी के राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी भी खामोश नही थे। वे आग्रह कर रहे थे कि अभियुक्त धनजय के वक्तव्य मे बहुत सत्याश है और उसकी यदि जाच की जाए तो असलियत मालूम हो जाएगी।

दिल्ली का दबाव कुछ अधिक हुआ तो जोशी जी के कानूनी सलाहकारो ने एक चाल चली। उन्होने सोहनसिह की अदालत मे एक अर्जी दी कि चूकि युगान्तर-केस मे एक अभियुक्त ने मुख्य मन्त्री पर गभीर रूप के आरोप किए है, वे उनका जवाब देना चाहते है। लिहाजा उन्हे इजाजत दी जाए।

पब्लिक प्रॉसीक्यूटर ने सोहनसिह के कान मे यह कहलवा ही दिया था कि इस तरह की दरख्वास्त मजूर हो जाए तो फिर वाद-विवाद का अन्त नही होगा। यह तो सिर्फ दिल्ली वालो की तसल्ली के लिए है। जोशी जी की दरख्वास्त तुरन्त नामजूर कर दी गई। उन्होने फौरन उस ऑर्डर की नकल लेकर दिल्ली भेज दी कि देखिए साहब, मैने तो अदालत से भी प्रार्थना की थी कि मुझे अपनी सफाई देने का मौका दिया जाए, तो उसने भी इजाज़त नही दी। अब बताइए, मै क्या करू ?

धनजय को जब यह मालूम हुआ तो उसने भी एक दरख्वास्त श्री सोहनसिह मजिस्ट्रेट की अदालत मे दी कि आपने मुख्य मन्त्री जोशी जी की प्रार्थना शायद इसलिए अस्वीकार कर दी कि सभवत उससे अभियुक्त के अर्थात् मेरे बचाव मे बाधा पडे। आपकी यह चिन्ता स्वाभाविक है क्योकि मै आपकी अदालत मे अभियुक्त हू और मेरे हितो की रक्षा करना आपका कार्य है। पर मै आपको इस

उत्तरदायित्व से मुक्त करना चाहता हू और आपसे निवेदन करता हू कि आप श्री जोशी जी को जवाब देने की इजाजत अवश्य दे, बशर्ते कि उसका प्रत्युत्तर देने की छूट मुझे भी हो। मैंने जो लिखा है वह सत्य है और मै उसकी रक्षा करने के लिए सब समय तैयार हू।

यह दरख्वास्त भी नामजूर कर दी गई पर उसने जोशी जी के नैतिक बाजू को थोडा और कमजोर कर दिया और धनजय के पक्ष को कुछ पुष्टि दी। यह दरख्वास्त युगान्तर मे छपी। केस की छोटी-छोटी बात भी उसमे छपती। लोगो को उन समाचारो मे बडी दिलचस्पी रहती। युगान्तर की बिक्री क्रमश बढती चली। जोशी जी अब चिढ गए, झुझला उठे। आए दिन उन्हे दिल्ली को किसी न किसी बात की सफाई देनी पडती। जो मामला अदालत मे नही था उसकी शिकायते भी उनके खिलाफ दिल्ली भेजी जाने लगी और धनजय के वक्तव्य की पृष्ठभूमि पर उन्हे कुछ महत्व भी मिलने लगा। गिरधारी ने मामाजी की परेशानी देखकर कहा, 'मै तो आपसे पहले ही कह रहा था कि आप साप को दूध पिला रहे है। पर आप सुने जब तो?'

रायसाहब रणदमन सिह भी जोशी जी की परेशानी से जरा उद्विग्न थे। भीतर ही भीतर क्रोध से जल रहे थे। बोले, 'अब बदनामी तो हो ही गई है। अब कुछ न करो तो बदनामी है और करो तो बदनामी है। सबसे बडी बात तो यही है कि किसी तरह से किसी भी अदालत से धनजय को किसी जुर्म मे सजा मिल जाए तभी जोशी जी की पोजीशन मे कुछ ताकत मिलेगी। या फिर उसे इतना तग किया जाए कि वह त्राहि-त्राहि पुकार उठे और अपना स्टेटमेट वापस लेने के लिए तैयार हो जाए। इस काम मे लाख रुपया भी लग जाए तो कोई बात नही।'

धनजय के कानो मे भी इन रुपयो की भनक पडी। उसके एक सहअभियुक्त, जो घर बैठकर अपनी अक्ल छाटा करते थे, इस मोह मे पड भी गए। वे जरा कच्ची मिट्टी के बने थे। रायसाहब रणदमन सिह के साथ उनकी थोडी-बहुत मेल-मुलाकात थी। उन्हीके जरिये यह प्रस्ताव आया कि किसी तरह से धनजय यह स्टेटमेट वापस ले ले तो एक लाख रुपया मिल सकता है, और हो सकता है कि उसके बाद मुकदमा वापस लेने का मार्ग भी निकल जाए।

धनजय ने जवाब दिया कि रुपये-टके की कोई बात नही है। शासन मुकदमा वापस ले ले तो फिर उस स्टेटमेट का कोई कारण ही नही रह जाता है।

शासन इसके लिए तैयार नही था, क्योकि उससे यही साबित होता कि वक्तव्य सही है, और उसीसे घबडाकर मुकदमा वापस लिया गया है। दिल्ली तो इस तरह छाती पर चढ बैठेगी।

बडी मुश्किल है। ऐसी अधी गली मे फस गए है कि न आगे जाते बनता है न पीछे। यह कम्बख्त धनजय तो इतना सिरफिरा निकला कि अपना भला-बुरा भी नही समझता। उससे कोई निपटे तो कैसे निपटे ?

फिर इसके सिवा और कोई चारा नही दिखता कि हमला और भी कडा कर दिया जाए और दुश्मनो की कमर तोडने की भरसक कोशिश की जाए। फिर वह जिस किसी भी सूरत से हो।

राजा साहब जगपुरा को बुलाकर डिस्ट्रिक्ट जज के इजलास मे एक दरख्वास्त और दिलाई गई कि कपनी के व्यवस्थापको को काम पर से अलग कर दिया जाए क्योकि उनके खिलाफ सरकार ने जालसाजी, फरेबी और झूठे हिसाब-किताब रखने के लिए मुकदमा चलाया है। और जब तक इस मुकदमे का फैसला नही होता तब तक कपनी की व्यवस्था एक रिसीवर के हाथ मे सौप दी जाए। उनका सारा प्रयत्न इसी बात का था कि किसी तरह अखबार धनजय के हाथ से निकल जाए। इन मुकदमो के बारे मे जो प्रोपेगैण्डा हो रहा है उससे शासन की जितनी बदनामी हो रही है उतनी तो किसी बात से नही हो रही है। उसके बल पर युगान्तर पक्ष के लोग जनता की, जाग्रत जनमत की, सरकारी कर्मचारियो की, अदालतो की सहानुभूति बडी तेजी से प्राप्त कर रहे है। अदालत मे दरख्वास्त बाद मे पेश होती पर उसकी चर्चा पहले अखबार मे हो जाती। जिस अदालत मे वह दरख्वास्त पेश होती वह भी युगान्तर का पाठक था और उसका मत भी पहले ही से बन जाता था।

धनजय ने जगपुरा के राजा साहब की इस दरख्वास्त का जवाब दिया कि महज मुकदमा दायर करने से कोई गुनाह साबित नही हो जाता। जब तक गुनाह साबित नही हो जाता तब तक अभियुक्त को निर्दोष ही समझना चाहिए। इसलिए इस दरख्वास्त का कोई प्रयोजन नही, और रिसीवर की माग का तो कोई आधार ही नही है। बस, मुकदमा चल निकला, और रिसीवर की बात भी आसमान से टपकी तो बबूल मे अटककर रह गई।

इधर रमज़ान खा तमाम युगान्तर प्रेस के रिकार्डों की छानबीन मे लगा थ कि किसी तरह और मुकदमो का मसाला मिल जाए। हुजूर की मशा यह थी कि

जितने अधिक मुकदमे बन सके उतना ही अच्छा और इसी काम पर रमज़ान खा का इनाम और तरक्की मुनस्सर है।

रमजान खा ने स्पेशल विभाग की पुलिस की इजाजत लेकर अपने असिस्टेन्ट के रूप मे बारह सब-इन्स्पेक्टर मागे। हरएक को एक पुलिस लॉरी दी गई। हरएक के मातहत एक-एक जमादार और आठ-आठ सिपाही तैनात किए गए। इस समय तो रमजान खा जो मागता था वह उसे मिलता था। उसकी एक खासी बादशाहत खडी हो गई थी। वह और उसके आदमी युगान्तर प्रेस मे और उसके कागजातो के ढेरो मे ऐसे घमते जैसे चीनी मिट्टी के बर्तनो की दूकान मे बैल। जहा मरजी आए वहा जाते, पैरो तले जो खूदा-खादी करना हो वह करते। उन्हे सौ खून माफ थे। बस, उनका काम इतना ही था कि कुछ भी करो, युगान्तर के आदमियो का तोडो-फोडो, उसके कागजो की जाच करवाओ और नये मुकदमे दायर कराओ।

पुलिस के इन्स्पेक्टर तफतीश के बहाने प्रेस मे आते, कम्पोजीटरो और मशीन-मैनो को धमकाते। कहते, 'बताओ कितना रुपया खाया गया है, हम तुम्हे इनाम देगे और गवर्नमेन्ट प्रेस मे बडी नौकरी पर लगा देगे।' उन्हे पुलिस थाने मे बुलाते और घण्टो तक वहा अटकाकर रखते। जिन-जिन दुकानदारो के यहा से युगान्तर प्रेस का कागज़ या स्टेशनरी का लेन-देन था, वहा तहकीकात की जाती कि क्या कोई कमीशन खाया गया था या कीमतो मे कोई गडबडी थी।

रमजान खा ने अपनी खाला के चचाजाद भाई हिकमत खा को हिसाब के कागज-पत्रो की जाच कराने के लिए मुकर्रर करवा लिया। वह कोआपरेटिव डिपार्टमेन्ट का रिटायर्ड ऑडिटर था। उसने भी डेढ-दो महीने छानबीन की, पर कही कुछ हाथ नही लगा।

गुप्ता पब्लिक प्रॉसिक्यूटर ने सलाह दी कि मै कलकत्ते से ऑडिटर बुला देता हू। वहा से दो आदमी आए—सेन और घोषला फर्म के। पन्द्रह दिन के भीतर ही उन्होने मुख्य-मुख्य कागजो की जाच की। उन्होने निजी तौर पर गुप्ता को बतलाया कि युगान्तर कम्पनी के एकाउन्ट्स जिस दक्षता और स्पष्टता से रखे गए है उतने हमने बहुत कम कपनियो मे देखे है। हमने सपादक मिस्टर धनजय के ट्रैवलिग (सफर) के वाउचर्स देखे तो पाया कि अक्सर वह थर्ड क्लास और हद हो गई तो सेकेड क्लास से सफर करता था, और दूसरा खर्च भी बहुत मामूली था। आजकल तो यह देखा जाता है कि फटियल से फटियल कपनी का मैनेजिग डायरेक्टर हवाई-

जहाज के सिवा बात नही करता। फर्स्ट क्लास से कम मे तो मामूली कर्मचारी भी यात्रा नही करता। इसीसे हमने समझ लिया कि इसमे कोई गडबड नही है। हम तो इस पचायत मे नही पडते।—उन्होने अपनी फीस तीन हजार रखा लिए और चलते बने।

फिर भी रमजान खा अपनी हरकतो से बाज नही आया। उसने प्रदेश भर के दौरे किए, बडे-बडे भत्ते बनाए, युगान्तर के एजेन्टो और शेयर होल्डरो से मिला—सबपर यही आतक फैलाने के लिए कि युगान्तर ने कयामत ढा दी है और जो कोई उससे ताल्लुक रखता है उसकी खैरियत नही। मतलब यह था कि कोई सबूत मिले तो ठीक, और न मिले तो उसका कारोबार ठप करने मे कुछ न कुछ मदद हो।

प्रेम-कर्मचारियो को जब उसने थाने मे डराया-धमकाया तो धनजय ने उनसे कहा कि घबडाना नही। यह सिर्फ चन्द दिनो का खेल है। तुम्हारा कोई बाल बाका नही कर सकता। उसने फिर एक वक्तव्य लिखा जिसमे पुलिस के काले कारनामो का चिट्ठा तैयार किया कि किस तरह वे सस्था की कमर तोडने के लिए असभ्य, अभद्र और धमकियो से भरा व्यवहार करा रही है। क्या शासन का दिमाग फिर गया है? क्या नागरिको के दैनिक व्यापार-व्यवहार मे इस प्रकार का हस्तक्षेप जायज है? या फिर यहा अब कानून और सुव्यवस्था नाम की कोई चीज नही रह गई है और सारे अधिकार थानेदारो के हाथ मे सौपकर उच्च अधिकारी नीद लेने चले गए है? यह वक्तव्य वह अदालत मे दे आया और दूसरे दिन 'युगान्तर' मे छाप दिया। जनमत क्षुब्ध हो गया। नागरिक स्वातन्त्र्य समिति ने पुलिस के इस व्यवहार की निन्दा की और कहा कि तफतीश का यह तरीका नही है। यदि 'युगान्तर' वालो के हाथ से कोई गुनाह हुआ है तो उन्हे अदालत मे पेश किया जाए पर इस तरह की यन्त्रणाए देने का उसे क्या अधिकार है?

धनजय ने एक लेख और लिखा जिसमे रायसाहब रणदमन सिह का काफी मजाक उडाया था। वे थानेदार से डी० आई० जी० तक बढे थे और अब भ्रष्टाचार-निर्मूलन कमेटी के अध्यक्ष थे। पर उनका दिमाग थानेदार का ही रहा। उनके पास तमाम १४४ रोगो की एक ही रामबाण दवा है कि—थाने पर बुलाओ। कोई नागरिक मुख्य मत्री पर आलोचना करे तो उसे थाने पर बुलाओ। फ्री सिनेमा नही दिखाता तो थाने पर बुलाओ। दिवाली मे पटाखो और मिठाई की डाली नही

भेजता तो थाने पर बुलाग्रो । क्लब मे यदि ब्रिज पार्टी मे हरा देता है तो थाने पर बुलाग्रो । ग्रौर ग्रखबार मे कोई ग्रप्रिय लेख लिखता है तो थाने पर बुलाग्रो ।

इसका कारण यही है कि थानेदार साहब सोचते है कि दुनिया के सभी प्रश्न इडियन पीनल कोड (ताजीरात हिन्द) से ही हल होते है। गीता ग्रौर रामायण से बढकर भी यह ग्रथ है, ऐसी उनकी धारणा हे। पर उससे एतराज करना भी मुश्किल है क्योकि थानेदार साहब की इस धारणा के पीछे एक जायज कारण है

जिस समय ब्रह्मा ने सृष्टि निर्माण की ग्रौर वे ग्रक्ल बाट रहे थे तो थानेदार साहब थाने मे बैठे ऊघ रहे थे। जब उनके सी० ग्राई० डी० ने ग्राकर खबर दी की हुजूर, ब्रह्मदेव ग्रक्ल बाट रहे है, ग्राप भी जल्दी जाकर कुछ ले ग्राइए ताकि ग्रापका थाना भी ग्रच्छा चले। पहले तो ऊघ मे थे इसलिए फौरन बोले, 'उन्हे थाने पर बुलाग्रो।' पर बाद मे सी० ग्राई० डी० ने बताया कि हुजूर भगवान ब्रह्मदेव तो थाने पर ग्राने से रहे, उन्होने ही यदि उलटे बुलावा भेज दिया तो जिन्दगी का किस्सा खतम है। थानेदार की समझ मे वात ग्रा गई। वे जरा झुके ग्रौर ब्रह्मदेव महाराज के यहा पहुचे। उस समय सारी ग्रक्ल बट चुकी थी ग्रौर बाकी कुछ बची नही थी। थानेदार साहब ने वडी मिन्नते की कि भगवन्, हमे भी कुछ दे दीजिए, वरना खाली हाथ लौटूगा तो बडी बेइज्जती होगी। ब्रह्मदेव ने कुछ देर सोचकर एक मोटी किताब उठाई ग्रौर थानेदार साहब के हाथ मे टिका दी ग्रौर कहा, 'यह इडियन पीनल कोड ले जाग्रो। इससे तुम्हारा काम चल जाएगा।'

बस, तबसे थानेदार साहब को सिवा इस वात के ग्रौर कुछ सूझता ही नही है। वे ग्रब हमारे प्रदेश के शासन के सबसे ग्राला सलाहकार है। इसीलिए ऐसा लगता है कि हमारे सूबे मे ग्रब प्रजातान्त्रिक सविधान नही चल रहा है,बल्कि इडियन पीनल कोड चल रहा है, ग्रौर यह प्रदेश ग्रब एक स्वशासित राज्य नही रह गया है, विशाल थाना बन गया हे।

इसी तरह के व्यग्य, वक्रोक्ति तथा उपहास से भरे हुए दो-तीन लेख ग्रौर निकले जिनमे पुलिस ग्रौर उसके तौर-तरीको का गहरा मखौल उडाया गया था। जहा कोई पुलिस का ग्रधिकारी दिखता तो लोग थानेदार कहकर उसका मजाक उडाते। ग्रपनी चुस्त यूनिफार्म की शान-शौकत के बावजूद भीतर ही भीतर वह ढीला पड जाता।

चौथे ही दिन रमजान खा को हुक्म मिला कि ग्रब तफतीश बन्द करो, कोई

मुकदमा दायर कर दो।

धनजय और उसके साथियो पर गवर्नमेट प्रेस की छपाई के सिलसिले मे दफा ४२० मे एक मुकदमा और चलाया गया। धनजय की फिर गिरफ्तारी हुई। इस बार खुद रमजान खा गिरफ्तारी बजाने गया और कहा कि तीन हजार की जमानत दीजिए, मै छोड देता हू।

धनजय ने कहा, 'आज इतवार है, छुट्टी का दिन है, किसके पास जमानत दिलाने के लिए जाऊ ? मेरे पर्सनल बॉण्ड पर छोडते हो तो मै लिख देता हू।'

रमजान खा ने कहा, 'सो तो नही चल सकता। किसीसे जमानत तो दिलानी ही पडेगी।'

'मै और किसीके पास जमानत दिलाने नही जाता। चलिए, बिस्तर बाधकर आपके साथ थाने पर चलता हू। वही चैन से कटेगी।'

वह घबडा गया क्योकि जनमत और प्रोपेगैण्डा के कारण पुलिस को ताजी हिदायते मिली थी कि धनजय के साथ इज्जत से पेश आना और सिर्फ अपनी ड्यूटी बजाना—कोई सीन मत खडा कर देना। पुलिस के अभद्र तरीको से तटस्थ लोग भी क्षुब्ध हो गए थे और कई लोगो ने तो युगान्तर के कटिंग दिल्ली भेजकर पूछा था, 'यह प्रजातन्त्र है या पुलिस-तन्त्र।' पुलिस महकमा जोशी जी की मातहत ही था, इसलिए वे सारे कटिंग वापस उनके पास आए जिनका उन्हे जवाब देना पडा। तबसे पुलिस की नीति बदली और उसने अपना हाथ खीच लिया। अब उसका पैतरा यह था कि किसी तरह एक मुकदमा और दायर कर दो और जैसे बने वैसे कम से कम एक बार तो सजा दिला ही दो।

पर अब तो धनजय के अड जाने से फिर एक नई मुसीबत खडी हो गई। यदि उसे पुलिस की काली मोटर मे थाने या जेल मे ले जाता हू तो फिर एक तमाशा होगा और पब्लिक चिल्लाएगी और पुलिस बदनाम होगी, और मै 'टैक्टलेस' अफसर हू यह ठप्पा मुझपर लगेगा। उसने धनजय को समझाने की कोशिश की

'साहब, यह तो महज जाप्ते की बात है, एक फॉर्मेलिटी है। आप किसीको भी खडा कर दे, मै उससे जमानत ले लूगा।'

'मै भला किससे जमानत दिलाऊ ? मै आपको अपनी ड्यूटी करने से कहा रोकता हू ? मै तो आपके साथ थाने पर या जेल, जहा कहे, चलने के लिए तैयार हू।

आप शायद जानते नही कि मै एक बार तीन-साढे तीन साल की जेल काट आया हू।'

रमजान खा निरुत्तर हो गया। बोला, 'आप सोच लीजिए। मै थोडी देर बाद और किसीको भेजता हू। तब तक कोई जमानतदार तैयार कर लीजिए।' उसकी धनजय को जेल मे ले जाने की हिम्मत न हुई।

रमजान खा ने ऊपर जाकर रिपोर्ट दी कि साहब वे तो अजीब आदमी है। कहते है, जमानत नही दिलवाना, जेल जाने को तैयार हू। मै भला इतनी बडी जिम्मेदारी कैसे ले सकता हू ? मै तो सी० आई० डी० का आदमी ठहरा। आप यह गिरफ्तारी जिला पुलिस को दे दीजिए।'

जिला पुलिस वाले जनमत को ज्यादा अच्छी तरह जानते थे। उन्होने एक सभ्य और शिष्ट व्यवहार वाले सब-इन्स्पेक्टर को तैनात किया कि एडिटर साहब के दोस्त भोलानाथ एडवोकेट है, उनके पास पहले जाओ और उन्हे सब चीज समझाकर उनका सहयोग ले लो तो वे आसानी से जमानत दिला देगे। पर वहा रमजान खा को हर्गिज मत भेजना।

उस सब-इन्स्पेक्टर का भोलानाथ से रोज अदालत मे काम पडता था। उसने अपनी अडचन बतलाई और कहा कि किसी तरह से मेरी मदद कीजिए और जमानत दिला दीजिए। हम लोग उन्हे जेल तो नही ले जाना चाहते।

भोलानाथ ने भी उन्हे डाटा, 'तुम लोग तो उल्टे-सीधे काम करते रहते हो। आज इतवार है—आज ही भला वारण्ट बजाने की क्या जरूरत थी ? किसीके घर मे जाकर तुम क्या उसकी इज्जत लेना चाहते हो ? ऑफिस के दिन वारण्ट बजाते तो दो मिनट मे काम हो जाता—वही कोई भी जमानतदार खडा हो जाता।'

'हा साहब, हम तो ऐसा ही करते। पर यह तो सी० आई० डी० ने किया और रमजान खा का ऊपर से सीधा सम्बन्ध है इसलिए हम भी एतराज नही कर सकते। पर आप ही से कहता हू, आप किसीसे कहिए मत, अभी कप्तान साहब का फोन आया है कि इस काम के लिए रमजान खा को हटा लो।'

जिला पुलिस रमजान खा के तौर-तरीके से नाराज थी। गडबड वह करता था, और बदनामी तमाम पुलिस की होती, और जिला पुलिस को अपना रोजमर्रे का काम करना मुश्किल हो जाता। उसे तो कदम-कदम पर पब्लिक से काम पडता था। रमजान खा को मुह की खानी पडी इसके लिए वह भीतर ही भीतर

खुश थी ।

भोलानाथ ने सब-इन्स्पेक्टर से कहा, 'लाओ तुम्हारा वारण्ट और सिक्यूरिटी बॉण्ड, और तुम यही बैठो। मै अभी इसकी खानापूरी करके ला देता हू। अरे, शकरलाल, इनके लिए चाय बनाना।'

दारोगा का भोलानाथ पर पूरा विश्वास था। उसने कागज दे दिए, हालाकि इसमे खतरा था। भोलानाथ ने अपने एक पडौसी को रिक्शे मे बैठाला और धनजय से गिरफ्तारी वारण्ट और जमानत पर दस्तखत कराकर ले आया। उसने धनजय से कहा

'तुमने रमजान खा पर अच्छा नमदा कसा। म्या की फोटू खिच गई। वह इस काम से हटा लिया गया है।'

४०

धनजय की दुबारा गिरफ्तारी के समाचार युगान्तर मे छपे, जिन्हे पढकर जनमत और भी प्रक्षुब्ध हो गया। शासकीय पार्टी के लोग भी कहने लगे कि यह अब ज्यादती हो रही हे और इसमे हम लोग बदनाम हो रहे है। पर जोशी जी से कहने की किसीकी हिम्मत नही होती थी क्योकि धनजय के स्टेटमेट मे उनपर जो सीधा आक्रमण था उसके बाद वे इतने भरे बैठे थे कि जो इस विषय पर बात निकालता उसीपर भडक उठते। रायसाहब रणदमन सिह भी कुछ सिमट गया। उसके तौर-तरीको ने लाभ पहुचाने की बजाय नुकसान ही पहुचाया। युगान्तर के कर्मचारियो मे आतक और घबडाहट फैलाने के बाद तथा उसके नियमित प्रकाशन मे कुछ व्यत्यय खडा करने के बाद उसकी योजना यह थी कि धनजय को रात को कही पकडकर गुण्डो से पिटवा दिया जाए। पर पुलिस की सरगर्मियो की जो प्रतिक्रिया हुई उसे देखकर वह सहम गया और यह बात उसकी समझ मे आने लगी कि धनजय का बाल भी बाका हुआ तो लोग उसका दोषारोपण सीधे मुख्य मत्री पर करेगे क्योकि पुलिस महकमे के चार्ज मे वही है। उलटे उसे यह खौफ हो गया कि इस वातावरण मे यदि उसके छदामी

सरीखे व्यावसायिक प्रतिस्पर्धी कही उसे व्यक्तिगत द्वष के कारण या दुश्मनी के लिए पिटवा देगे तो भी दोष हमी पर आएगा। इस चिन्ता मे उसने खुफिया तौर पर इतना इन्तजाम कर दिया कि साधारण पोशाक मे दो सिपाही धनजय के मकान के आसपास गश्त लगाते रहे और उसके व्यक्तित्व की हिफाजत करते रहे। उसकी हलचलो की वे रिपोर्ट भी दे सके तो ठीक है, पर वह उनका मुख्य काम नही है।

इस तजवीज की फुसफुसाहट पुलिस विभाग मे सब जगह पहुच गई। उनकी धारणा हो गई कि अब पुलिस का मोर्चा वापस लिया जा रहा है। विभाग के अधिकाश कर्मचारी इस घटना से खुश थे क्योकि रणदमन सिह और रमजान खा के हुडदग से वे भी परेशान थे।

अब गिरधारी और रणदमन सिह की सारी चाले अदालत के मोर्चे पर केन्द्रित हो गई। धनजय के खिलाफ मुकदमो की सख्या बढती गई। उसकी पेशिया पास-पास रखी जाती ताकि धनजय को ज्यादा समय तक अदालत मे ही अटकना पडे और वह युगान्तर का काम न देख सके। यह सच था कि महीने के बीस दिन उसे अदालत मे हाजिर होना पडता और बाकी का समय मुकदमो की तैयारी मे वकीलो के घर के चक्कर काटने मे खर्च होता। सरकार पक्ष उसे एक मिनट की फुर्सत भी नही देना चाहता था। वह चाहता था कि एक न एक मुकदमा जल्दी समाप्त हो और उसे सजा सुना दी जाए। उस सजा की खबरे सवाद-एजेन्सी के जरिये अखिल भारतीय समाचारपत्रो मे छपा दी जाएगी। धनजय का मुह काला हो जाएगा। जब तक वह ऊपर की अदालतो से छूट नही जाता तब तक तो उसका किस्सा खतम हो जाएगा। जालसाजी और फरेबी का जुर्म साबित हो जाने पर कानूनन वह 'युगान्तर' के सचालन से भी हटा दिया जाएगा। जो अखबार आज उसका सबसे बडा शस्त्र और सबसे बडी ढाल बना बैठा है वह उसके हाथ से छिन जाए तो उसका दम उखडने मे क्या देर लगेगी ?

धीरे-धीरे पुलिस और सरकार का कानूनी फदा उसके गले के आसपास कसता जा रहा था। उसपर ज्यादा तनाव पडने लगा। परिश्रम तो दिन-रात करना पडता। खाना और सोना भी हराम हो गया। रात को एक बजे तक उसे कानूनी कागजो से उलझना पडता था। सुबह वकीलो के घर जाता, दिनभर कोर्ट मे बीतता, शाम को अदालत की कार्रवाई की रिपोर्ट युगान्तर के लिए लिखनी

पडती, और फिर किसी तरह दो-चार कौर मुह मे ठूस लेने के बाद फिर वकीलो से माथापच्ची करने जाना पडता। दूसरे अभियुक्तो ने सारे सूत्र उसीके हाथ मे छोड दिए थे। भोलानाथ को छोडकर उसका कोई सच्चा मददगार नही था।

इस युद्ध को शुरू हुए एक साल होने को आया था। सरकारी पक्ष के पास तो सभी प्रकार की सुविधाए थी, अनेक मददगार थे। जो भी खर्च होता सरकारी खजाने से होता था। व्यक्तिगत रूप से जोशी जी पर कोई बोझ ही नही था। यहा तो करीब-करीब सभी कुछ धनजय को करना पडता और सभी खर्च का भार 'युगान्तर' को उठाना पड रहा था। सात-आठ मुकदमे साथ ही चल रहे थे। वह खुद काम-धन्धे की तरफ तो देख ही नही पाता था। एकाध घण्टा ऊपरी-ऊपरी तौर पर मुख्य बातो को देख लेता, बाकी बेचारे उसके कर्मचारी करते थे।

एकाएक उसने सुना कि दफा ४२० का केस कोर्ट मे पेश होते ही सरकार ने हुक्म निकाल दिया कि 'युगान्तर' के सारे सरकारी विज्ञापन बन्द कर दिए जाए। महज मुकदमे का दायर हो जाना जुर्म का साबित होना नही है, और इस स्थिति मे इस तरह के हुक्म के लिए कोई न्यायोचित कारण नही था। पर न्याय-अन्याय की कौन सुनता है? यहा तो सारा काम जुल्म और ज़बर्दस्ती से चल रहा है। सीधी नग्न लडाई चल रही है, धर्मयुद्ध तो है ही नही, कम से कम सरकार के लिए तो है ही नही। जो भी हथियार मिले चलाओ, आगे-पीछे मत देखो।

अब तक के वारो मे यह सबसे भयकर था क्योकि यह 'युगान्तर' के आर्थिक जीवन का गला ही घोटने वाला था। इससे अखबार को तीन हज़ार रुपये महीने का नुकसान होने वाला था। कानूनी लडाई मे दो हजार रुपये महीने का खर्च था। जो अखबार किसी तरह जमा-खर्च का जोड-तोड मिलाकर जनता की सेवा कर रहा था, वह पाच हजार का नुकसान कितने दिन भरेगा? और इस लम्बी लडाई मे यदि वह मुकदमे जीत भी जाए, क्योकि वे झूठे और बनावटी है, फिर भी उसके पहले सस्था आर्थिक बोझ के कारण ही बैठ जाए तो क्या फायदा? समाचारपत्र का यह आकस्मिक मरण तो सारा खेल खतम कर देगा। हे भगवान! कैसे नैया पार लगेगी?

उसने यह भी सुना कि प्रदेश की सरकार इन्ही कारणो को पेश करके केन्द्रीय सरकार को लिख रही है कि वह भी अपने विज्ञापन बन्द कर दे। ऐसा हुआ तो कल का मरण आज ही सिर पर आ खडा होगा।

इस भयकर स्थिति मे भी उसे सबसे बडा दु ख इस वात का हुआ कि उसके सहयोगी समाचारपत्रो ने उसका साथ नही दिया। एक तो वे मुख्य मन्त्री की ताकत से घबडाते थे, और दूसरा उन्हे यह प्रलोभन दिया गया था कि 'युगान्तर' से वापस लिए हुए सारे विज्ञापन दूसरे समाचारपत्रो मे वितरित कर दिए जाएगे।

आज एक पत्र के पीछे सरकार हाथ धोकर पडी है, उसका रक्त पिए बगैर रहेगी नही। वह अकेला अपने सरक्षण की ही नही पर स्वतन्त्र पत्रकारिता के सरक्षण की लडाई लड रहा है। पर शासन का आतक इतना है कि दूसरे पत्रकार तटस्थ होकर एक सहयोगी की पल-पल, तिल-तिलकर होने वाली मृत्यु को निर्विकार अन्त करण से देख रहे है। अपनी जरा-सी आवाज नही उठाते, उगली उठाना तो दूर रहा। फौजदारी मुकदमो मे तो उनका कुछ कहना ठीक नही था, पर इस विज्ञापन के ऑर्डर के बारे मे क्या कहा जाए ? यदि धनजय ने फरेब किया हो तो सजा उसे मिलनी चाहिए। व्यक्ति के दोष के लिए सस्था को दण्ड क्यो ? उस बेचारे समाचारपत्र ने क्या किया ? हा, उसके किसी लेख या प्रकाशन पर मुकदमा चलाकर उसे सजा दी जाए तब की बात कुछ समझ मे आ सकती है। पर सरकारी प्रेस की छपाई के मामले मे, जिसमे व्यक्तिगत रूप से धनजय और उसके कुछ कर्मचारी आते हो, युगान्तर का क्या सम्बन्ध आता हे ? और दलील के लिए मान भी लिया कि सम्बन्ध आता है, तो जुर्म साबित करने के पहले ही दण्ड कैसे दिया जा सकता है ? इस तरह तो कोई भी सब-इन्स्पेक्टर किसी भी समाचारपत्र के सम्पादक के खिलाफ कोई भी फौजदारी का मुकदमा दायर कर सकता हे और सरकार को उसके विज्ञापन बन्द करने का कारण मिल सकता है। समाचारपत्र के अस्तित्व और स्वातन्त्र्य पर यह कितना भयकर हमला है ! और चूकि वह अप्रत्यक्ष है, कितना खतरनाक है !

पर इसके खिलाफ भी उसके सहयोगी आवाज उठाने के लिए तैयार नही है। सरकार का भय और विज्ञापनो का लोभ उनकी कलम और जबान पर ताले बाधे है। हे प्रभु, इस देश मे प्रजातन्त्र कैसे चलेगा ? कैसे पनपेगा ? उसकी स्वस्थ परम्पराए कैसे स्थापित होगी ? ये मित्र यह भी नही सोचते कि आज 'युगान्तर' की बारी है, कल हमारी भी आ सकती है। 'युगान्तर' जैसा आदर्शनिष्ठ और लडाकू अखबार यदि इसमे नही टिका तो दूसरे अखबारो की क्या बिसात ?

इस घटना से धनजय को बडी ठेस लगी। वह अपने आपको अकेला और असहाय अनुभव करने लगा।

'गीता, अब क्या होगा ? भगवान कैसे हमारी लाज रखेगे ? मै बर्बाद हो जाऊ इसकी चिन्ता नही है, पर जिन तत्वो और आदर्शो के लिए मै लड रहा हू उनकी क्षति हुई तो सार्वजनिक जीवन का कितना नुकसान होगा, जनता की शक्ति का कितना ह्रास होगा, आततायियो का हौसला कितना बढ जाएगा ?'

गीता ने कहा, 'कुछ नही होगा। सब ठीक होगा। यही तो अग्नि-परीक्षा का समय है। जब चारो तरफ अधेरा ही अधेरा दिखता है, उसीमे प्रकाश की किरण समाई हुई होती है। प्रकाश के पूर्व का अन्धकार ही तो सबसे घनघोर होता है। धीरज रखो, और अपनी आस्था और विश्वास को रचमात्र भी डिगने मत दो। मुझे अटूट श्रद्धा है कि योगेश्वर कृष्ण हमारा साथ नही छोडेगे।'

उसी क्षण भोलानाथ के नौकर शकर ने आकर खबर दी कि बाबा जी आए है। वकील साहब ने आपको तथा माताजी को तुरन्त बुलाया है।

बाबाजी ! सत देवाजी महाराज ! विधि की भी क्या घटना है ? और निराशा के समय ही आशा की नई किरण और सन्तो के दर्शन !

धनजय और गीता ने हाथ-पैर धोए, कपडे बदले और ठाकुर जी के सामने कपूर और ऊदबत्ती लगाकर साष्टाग दण्डवत कर वे तुरन्त भोलानाथ के यहा जाने के लिए निकल पडे।

४१

भोलानाथ ने धनजय और गीता का बाबाजी से परिचय कराया, 'बाबाजी, ये मेरे घनिष्ठ मित्र है। आजकल एक घोर अग्नि-परीक्षा दे रहे है। कई दिनो से आपके दर्शनो के इच्छुक थे।'

धनजय और गीता ने झुककर उन्हे प्रणाम किया तो बाबाजी ने दोनो हाथ जोडकर और अपना माथा धरती पर टिकाकर उन्हे नमस्कार किया। धनजय उनकी इस शालीनता और विनम्रता को देखकर दग रह गया।

नीचे एक चटाई बिछी थी पर बाबाजी चटाई छोडकर इसके एक कोने मे ज़मीन पर ही बैठे थे। उन्होने धनजय को चटाई पर बैठने का आग्रह किया। वह सकुचित होकर एक कोने मे बैठ गया।

और फिर धनजय ने बाबाजी की ओर देखा, उनकी आखे मिली।

उनकी आखो मे प्रेम और वात्सल्य का भाव ओत-प्रोत था। उनमे एक सौम्य दीप्ति थी, एक प्रकार का तेज था, जिसके कारण उनके नेत्र चमक रहे थे। उम्र होगी साठ-पैसठ के बीच, पर चेहरा स्वाभाविक आभा से दमक रहा था। उनका वर्ण भी काला-सावला था, कालेपन की तरफ विशेष झुकता था। सिर पर एक टोपी थी जिसपर एक गुलूबन्द साफे की तरह बाधा हुआ था। बदन मे एक अग-रखा था जिसपर एक काले और सफेद चौखडी की चादर ओढी हुई थी। धोती भी कुछ तग और ऊची ही थी, पास ही उनकी लाठी रखी हुई थी। उनका लिवास देखकर तो कोई उन्हे एक किसान ही कहता।

पर जब उनका दन्त-विहीन चेहरा मुस्कराता तो ऐसे लगता जैसे फूल झर रहे हो। परम सात्विकता, परम स्नेह एव आत्मीयता, परम शान्ति और परम आनन्द उसपर खिल उठता था। ऐसे लगता जैसे वे अपने अन्त करण के समस्त प्रेम और वात्सल्य भाव से ही मुसकरा रहे है। कैसा प्यारा उन्मुक्त उनका हास्य था!

यो सर्वसाधारण मानदण्डो के अनुसार उन्हे सुन्दर तो कदापि नही कहा जा सकता था। पर उनके निर्मल और खुले हास्य मे, उनके प्रत्येक हाव-भाव मे, आत्मा का अपार सौन्दर्य जगमगा उठता था। साक्षात् प्रेम की प्रतिमूर्ति! धनजय को एकाएक गाधीजी की याद आ गई।

गाधीजी को भी धनजय ने सेवाग्राम मे निकट से देखा था, उनकी प्रार्थनाओ मे शामिल भी हुआ था, दो-एक बार उनसे आमने-सामने बैठकर चर्चा करने का अवसर भी उसे मिला था। बस उनमे भी यही पाया था—न रूप न रग, पर आन्तरिक सौन्दर्य का निस्सीम पुज, वही प्रेम से लबालब भरा हुआ उन्मुक्त हास्य!

बाबाजी ने बाद मे चलकर उसे बताया था कि वे भी गाधीजी के पास सेवा-ग्राम मे एक महीने रहे थे। गाधीजी को सतो और भक्तो की सगति मे आनन्द आता था, और उन्हे वे कई दिनो तक बिना किसी दिखावे के या चर्चा-चौकसी के अपने

आश्रम मे रख लेते थे। अन्य आश्रमवासी शायद उन्हे पहचान भी नही पाते हो, पर गाधीजी को असली साधु-सतो की पहचान थी और वे उनकी कद्र करते थे, उनकी सगत मे बडा आनन्द लेते थे।

बाबाजी को देखकर उसे राष्ट्रपुरुष का स्मरण आ गया, जो अब देह छोडकर इस पुण्यभूमि से चला गया था, यह कहकर कि मै तो अपनी कमाई रख के चला, अब यह तुम्हारी इच्छा की बात है कि उसे सम्हालो या उडाओ।

धनजय ने भी काफी साधु-सत देखे थे, पर इतनी विनम्रता, इतना सौजन्य उसने कही नही पाया था। अधिकाश सतो मे एक श्रेष्ठत्व की और अहता की भावना रहती और लोग उनके चरण छूकर प्रणाम करते तो वे खडे-खडे ही उसे स्वीकार करते। यहा बाबाजी पैर छूने देना तो दूर रहा स्वय इतना झुककर प्रणाम करते है कि उनका सिर और भुजाए धरती का ही स्पर्श करती है। अद्भुत बात है!

धनजय को उनके इस प्रेमपूर्ण स्वागत मे ही बडा आश्वासन और सुख मिला। उसके दग्ध अन्त करण को, जो अभी कुछ देर पहले व्यथा से छटपटा रहा था, बडी शान्ति मिली। बाबाजी ने गीता की तरफ भी उसी प्रेम और आत्मीयता की भावना से देखा जैसे वे मा के दर्शन कर रहे हो, सब कुछ देख-परखकर समझ गए हो। और उन्होने अपनी गर्दन इस तरह हिलाई जैसे वे अपनी दृष्टि से ही उन दोनो को बाध लिया।

भोलानाथ ने कहा, 'बाबाजी, ये आजकल जीवन और मरण के सघर्ष मे जूझ रहे है। इनके खिलाफ बडी-बडी सत्ता है, राजकाज है, पुलिस है, धन है और इनके साथ भगवान के सहारे के और कुछ नही है। बडा कठिन समय है।'

'हा रे भाई! करने दो उन्हे अपने मन की। कितना करते है, करने दो! ऊपर देखने वाला भगवान तो बैठा ही है। उसे सब कुछ दिखता है। अधेरे मे छिपकर भी तुम कुछ करो तो वह भी उसे दिखता है। अपना-अपना भोग तो सबको कम-ज्यादा भोगना ही होता है, पर बाद मे भगवान सबकी परख कर लेता है और सब ठीक कर देता है। समय तो लगता ही है रे भाई।'

'पर ये तो सबके कल्याण की भावना ही रखते आए है ' भोलानाथ ने कहा, 'पर इनके पल्ले ही इतना दु ख-भोग क्यो पडा है? और जो दिन-दहाडे लूट-खसोट करते है वे तो गुलछर्रे उडा रहे है।'

'इनका भी कोई दोष रहा होगा भाई ! असगत की सगत कर ली होगी, तभी यह कष्ट सिर पर आ पडा। आदमी को हमेशा समानधर्मियो से ही मित्रता करनी चाहिए।'

'यह बात आपने ठीक कही बाबाजी।' धनजय एकदम बोल उठा 'मेरे हाथ से यही दोष हुआ कि मैंने समानशील लोगो से सख्य नही किया, आदमियो की ठीक से पहचान नही की। पर जिस समय मैने यह किया उस समय मेरी दृष्टि स्वार्थं की नही थी, सेवा की थी, परमार्थ की थी। वैसे स्वार्थं तो सबके साथ लगा रहता है, और परमार्थं मे भी स्वार्थ छिपा रहता है। पर मेरी दृष्टि मे परमार्थ प्रथम था और स्वार्थ गौण था। फिर भी गलती तो हो ही गई और उसका प्रायश्चित्त भोगना भी आवश्यक है। सो भोग रहा हू। पर एक ही चिन्ता है बाबाजी—मेरा कुछ भी हो जाए पर जिन मूल्यो को लेकर मै लड रहा हू उनकी पराजय हो गई तो बडा अनर्थ हो जाएगा।'

'नही, उनकी पराजय तो नही होगी, और तुम्हारी पराजय भी नही होगी क्योकि तुम्हारा हृदय शुद्ध है। पर आखिर तुम्हारे शत्रुओ ने भी तो पूजा-पाठ करके पुण्य-बल कमाया है। उसका भी आधार बडा था तभी तो वे राज्य-सुख भोग रहे है। पर अब उनका पुण्य क्षीण हो रहा है, और इस कष्ट-भोग के कारण तुम्हारा बढ रहा है। इसलिए तुम्हारी पराजय तो कभी नही होगी। पर वह काम धीरे-धीरे, शान्ति से होगा। हम तो उनका भी अकल्याण नही चाहते। हम तो यही चाहते है कि उन्हे भी भगवान सुबुद्धि दे।' बाबाजी ने कहा।

'कभी-कभी हृदय बडा व्यथित हो जाता है बाबाजी ! समझ मे ही नही आता कि ऐसा क्या भयकर अपराध हो गया है जो इस तरह आग की भट्ठी मे तपना पड रहा है।' धनजय बोला।

'सोने को ही तो भट्ठी मे तपना पडता है रे भाई ! सीसे को यह सौभाग्य कहा? रामचन्द्र जी तो स्वय भगवान थे। उनका वनवास कही टला ? और पच-पाण्डव ? साक्षात् धर्मराज उनके साथ थे और कृष्ण भगवान का उन्हे सहारा था, फिर भी उन्हे कैसे दर-दर घूमना पडा ? जो धर्म के लिए लडते है उनका तो ऐसा ही होता है रे भाई ! पर आखिर मे हमेशा धर्म की ही जीत होती है। मुझको तो इसमे कुछ समझ नही आती है, मै तो एक अनाडी आदमी हू। जो कुछ करते है सो तो भगवान करते है।' उन्होने कहा और फिर एक बार माथा झुकाकर पूर्ववत् नमस्कार

किया जिसके फलस्वरूप सामने जो लोग बैठे थे उन्होने भी उसी प्रकार नमस्कार किया।

'बाबाजी, इस कष्ट-निवारण के लिए क्या मुझे कुछ करना चाहिए ? जब हृदय का मथन तीव्र हो जाता है तब मन बडा घबडाने लगता है।' धनजय ने पूछा।

'जब कोई कष्ट हो तो हमारे नाम की एक अगरबत्ती और थोडा-सा कपूर लगा दिया करो और भगवान का स्मरण किया करो। बस, करने-धरने वाला तो वही है, मै तो कुछ भी नही कर सकता।' ऐसा कहकर बाबाजी ने लाठी उठाई और चलने को उद्यत हुए।

धनजय ने उठते-उठते पूछा कि आपके दर्शनो से मुझे बडी शाति मिली। अब फिर कब दर्शन होगे ?

'आप हमारे गाव मे आइए। शान्ति से एक-दो दिन रहिए। आप तो हमारे भगवान है—पिताजी है, माताजी है। मै तो आपका लडका हू। आप देखिए तो सही आपका लडका किस जगल मे पडा है ?'

धनजय और गीता इस अजीब सौजन्य के सामने अपने आपको अत्यन्त छोटा अनुभव करने लगे, और भीतर ही भीतर सिमट गए। धनजय ने भरे हुए कण्ठ से कहा, 'हमारे ये भाग्य कहा, बाबाजी। हमी लोग आपके बच्चे है, और आपने यदि बच्चो के रूप मे हमे अपने चरणो मे जगह दे दी तो हमी धन्य हो उठेगे।'

बाबाजी ने भोलानाथ की तरफ मुडकर कहा, 'आप इन्हे एक बार सोनखेडा तो लाइए। आनन्द हो जाएगा।' और अन्तिम बार फिर धनजय और गीता को पूर्ववत् नमस्कार करके कहा, 'आप किसी बात की चिन्ता मत करो। भगवान सब ठीक कर देगे।' और बाबाजी द्रुत गति से वहा से चले गए।

भोलानाथ ने कहा, 'लो धनजय, तुम्हे आशीर्वाद तो मिल गया। तुम्हे उन्होने सोनखेडा बुलाया है, इसमे बडा मर्म है। अब तो तुम्हारा काम हो जाएगा। मै बहुत खुश हू।'

धनजय और गीता ने भी मन मे बडी शान्ति अनुभव की। हृदय मे जो दाह चल रहा था वह भी शान्त हुआ।

४२

धनजय को बीच मे ही अदालतो की तारीखो से पाच दिन की मुहलत मिली तो एकदम दिल्ली भागा और उसने केन्द्रीय सरकार के सामने युगान्तर के विज्ञापनो का प्रश्न उपस्थित किया। उसने बताया कि उसके प्रदेश की सरकार उसके पीछे किस तरह हाथ धोकर पडी है, और उसके पीछे कौन-से कारण है। अपने साथ छल की पूरी कहानी जब उसने कह सुनाई तो वे सवा घण्टे तक एकाग्र चित्त से हैरत मे आकर उसे सुनते रहे। बोले, 'इतना तक आपके सूबे मे हो रहा है ? हमे पता ही नही था। खैर, हम उन्हे विज्ञापन जारी करने के लिए तो नही कह सकते क्योकि प्रान्तीय सरकार के विज्ञापन एक प्रान्तीय विषय है, पर जहा तक केन्द्रीय सरकार का प्रश्न है, वह प्रान्तीय सरकार के विचारो से नही चलेगी और न उनसे प्रभावित होगी, इतना आश्वासन हम दे सकते है। जब तक कोई समाचारपत्र जातीय द्वेष को नही उभाडता या आबजेक्शनेबल मैटर्स एक्ट के नीचे नही आता है तब तक हम किसी समाचारपत्र के विज्ञापन बन्द नही करते।'

धनजय ने बताया कि प्रान्तीय शासन के दबी जबान के मत-प्रदर्शन के कारण तथा युगान्तर के प्रतिस्पर्धी के प्रचार के कारण केन्द्रीय सरकार के कुछ विज्ञापन कम हो गए है तो उन्होने आश्वासन दिया कि वे इसकी जाच करेगे और बराबर न्याय करेगे।

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रान्तीय शासन के पत्र के पहले ही दिल्ली मे युगान्तर की पेशबन्दी हो गई, और पहले जो विज्ञापन मिलते थे उससे अधिक मिलने लगे। प्रान्तीय शासन के विज्ञापनो के अभाव मे जो क्षति हो रही थी वह कुछ अश मे इससे पूरी हुई। यह काम तो ठीक बन गया। धनजय ने सतोष की सास ली।

धनजय राष्ट्रीय दल के कुछ वरिष्ठ नेताओ से मिला। उनमे से दो-एक तो उसके जेल के ही साथी थे, और उसके त्याग, राष्ट्रीयता और बुद्धिमत्ता से प्रभावित थे। वे बडी उत्सुकता से पूछते कि यह सब क्या झमेला है ?

धनजय ने अपनी सारी गाथा कह सुनाई। वे भी दत्तचित्त होकर सुनते रहे। जब पुलिस की ज्यादतियो का किस्सा उन्होने सुना तो वे सचमुच क्रुद्ध हुए, 'अपने पुराने साथियो के साथ इतनी दूर तक जाना बडी घृणित बात है। पर हम लोग यहा से कुछ कर भी नही सकते। मुख्य मत्री से जब-जब हमने कुछ पूछा तो उन्होने

कहा कि मामला विचाराधीन है, और कानून अपना काम कर रहा है। उसमे दखल भी कैसे दिया जा सकता है ?'

'इसीलिए मै भी आप लोगो के पास नही आया, हलाकि यहा भी मेरे मित्रो की सख्या कम नही है।' धनजय ने कहा, 'मै जानता था कि यह चरित्र का लाछन तो भरी अदालत मे लगाया गया है। इसके लिए कही दौड-धूप करूगा तो लोग यही कहेगे कि कही कमजोरी है इसीलिए इतनी भाग-दौड कर रहा है। यह लाछन तो अब अदालत के मार्ग से ही धुल सकता है, फिर उसमे तीन वर्ष लग जाए चाहे पाच। ऐसे व्यक्ति के हाथ मे शासन रहे या न रहे यह तो आपकी पार्टी का सवाल है। अभी तो मेरे सामने केवल अपने चरित्र को साफ करने का ही सवाल है। यहा तो मै विज्ञापनो की उलझन के कारण आया। वरना इस समय तो मेरे लिए दिल्ली आना भी ठीक नही है। जिस मैदान मे लडाई चल रही है उसीमे लडना मेरा कर्तव्य है। अब तो मुकदमे वापस होने मे भी मुझे दिलचस्पी नही है क्योकि उसमे मेरा चरित्र निष्कलक नही होता है। अब तो जो चल रहा है, वही ठीक है, और मुझे वह सब भुगतना ही होगा। पर इतना कहे देता हू कि जब इसकी कहानी लिखी जाएगी तो आपके आखो मे आसू आ जाएगे कि स्वतत्रता के बाद प्रजातत्र मे ऐसा भी हो सकता है ? तब आप देखेगे कि किस तरह हम गाधीजी की दी गई धरोहर का पुण्य दोनो हाथो से उडाने मे मशगूल है। एक धनजय नही सौ धनजय का सर्वनाश हो जाए तो देश का कुछ बनता-बिगडता नही। पर स्वातत्र्योत्तर भारत के मदिर की पवित्रता को, अस्मिता को इस तरह भग्न और लाछित होने देना ही देश के लिए सबसे बडी ट्रैजेडी है। आपने-हमने साथ मिलकर आजादी की लडाई मे कष्ट भोगे है, तो क्या यह दिन देखने के लिए ?'

धनजय नमस्कार करके चलने लगा। वे राष्ट्रीय दल के श्रेष्ठि उसकी बातो से गभीर और चिन्तित हो गए। वे बोले, 'यह सब सुनकर मुझे बडा दुख होता है। लेकिन जब तक एकाध मुकदमे मे वे नही हार जाते है, तब तक उनके खिलाफ कदम उठाना भी तो सभव नही है।'

'मै कहा यह कहने आया हू कि आप उनके खिलाफ कोई कदम उठाइए ' धनजय ने तपाक से जवाब दिया। 'वहा तो मुझे अपने सामर्थ्य से ही लडना है, यह मै जानता हू। पहले स्वतत्रता की लडाई मे दस-बीस साल बर्बाद हुए, अब स्वतत्रता मिलने के बाद उसकी शुद्धता और पवित्रता बनाए रखने की लडाई मे दस-

पाच निकल जाएगे। कुछ लोगो की किस्मत मे तो लडना ही बदा होता है, उसके लिए आप-हम क्या करे ?'

वे सज्जन सहृदय थे, धनजय के साथ उनकी पूरी सहानुभूति थी, पर अपनी असहायता के कारण मन ही मन झुझला उठे। उन्होने केवल इतना ही किया कि अपने दो-चार सहयोगियो को युगान्तर-काण्ड की कहानी कह सुनाई। उससे नतीजा यही निकला कि दिल्ली मे जोशी जी के खिलाफ का वातावरण और भी खराब हो गया।

दिल्ली से लौटते ही धनजय ने भोलानाथ से कहा, 'राजधानी की यात्रा तो सफल हो गई। अब चलो, सोनखेडा चले, बाबाजी के पास।'

'जरूर-ज़रूर।' भोलानाथ उत्साह से बोल उठा।

४३

भोलानाथ और धनजय दोनो ही बाबाजी के गाव के लिए रवाना हुए। गीता नही आ सकी क्योकि अर्चना की परीक्षा थी। प्रात काल का सुहावना समय था। सोनखेडा जाने के लिए करीब-करीब पौन सौ मील की रेलयात्रा करनी पडती थी और एक छोटे-से स्टेशन पर उतरना पडता था जिसपर सिर्फ पैसेजर गाडी ही ठहरती थी, मेल-एक्सप्रेस नही। ठण्ड के दिन थे। दोनो मित्र पैसेजर गाडी के तीसरे दर्जे मे बैठ गए। गाडी प्रत्येक स्टेशन पर रुकती हुई मन्थर गति से चली जा रही थी। दोनो ओर हरे-भरे खेत थे जो आखो को बडे प्यारे लगते थे, राहत पहुचाते थे। इतने मे एक अन्धा भिखारी डिब्बे मे चढ आया और गा-गाकर भिक्षा मागने लगा। उसका स्वर अच्छा था। भीतर घुसते ही उसने अपनी डफली के थाप पर एक भजन सुनाया

जानकिनाथ सहाय करे जब, कौन बिगाड़ करे नर तेरो।

वह अन्धा भिखारी तो अपनी मस्ती मे मगन होकर गा रहा था, पर धनजय को लगा जैसे वह उसीके लिए गा रहा है। भजन मे बताया गया था कि रवि, मगल, बृहस्पति आदि ग्रह वरदायक होते है और जानकीनाथ की कृपा से राहु, केतु और

शनिश्चर जैसे ग्रहो की कुछ नही चलती। करुणानिधि ने सहायता की तो विमल द्रौपदी चीर बढ गया और दुष्ट दु शासन कुछ नही कर सका। अन्त मे उसने अपनी आवाज चढाकर कहा

जाकी सहाय करी करुणानिधि, ताके जगत में भाग बडेरो।
रघुवशी सतत सुखदायी, तुलसीदास चरण को चेरो॥

भोलानाथ ने सार्थ नेत्रो से धनजय की तरफ देखकर कहा, 'लो, यह शुभ शकुन देख लो। करुणानिधि जिसके सहायक है वह वास्तव मे बडभागी है। हम लोग करुणानिधि के पास ही तो जा रहे है।'

धनजय ने भिखारी को दक्षिणा दी और भोलानाथ से पूछा, 'तुम्हारा बाबाजी से कब का परिचय है भोला ? तुम्हे क्या अनुभव हुआ है ?'

भोलानाथ ने बीडी सिलगाई और कहा, 'हमारा भी चार-पाच वर्षो से सम्बन्ध है। मेरी एक भतीजी है, जिसका ब्याह हो गया है। उसे मेरी पत्नी ने बच्ची की तरह पाला। उसकी मा तो उसका जन्म होते ही चली गई थी। उसके माता-पिता ने उसे जन्म जरूर दिया, पर कर्म से हमी लोग उसके माता-पिता थे। मेरी पत्नी के मरने के बाद उसे भयकर धक्का लगा। उसे लगा जैसे उसकी मा का ही स्वर्गवास हो गया हो। पहली मा की मृत्यु के समय तो उसे कोई ज्ञान नही था, पर इस बार वह स्यानी हो चुकी थी, शोक बर्दाश्त नही कर सकी। उसे फिट आने लगी, और वे फिट भी कैसी ? आती तो बारह-बारह तेरह-तेरह घण्टो तक रहती। बिटिया बेहोश पडी रहती और हम लोगो का कलेजा फटा जाता था, कुछ नही कर पाते थे। उसकी व्यथा मे मैं अपनी पत्नी के मरने का दुख भी भूल गया। बडे-बडे डाक्टर और वैद्य आए। कोई आराम नही हुआ। पैसा तो पानी की तरह बर्बाद हुआ, ओषधिया, इजेक्शन, जो जिस डाक्टर ने बताया सो सब किया पर कोई नतीजा नही निकला। एक बार तो उसे धरती पर उतारकर रख दिया। डाक्टर ने देखा तो नाडी बन्द, सास भी बन्द। मेडिकल साइन्स के लिहाज से तो वह खतम हो गई थी। घर मे रोना-पीटना शुरू हो गया था। इतने मे बडे भैया का पुराना चपरासी आया—गगाधर। बोला, अभी कपूर और अगरबत्ती लाओ और देवाजी महाराज के नाम से लगाओ। हम लोग तो यह शास्त्र कुछ जानते ही नही थे। पर फौरन कपूर-ऊदबत्ती लगाई। गगाधर ने पाच ऊदबत्तिया और एक कपूर की बट्टी बिटिया के सिर के पास लगाई और एक तश्तरी मे अलग

कपूर और दो अगरबत्तिया जलाकर बिटिया के सारे शरीर पर से घुमा दी और मुह से धीरे-धीरे वह 'धावगा देवाजी देवा' पुटपुटाना जाता था। इसका अर्थ था कि देवाजी दौडो, सहा यता के लिए तुरन्त आ जाओ। मै दीन होकर टेरता हू। यह देवाजी महाराज की आरती का वचन था। आश्चर्य की बात कि पाच मिनट मे ही बिटिया का शरीर हिल उठा और थोडी ही देर बाद उसकी आखे खुलने लगी। पर उनमे शून्य भाव था जैसे वह न जाने किस देश की यात्रा करके लौटी हो और अपने अनुभव के बाद दिङ्मूढ हो गई हो। गगाधर का उत्साह बढा और उसने चार-पाच चेले-चाटियो को इकट्ठा किया और भक्ति-भाव के साथ पूरी आरती कह सुनाई। बिटिया के पति और भाई तथा हम लोग गद्गद हो गए। हमारे आसू आनदाश्रु मे बदल गए। बिटिया को फिर उठाकर बिस्तर पर रख दिया गया।

'गगाधर ने कहा कि घडी टल गई है। आप लोग चौबीसो घण्टे अगरबत्ती लगाया करे, एक के बाद एक, बुझने न दे। परसो देवाजी महाराज स्वय यहा शहर मे आ रहे है। मै उन्हे अपने घर लाने की कोशिश करूगा।

'देवाजी महाराज पधारे तो अपने किसी भक्त के यहा उसकी बीमारी देखने आए थे। वे मकान के बरामदे मे खडे थे, आसपास बडी भीड जम गई। रास्ता काटना भी मुश्किल। बाबाजी को लेने के लिए गगाधर चपरासी और मेरा भतीजा मोहनलाल मोटर लेकर गए थे। भीड के कारण बाबाजी के पास पहुचना भी कठिन था। वे दूर से ही उनके दर्शन कर हाथ मे फूलो की मालाए लेकर उनके पास जाने का प्रयत्न कर रहे थे तो अचानक अपनी जगह से खडे-खडे ही बाबाजी चिल्ला उठे कि वकील साहब के यहा से कौन लोग आए है उन्हे हमारे पास भेज दो। मोहनलाल आश्चर्य से दग रह गया। गगाधर तो भला बाबाजी का भक्त था और उनका चमत्कार जानता था। पर मोहन के लिए यह बात नई थी। उसने जाकर बाबाजी के पाव पकड लिए और कहा कि मोटर लेकर आया हू। बाबाजी फौरन मोटर मे बैठकर मेरे घर आए। आते ही हमने कपूर और ऊदबत्ती जलाई। बाबाजी उतरते ही बोले, 'कहा है मेरी माताजी?' हम लोग उन्हे बिटिया के कमरे मे ले गए। वह बेहोश थी। बाबाजी ने उसके पलग के चारो ओर एक प्रदक्षिणा की और दोनो हाथो से अभय आश्वासन दिया कि सब ठीक हो जाएगा। और वे एकदम मोटर मे जा बैठे। न हम लोग उन्हे फूलमाला पहना सके और न

उन्हे नाश्ता-पानी करा सके। गगाधर उन्हे पहुचाने गया। मोहनलाल ने इधर फिर 'धावगा देवाजी देवा' की आरती शुरू कर दी। बिटिया ने फिर आखे खोल दी। और कुछ देर के बाद बन्द कर ली। बाबाजी ने गगाधर को बताया कि उसकी बेहोशी रोज एक घण्टे से कम होगी और बारह-तेरह दिन के बाद उसे बेहोशी नही आएगी। तब तक मै रोज उसकी समाधि मे आऊगा।

'दूसरे दिन से वही हुआ। बाबाजी समाधि मे आए और बिटिया के मुह से सारे परिवार का हाल बतलाया, अपने आने का मर्म बतलाया, समाधि मे ही बिटिया को राधाकृष्ण के दर्शन कराए, उसके हाथो से देखते-देखते प्रसाद बटवाया। तेरह दिन मे बिटिया चगी हो गई। तब से हमारा सारा परिवार बाबाजी का भक्त हो गया है। बाबाजी मराठी भाषी सत है, और हम लोग तो हिन्दी भाषी है, उत्तरी ज़िलो से आए है। पर हमारे परिवार मे अब सभी लोग बडे प्रेम से बाबाजी की मराठी आरती कहते है, अभग और ओव्या (भक्ति-काव्य की वह पद्धति जिसमे ज्ञानेश्वर महाराज की ज्ञानेश्वरी लिखी गई है) गाते है।

'मेरी पत्नी की मृत्यु के बाद यदि मुझे पागल होने से किसीने बचाया तो बाबाजी ने। उनके आश्रम मे मै गया तो मुझे इतनी शाति मिली कि मै कुछ कह नही सकता।'

भोलानाथ की बात सुनकर धनजय आश्चर्यचकित हो गया। सचमुच भारत-भूमि भी अद्भुत है। इसमे क्या-क्या चमत्कार और रहस्य भरे पडे है जिन्हे समझना ही कठिन हो जाता है। जो समझते है वे इसका आनन्द उठाते है, शान्ति के सागर मे गोते लगाते है और अपना गोप्य किसीको बताने मे सकोच करते है। उनका बाना तो सत कबीर का बाना है

हीरा तहा न खोलिए, जह खोटी है हाटि।
कसकरि बाधो गाठरी, उठकरि चालौ बाटि॥

और जो इस मार्ग को जानते नही, समझते नही, वे कहते है यह अन्धश्रद्धा है, दकियानूसी है, भोला विश्वास है जिसके पीछे तर्क या विज्ञान का समर्थन नही। यह सब खोटी बात है।

साधु-सतो मे कई खोटे भी है, पाखण्डी होते है, यह सच है। पर उसके कारण सारा सतत्व, साधुत्व, अध्यात्म या ईश्वरवाद ही त्याज्य है, तिरस्करणीय है, ऐसा कैसे कहा जा सकता है? खोटापन किस क्षेत्र मे नही है? राजनीति के क्षेत्र मे

नही है ? क्या उसमे रगे सियारो की भरमार नही है ? व्यापार मे खोटापन नही है ? शिक्षण सस्थाओ मे, कला के क्षेत्र मे, साहित्य मे, मानव-जीवन का ऐसा कौन-सा अग है, जिसमे खोटापन नही है ? पर उसके कारण सारी राजनीति, व्यवसाय-वाणिज्य, शिक्षण, कला या साहित्य त्याज्य या गर्हणीय नही हो जाता। जिसके पास विवेक है, विवेचनात्मक दृष्टि है और सत्य के गर्भ मे पहुचने की आस्था है उसे हर समय उज्वल पक्ष ही दीखेगा, और जो उथले है, आचार-विचारो मे उच्छृखल है, साच-झूठ का विधि-निषेध नही रखते, उन्हे तो सिवा खोटे माल के और कुछ हाथ नही लगता।

भोलानाथ की बात सुनकर धनजय को बाबाजी के बारे मे अधिक कुतूहल हुआ, अधिक आस्था जगी। और उसके पाव उनके आश्रम की ओर तेजी से बढने लगे। वे पैसेजर गाडी से उतर चुके थे, और दो मील की कच्ची पगडडी पर चल रहे थे जा उन्हे सोनखेडा देवाजी महाराज के आश्रम मे पहुचाने वाली थी। आस-पास कपास, ज्वार और अरहर के खेत लहलहा रहे थे। कही-कही गेहू भी थे। प्रकृति अपनी हरीतिमा के सौन्दर्य मे हस रही थी। हरे-भरे खेतो पर बहने वाला समीर धनजय के मस्तिष्क को शीतलता और शान्ति प्रदान कर रहा था। इस एकान्त सडक पर न मोटर-बसें थी, न तागे रिक्शे और न भीड-भम्भड। शहर के कोलाहलपूर्ण जीवन से यह कितना बडा परिवर्तन था, कितना सुहावना। शहर का जीवन यो भी बडे तनाव और सघर्ष का रहता है। अपने स्नायुओ पर व्यर्थ मे अधिक जोर पडता है, अपने समय और शक्ति पर न जाने कितना निरर्थक आक्रमण होता है—उसकी कोई सीमा नही। पिछले कुछ वर्षों मे कैसा विचित्र उसका जीवन हो गया था ? न जाने कितने टेलीफोन, मिलने-जुलने वाले, दौरे और प्रवास, चाय-पार्टिया, डिनर पार्टिया आदि। एक प्रतिष्ठित पत्र के सपादक के नाते वह इन सबमे निमन्त्रित किया जाता था और शिष्टाचारवश उसे जाना भी पडता था। पर उनमे असली मतलब या महत्व का काम कितना बनता ? और अब तो जबसे जोशी जी के साथ यह भयकर मरने-जीने की लडाई शुरू हो गई है तबसे तो उसकी जिन्दगी और भी बदल गई है। एक-एक साथ कितने मुकदमे, अदालतो मे घण्टो बैठना, वकीलो के घर के चक्कर, आर्थिक चिन्ताए, सस्था की समस्याए ! उसका जीवन अत्यन्त त्रस्त और व्यस्त हो गया था। वह जानता था कि प्रत्येक आदर्श-वादी व्यक्ति को इस तरह की अग्नि-परीक्षा से गुजरना ही होता है। आराम और

सुख तो उन्हे होता है जो परिस्थिति से समझौता करने के लिए तैयार रहते है, जैसी बयार चले वैसी पीठ कर लेते है। पर जो अपना विशिष्ट लक्ष्य रखते है, खास ध्येय पर चलते है, उनके जीवन मे कण्टक, आँधी और सघर्ष तो रखा ही हुआ है। देव की मूर्ति को निर्माण की स्थिति मे शिल्पकार की हथोडी के घाव बर्दाश्त करने पडते है। हरि का मार्ग शूरो का मार्ग है। आज तो उसे इसी प्रकार के मार्ग पर चलकर अपने सत्व का रक्षण करना है। फिर राह मे कितने भी काटे क्यो न लगे, पैरो पर कैसा भी जख्म क्यो न लगे?

इस सघर्षमय वातावरण से कितना अलग था उस पुण्य प्रवास का वातावरण। कितना शान्त, कितना सुखदायक। उसके मन मे अपूर्व आनन्द भर गया, एक प्रकार का उल्लास छा गया।

सोनखेडा मे जब वे बाबाजी की कुटिया के पास पहुचे तो देखा कि वे एक गाय को प्यार कर रहे है—उसके गले मे गला डालकर उसकी पीठ थपथपा रहे है। भोला और धनजय को देखते ही वे दिल खोलकर मुस्करा उठे और बोले, 'आइए भगवन्!' और उन्होने नित्य की तरह जमीन पर सिर झुकाकर हाथ जोड-कर नमस्कार किया। भोलानाथ और धनजय भी इस शालीनता के आगे नत-मस्तक थे।

बाबाजी की कुटिया के पास इमली और नीम के दो विशाल वृक्ष थे। उनकी ठण्डी छाया मे वे लोग नीचे जमीन पर ही बैठ गए। नीचे रेत बिछी हुई थी। वहा बैठते ही धनजय को परम सतोष और शान्ति का अनुभव हुआ। दो मील चलने के बाद उसे मीठी थकावट लग रही थी। उसके मन की मिठास अब और भी बढ गई।

धनजय ने देखा, सामने कृष्ण भगवान का छोटा-सा मन्दिर है जिसके सामने दो ऊचे स्तम्भो पर भगवे (गेरुए) रग की पताकाए लगी है जो हवा मे फडफडा रही है। उसे लगा जैसे वे उसका स्नेह मे स्वागत कर रही है। वे चुपचाप, मायूस होकर नही बैठी थी, पर प्रसन्नता से हस रही थी ऐसा भान हुआ। सामने एक बडी झोपडी थी, जिसका अतिथि-गृह के रूप उपयोग होता था। दो-एक झोपडिया और थी जहा लोग ठहरते थे, यात्रा के दिनो मे खाना बनता था, अन्यथा गाय-बैलो के लिए चौपाल की तरह उपयोग किया जाता था। आसपास बाबाजी के तीन खेत थे, जो उनके भक्तो ने आश्रम के लिए दिए थे। वे अपनी फसल के यौवन पर

चढकर मस्ती मे फूले-फले लहलहा रहे थे। एक खेत मे विशाल नीम वृक्ष के नीचे छोटा-सा देवी का मन्दिर था। उसीके आसपास तुलसी के पौधो को कुज था। प्रत्येक खेत मे कुए थे जिनका पानी बडा मीठा था। छोटा-सा आश्रम था और छोटी-सी उसकी जायदाद थी। बाबाजी स्वय खेती-किसानी की तरफ ध्यान दिया करते थे। खेत जोतना, बोना, फसल काटना, गाय-भैसो की देखभाल, हल और बैल-गाडियो की व्यवस्था सब तरफ उनका ध्यान था। खेतो मे वे हल के पास खडे होते तो लगता जैसे हलधर हो, कृष्ण के बडे भ्राता। स्वय जब गाय के गले से अपना गला लगाकर वे उसे चूमते और पुचकारते तो लगता कि स्वय कृष्ण हो। आश्रम मे गाय-भैसो की पूजा होती, वृक्षो की पूजा होती, पक्षियो की भी पूजा होती। बाबाजी की एक प्यारी गाय मर गई थी, उसकी बाकायदा समाधि तैयार की गई थी, जिसके सामने रोज धूप-दीप जलता। आश्रम मे आठ-दस कुत्ते थे, और काल-क्रम के अनुसार उनका परिवार भी बढता, सो उनकी रोटिया अलग पकती। मनुष्य, वृक्ष, पशु-पक्षी सबमे भगवान का वास है ऐसा बाबाजी मानते थे। अन्न-छत्र तो सदा चलता। स्वामी रामकृष्ण परमहस की तरह दरिद्रनारायणो को भोजन देना वे एक धर्म-कर्म मानते थे। जन्माष्टमी या रामनवमी के दिन उनके यहा यात्रा होती तो वे हजारो लोगो को भोजन कराते। उनमे अधिकाश लगडे-लूले, अन्धे, कोढी तथा भिखारी रहते, सर्वसाधारण जन भी रहते। भोजन परोसने के बाद वे सबके सामने जमीन पर माथा टेककर दोनो हाथ जोडकर प्रार्थना करते, 'लीजिए मेरे देव, यह भोजन स्वीकार कीजिए।' उस समय उनकी आखो मे ऐसा प्रेम और ऐसा आनन्द दिखता जैसे वे साक्षात भगवान का ही दर्शन कर रहे हो। जो भोजन ग्रहण करते थे उनके प्रति कृतज्ञता का भाव उनके नेत्रो मे ओत-प्रोत रहता जैसे वे बाबाजी पर असीम दया कर रहे हो। सबको प्रेम से स्वय भोजन कराते। कभी लहर आ जाती तो बीच ही मे फिर उसी प्रकार धरती पर माथा टेककर कहते, 'हम अनन्त जन्मो के अपराधी है। हे पतित-पावन, हमपर दया करो।' बाबाजी के आश्रम के लोग दिनभर परिश्रम करते—कोई खेत जोतता, तो कोई कडे थोपता, तो कोई कुओ से पानी खीचता, तो कोई अतिथियो की सेवा करता। कर्म का चक्र अनिर्बन्ध गति से चलता रहता। रात को वे सब मन्दिर मे पहुच जाते जहा मौज मे आकर चौघडा बजता। चौघडा का मतलब है ढोलक और झाझो के साथ गुरू की बानी या भजनो का गायन। उन देहाती भजनार्थियो के

स्वर अटपटे रहते, उनमे सगीत की साधना का अभाव रहता, पर उनमे जो भक्ति-भाव उमड पडता वह अद्‌भुत था। गुरू की बानी मे अक्खड ग्रामीण भाषा मे वेद-उपनिषदो का सारा ज्ञान भरा रहता। यह चौघडा तो कभी-कभी त्यौहार के दिनो मे सूर्यास्त से सूर्योदय तक चलता। सध्या और प्रभात के आगमन के स्वागत मे नगाडे बज उठते—मानो वे विश्राम और कर्म का ऐलान करने आए हो।

बाबाजी स्वय माटी की बनी छोटी-सी कुटिया मे रहते थे, जहा एक खाट, मृगचर्म और चटाई पडी रहती थी। रात मे मिट्टी के तेल की डिबिया जलती या अन्धकार ही रहता, चन्द्रमा या तारागणो का प्रकाश ही काफी हो जाया करता। कुटिया का दरवाजा इतना सकरा था कि उसमे से झुककर जाना पडता था।

धनजय जब उस कुटिया मे जाकर बैठा तो उसे अपार शान्ति मिली। ऐसा लगा जैसे सारे श्रमो और चिन्ताओ का परिहार ही हो गया। प्रत्येक स्थान का अपना अलग वातावरण होता है। जहा निरन्तर साधना, तपस्या और भगवद्‌भजन होता है, वहा हमेशा पवित्र वायु-लहरिया प्रवाहित होती है। धनजय ने अनुभव किया,अदालतो के वातावरण से कितना भिन्न है यह वातावरण। वहा हमेशा लडाई-झगडा, क्षुद्रता, निरर्थक वाद-विवाद, सत्यासत्य का व्यापार चलता रहता है, मानव-स्वभाव का विकृत और अस्वस्थकर प्रदर्शन होता है, तो यहा कितना सुख, कितना आनद, कितनी शान्ति है! अदालत मे साधु पुरुष पहुच जाए तो उसपर भी विपरीत परिणाम होने लगता है और पवित्र मन्दिर मे कोई दुरात्मा पहुच जाए तो कुछ क्षण के लिए उसके मन मे अच्छे विचार और अच्छी भावनाओ का उदय होता है। सभी अदालतो और सभी मन्दिरो मे ऐसा नही होता। जहा अन्याय और जुल्म को दण्ड मिलता है, सत्य-धर्म की स्थापना होती है वह न्यायालय तो मन्दिर जैसा पवित्र है, और जिस मन्दिर मे स्वार्थ और पाखण्ड की पूजा होती वह तो मन्दिर नही बाज़ार हो जाता है। गुण-दोषो का वास तो सब जगह रहता है। पर उसका सही मूल्याकन करने के लिए दृष्टि चाहिए, विवेक चाहिए। जो सबको एक लाठी से हाकते है वे गड्ढे मे गिरते है। जो पारखी होता है वह धूल मे पडे हुए हीरे को भी पहचानकर उठा लेता है, और जिनके भाग खोटे होते है वे उसीको पैरो-तले रौदते आगे बढ जाते है।

धनजय ने सोचा, सचमुच इस दुनिया मे सन्तो और असतो की पहचान करना बडा कठिन है। सतो के नाम पर महत खडे हो जाते है जिनकी गद्दिया चलने

लगती है और जिनका मन धन-सपदा, जायदादो मे और अपने अह की पूजा कराने मे उलझ जाता है। साधुओ की जगह भोदुओ के दर्शन हो जाते है और उनके कार्य-कलापो को देखकर लोगो की अश्रद्धा और अरुचि होने लगती है। पर सच्चा सत और सच्चा साधु मिल जाए तो यथार्थ मे भाग्य खुल जाते है। पर ऐसे साधु-सत गली-गली नही मिलते। सत कबीर ने ठीक ही कहा है

सब बन तौ चन्दन नही, सूरा का दल नांहि।
सब समुद्र मोती नहीं, यो साधू जग मांहि॥
सिहो के लेहडे नहीं, हसो की नांहि पात।
लालो की नांहि बोरिया, साधु न चलं जमात॥

सच्चे सत तो लोगो से दूर भागते है, प्रचार के शत्रु होते है, एकान्त का सेवन करते है, और चाहते है कि लोग उन्हे गलत समझे और उनका पीछा न करें। तभी उनकी भक्ति और ईश्वर के साथ का साक्षात्कार अक्षुण्ण और अबाधित चलता रहता है। उसी आनन्द के महासागर मे वे डूबे रहते है, उसी रस मे भीगे रहते है, उसीमे उनकी समाधि लग जाती है। जिसने इस रस का प्याला नही पिया है उसे क्या मालूम कि इसका क्या नशा रहता है, इसमे क्या ब्रह्मानन्द मिलता है ?

धनजय एक दिन और एक रात उस वातावरण मे रहा। भोलानाथ साथ तो था ही। दो-तीन बार उनके बाबाजी के साथ वार्तालाप भी हुए। पर हर बार धनजय ने बाबाजी को अनन्त प्रेम की मूर्ति के रूप मे ही देखा। उनकी वही निर्मल मुस्कराहट जिसमे आत्मा का दिव्य सौदर्य मुखरित हो उठता था, वही पितृत्व का परम वात्सल्य भाव। और जब वह घर लौटने के लिए विदा होने लगा तो धनजय की आखो मे आसू थे, भोलानाथ का गला भी भर आया और स्वय बाबाजी भी विचलित हो गए। स्टेशन पर जाने के लिए उन्हे बाबाजी ने एक बैलगाडी दी। उससे वे रवाना हुए पर बार-बार मुडकर वे बाबाजी और उनके आश्रम के मन्दिर की तरफ देखते जाते थे, ठीक उसी तरह जैसे पहली बार ससुराल जाने वाली कन्या अपने मायके की तरफ देखती जाती है। धनजय को लगा कि जैसे उसके दिल का एक टुकडा वहा छूटा जा रहा है। बाबाजी को देखकर उसे लगा जैसे उनकी पहचान पुरानी है, इस जन्म की हो या पिछले जन्म की। और उसे अनुभव हुआ कि बिना कुछ कहे-सुने ही बाबाजी ने भी उसके अन्त करण को पहचान

लिया। उनकी मूक भाषा ही अत्यधिक अर्थपूर्ण थी।

धनजय से कोई पूछता कि वह सोनखेडा क्या लेकर लौटा तो वह ठीक-ठीक नही कह सकता था। क्या उसे कोई सिद्धि मिली, या मन्त्र, जिसके कारण वह अपनी चिन्ताओ और व्यथा से मुक्ति पा सकेगा और अपने जीवन-मरण के सघर्ष मे विजय ? क्या उसे भगवान का कोई आशीर्वाद या प्रसाद मिला ?

वह कुछ नही जानता था, और इसके बारे मे कुछ नही कह सकता था।

पर उसे यह अवश्य लगा कि उसे कोई ऐसी अपूर्व निधि मिल गई है, ऐसी विचित्र शक्ति, कि उसका दिल आश्वस्त हो गया निश्चिन्त हो गया। उसने भीतर ही भीतर एक अजीब ताकत का अनुभव किया, एक अद्‌भुत आत्मविश्वास का, जिसके कारण उसे भरोसा हो गया कि वह अपने सकटो और कण्टको पर विजय प्राप्त कर सकेगा क्योकि,

वह अकेला नही है, उसके सिर पर भगवान का छत्र है, उसके जीवन पर भगवान का आशीर्वाद है।

यह विश्वास क्यो कर उसके हृदय मे बैठ गया यह वह नही कह सकता था यह तो अपनी-अपनी व्यक्तिगत अनुभूति की बात है, जिसका विश्लेषण करना कठिन होता है।

पर इस विश्वास ने उसे अदम्य शोक और उत्साह दिया, जैसे उसके जीवन की उतरी हुई बैटरी विद्युत् लहरियो से फिर अनुप्राणित हो उठी हो।

लौटती बार प्रवास मे भोलानाथ ने पूछा, 'बाबाजी को तुमने किस रूप मे देखा धनजय ?'

'मेरे देखने न देखने का क्या मूल्य है भोलानाथ ? मै इस अध्यात्म मार्ग के बारे मे क्या जानता-बूझता हू ? पर उन्हे देखकर मुझे तीन महान् आत्माओ का स्मरण हो आया।'

'तीन महान् आत्माओ का ? वे कौन-सी भाई ?' भोलानाथ ने पूछा।

'सत तुकाराम, श्री रामकृष्ण परमहस और गाधीजी।'

'ऐसा ?—सो किस कारण ?'

'बाबाजी मे मुझे सत तुकाराम की भक्ति-भावना, स्वामी रामकृष्ण का आत्मज्ञान और गाधी जी का कर्मयोग, और तीनो की लीनता और नम्रता का साक्षात्कार हुआ।'

भोलानाथ विस्फारित नेत्रो से धनजय की तरफ देखता रहा, फिर थोडी देर सोचकर बोला, 'तुम्हारे कहने मे बहुत बडा तथ्य है। इन स्वरूपो को देखने के लिए एक विशिष्ट दृष्टि की आवश्यकता होती है। वह सबके भाग्य मे नही लिखी रहती धनजय। तुमने इतनी जल्दी बाबाजी को समझ-परख लिया, अद्भुत बात है।'

घर लौटकर आया तो गीता से उसे मालूम हुआ कि धनशेट्टिवार ने एक नई पचायत खडी कर दी है जिससे निपटना जरा मुश्किल है। सुख-दुख का चक्र तो इसी तरह चलता रहता है। पर अब वह सोचता था, इन मामलो से निपटने की उसकी शक्ति मे अद्भुत वृद्धि हो गई है।

४४

धनशेट्टिवार दूसरे ही दिन धनजय से मिला और बोला, 'हमे लडाई अब दुश्मनो के खेमे मे भी पहुचानी चाहिए, तभी उसका अन्त होगा।'

'क्या मतलब ?'

'मै जोशी जी पर एक फौजदारी मुकदमा चलाना चाहता हू।'

'सो किसलिए ?'

'उन्होने अपने सरकारी अधिकारो का दुरुपयोग करके तथा सरकारी नौकरो की मदद से युगान्तर कपनी के लिए जो पूजी एकत्रित की उसके लिए, मैने आपका और उन सरकारी अफसरो का सारा पत्र-व्यवहार देखा है और कानूनी सलाह भी ली है—मुकदमा दायर हो सकता है।'

'पर वह पत्र-व्यवहार तो आपको अपना बचाव तैयार करने के लिए मैने दिया था, जोशी जी पर मुकदमा चलाने के लिए नही।' धनजय ने कहा।

'आक्रमण भी तो बचाव का एक तरीका होता है—शायद सबसे अच्छा तरीका।' धनशेट्टिवार ने कहा।

'पर मै इससे सहमत नही हू। हमारे झगडे मे इन सरकारी नौकरो को क्यो घसीटना चाहिए ? उन बेचारो का क्या दोष ? आखिर उन्होने मदद की उसीसे तो यह सस्था खडी हुई है। यह सस्था न होती तो न मै उसका सचालक होता

और न आप उसके चेयरमैन। और जहा तक जोशी जी का सम्बन्ध है, माना कि इन मुकदमो के कारण उनका-हमारा रिश्ता टूट चुका है, और अब हम अपनी रक्षा के लिए कुछ भी करने के लिए स्वतत्र हैं, फिर भी यह तो मानना ही होगा कि इन झगडो के बाद सस्था यदि बची रही तो वह तो सार्वजनिक सेवा करेगी ही। जोशी जी मै या आप रहे या न रहे—सस्था तो चलती ही रहेगी, और वह हम तीनो से बडी है। आखिर उसके निर्माण मे जोशी जी का हाथ रहा है, इससे कैसे इन्कार किया जा सकता है?' धनजय ने कहा।

'आप एक बडा सेटिमेण्टल और अव्यावहारिक दृष्टिकोण ले रहे है धनजय बाबू। यह तो टोटल वॉर (सम्पूर्ण लडाई) है, इसमे न उन्होने कोई दया-मुरव्वत बरती, न हमे बरतने की जरूरत है। जब तक हम उनकी नाक नही दबाते तब तक उनका मुह नही खुलेगा और न इस खूख्वार लडाई का खात्मा होगा। सस्था के हित मे भी यह कदम बहुत आवश्यक है।' धनशेट्टिवार ने कहा।

'भई, मेरा तो मन नही कहता है कि यह ठीक है। आप वे फाइले मुझे वापस दे दीजिए—मै जरा उन्हे दुबारा देख लू।'

'सो तो फिलहाल ऐसी जगह रख दी गई है जो इस प्रदेश से बाहर है ताकि पुलिस की तलाशी मे भी वे हाथ न लगे। उन पत्रो के फोटो मैने अपने पास ले रखे हैं।' धनशेट्टिवार कुटिल हसी हसते हुए बोला।

'यह तो आपने उचित नही किया मिस्टर धनशेट्टिवार। आप एकबार जोशी जी पर आक्रमण करे उसमे उतना बुरा नही है, पर उन सरकारी नौकरो को इसमे डालना नितात अनुचित है। मै इससे जरा भी सहमत नही हू। इसमे से कई तो मेरे घनिष्ठ मित्र है, और सबने निस्स्वार्थ भाव से सस्था की मदद की है। उनको तकलीफ मे डालना एकदम अशोभनीय है।'

धनशेट्टिवार निहायत दुनियादारी वाला आदमी था। वह तो हमेशा अपने स्वार्थ और अपने पास के शस्त्रो के बल लडा करता था। आदर्श या नीति के ऊचे मूल्यो के लिए उसके पास कोई स्थान नही था।

धनशेट्टिवार ने एक न मानी और अपनी पार्टी के एक आदमी को सामने खडा करके जोशी जी के खिलाफ फौजदारी मुकदमा दायर कर ही दिया जिसमे प्रारम्भिक सबूत के लिए उन सब पत्रो के फोटो पेश किए गए थे।

धनजय की वह रात बड़ी व्यथा मे बीती। आज यदि वह धनशेट्टिवार के

खिलाफ कोई बडा कदम उठाता है तो वह सस्था के बीच एक दूसरा गत्यवरोध खडा कर देगा और आतरिक फूट के कारण वह तहस-नहस हो जाएगी। जब बाहर से शत्रुओ की ओर से भयकर वार हो रहे हो उस स्थिति मे आपसी फूट मे सर्व-नाश को छोडकर और कोई परिणाम नही निकलैगा। सस्था को बचाने का मोह न होता तो वह इसकी भी परवाह नही करता। पर जिस मामले को लेकर यह सब लडाई चल रही है उसीपर यदि कुठाराघात हो जाए तो फिर इस सब झगडे का क्या अर्थ है ? वह खून का घूट पीकर चुप रह गया। जिस तरह जोशी जी ने उसकी बात सुनने से इन्कार कर दिया और यह सग्राम उसपर लाद दिया, उसी तरह यह धनशेट्टिवार भी आज उसकी नही सुनता है। और इस लडाई का उप-योग अपनी पार्टी की राजनीति के लिए कर रहा है। धनजय सब जानता था कि जोशी जी और उसके बीच मे सघर्ष छिडा तो दोनो दलो के अवसरवादियो की बन आएगी और वही इस फूट का सबसे अधिक फायदा उठाएगे। वास्तव मे यह आपस का घरेलू झगडा था, व्यक्तिगत सघर्ष का मामला था। पर अब उसने ऐसा सार्वजनिक रूप ले लिया था कि आग मे सब लोग अपनी-अपनी स्वार्थ की रोटी सेकने के लिए आगे दौड पडे। इस अशोभनीय तमाशे से बचने के लिए ही उसने गीता को जोशी जी के पास समझौते के लिए भेजा था। पर विधि को यह मजूर न था।

वह पब्लिक प्रॉसिक्यूटर गुप्ता तो सबसे ज्यादा उछल-कूद कर रहा था। वह सोचता, यह झगडा क्या हुआ हाईकोर्ट-जज बनने का मार्ग प्रशस्त हो गया। धन-जय और युगान्तर को चार गालिया सुना दो और शासन से कोई भी काम करा लो—तरक्की, तबादला, नौकरी, कॉलेज का एडमिशन। पुलिस अफसरो ने भी यही किया, गुप्ता के मातहत काम करने वाले वकीलो ने भी यही किया, डॉ० छदामी जैसे लोगो ने भी यही किया।

और इधर धनशेट्टिवार जैसे लोग भी यही कर रहे है। इस झगडे का उपयोग वह अपनी पार्टी की धौस जमाने मे कर रहा है, जोशी जी के व्यक्तित्व को खतम करने के पीछे पडा है, ताकि उसके दल की साख बढे। धनजय की इसमे तनिक भी दिलचस्पी नही थी कि जोशी जी का कुछ भला-बुरा हो। उनका बुरा होने से उस-का क्या लाभ होने वाला था ? वह तो सिर्फ यही चाहता था कि उसके और उसकी सस्था के गले मे जो फास लगी है वह किसी तरह छूटे, उसका समाचारपत्र इस

अग्नि-परीक्षा मे खरे होकर बाहर निकल आए और प्रदेश की तथा जनता की खिदमत करता रहे।

पर जाहिर है कि धनशेट्टिवार के और उसके विचारो मे कोई समानता नही है। एक पूरब की सोचता है तो दूसरा पच्छिम की। यह अवाछनीय स्थिति कब तक चलेगी भगवान जाने!

धनशेट्टिवार इस लडाई को अपनी पार्टी के राजनीतिक दाव-पेच का अखाडा बनाना चाहता था। वही बात धनजय को एकदम नापसन्द थी। पर जब तक वह इस मुकदमे मे उसका सहअभियुक्त था तब तक वह कुछ कर भी नही सकता था। इसलिए वह चुपचाप यह आघात बर्दाश्त कर गया।

धनशेट्टिवार के कदम के बाद तो युगान्तर के सघर्ष को और भी नया रग चढ गया। उसका खूब प्रचार हुआ, विधान-सभा मे चर्चा हुई, दिल्ली तक शिकायते गई—पर मुकदमा दर्ज नही हो सका—खारिज हो गया। धनशेट्टिवार का मुह उतर गया।

पर शासकीय दल की समझ मे आ गया कि धनशेट्टिवार के कारण युगान्तर-पक्ष मे ज्यादा उछल-कूद हो रही है इसलिए जब कम्पनीज़ ऐक्ट के मामले मे अभि-योग रखने का वक्त आया तो पब्लिक प्रॉसीक्यूटर की सलाह के मुताबिक धनशे-ट्टिवार रिहा कर दिया गया। धनजय को खुशी हुई। एक नैतिक ज़िम्मेदारी से तो छुट्टी मिली।

इधर गुप्ता ने, जो जगपुरा के महाराजा का भी वकील था, युगान्तर के खिलाफ पचार हजार रुपये की डिगरी हासिल कर ली। धनजय ने कर्ज पहले ही मजूर कर लिया था। वह सिर्फ यही चाहता था कि अदालत की ओर से उसे किश्ते मिल जाए। किश्तो की दरख्वास्त मे एक तान्त्रिक भूल रह गई जिसका फायदा गुप्ता ने उठाया। उसने डिगरी बजाने के लिए कुडकी का वॉरण्ट निकलवा लिया। यह वारण्ट उस दिन निकला जब दीवानी अदालते गर्मी की छुट्टियो के लिए अगले दिन बन्द होने वाली थी। इरादा यही था कि कुडकी मे युगान्तर प्रेस की मशीने और इमारत जप्त कर ली जाए, उसपर ताला लगा दिया जाए, ताकि जब तक छुट्टियो के बाद अदालते नही खुलती है तब तक उस कार्रवाई के खिलाफ अर्ज़ी न पेश की जा सके और और ताला न खुले। डेढ-दो महीने मे तो युगान्तर की तोप ठडी हो जाएगी, और जिस एक हथियार के बल पर धनजय आग उगलता था वह

खतम हो जाएगा।

यह साजिश बडी गहरी थी। आखिर 'युगान्तर' ही धनजय का सबसे बडा मोर्चा था, सबसे मजबूत गढ। वही यदि दुश्मन के हाथ चला जाए तो वह फिर किस बूते पर लडेगा ?

धनजय दफ्तर पहुचे इसके पहले ही गुप्ता ने दीवानी अदालत के मजकूरी को भेजकर युगान्तर प्रेस की बिल्डिग पर कुर्की की नोटिस चिपका दी। उसका मुशी दीवानी अदालत के मजकूरी और मुनादी वाले को लेकर उसकी मोटर मे आया था और नोटिस चिपकाने के बाद उसने डुग्गी पीटकर जोर-जोर से चिल्लाकर ऐलान कर दिया कि यह जायदाद कुर्क हो चुकी है, कोई इसे खरीदे तो खबरदार !

धनजय को टेलीफोन गया। जब वह दफ्तर पहुचा तब तक डुग्गी पिट चुकी थी। उसके एकाउटेण्ट ने आखो मे आसू भरकर कहा, 'साहब, ऐसा अपमान कभी नही देखा। हमारी बिल्डिग पर नीलाम की तरह बोली-बोली जाए, इससे बढकर दुख की क्या बात हो सकती है ?'

धनजय ने कहा, 'क्यो चिन्ता करते हो भाई, आखिर सत्य के लिए तो हरिश्चन्द्र और तारा का भी श्मशान मे नीलाम बोला गया था। जो इस कठोर पथ पर चलते है उनकी हमेशा यही गति होती है, पर अन्त मे विजय उन्हीकी होती है। तुम तनिक भी चिन्ता मत करो। हमे धीरज से इसका भी मुकाबला करना होगा।'

४५

भोलानाथ ने धनजय के मुकदमो के लिए अपनी सारी ताकत लगा दी। वह स्वय एक अनुभवी एडवोकेट तो था ही, फौजदारी मामलो मे उसे कमाल हासिल था। नब्बे फीसदी मुलजिमो को तो वह देखते-देखते छुडा लेता था। सट्टा खेलने वाले, शराबखोरी करने वाले सभी उसके मुवक्किल थे। उनमे असली गुनहगारी वृत्ति के दस फीसदी लोग हुआ करते थे जिन्हे उसीमे मजा आता था। अपराध कर जेल जाना, वापस आना, और फिर कोई जुर्म करके जेल

जाना, जिन्दगी भर यही उनका क्रम चलता था। गुनाह किए बिना उन्हे लुत्फ ही नही आता था। बाकी के बचे हुए लोगो मे तो अधिकाश परिस्थितिवश गुनहगार बनते थे, और करीब-करीब आधे तो सरकारी कानूनो और पुलिस की कार्रवाई के कारण जबर्दस्ती मुजरिम बनते थे। अधिक से अधिक मुकदमो को दायर करना और उनमे सजा दिला देना यह पुलिस विभाग की दक्षता का लक्षण माना जाता है। सच्चे केस न मिले तो झूठे केस बनाने की वृत्ति इसीमे से पैदा होती थी। झूठे केस बनाने मे तो अक्सर पुलिस के कर्मचारियो की रुपये बनाने की नीयत ही अधिक काम करती। थाने और अदालतो के धक्के खाने की बजाय पुलिस को सौ-पचास देकर जान छुडा लेना अधिक श्रेयस्कर होता। हर तरह के मुकदमो मे जैसे वकीलो की फीस ठहरी हुई होती है उसी तरह पुलिस के कर्मचारियो की भी रहती है। और उसमे नीचे से ऊपर तक हिस्से लगे रहते है। जुओ के अड्डे चलते है, वेश्यालय चलते है, गैरकानूनी शराब बनाने के कारखाने चलते है, ब्लैक मार्केट वाले व्यापारियो के कारोबार चलते है, गुण्डागर्दी के डर से डरपोक धनिको से रुपये ऐठे जाते है और इन सबके मुकदमे बीच-बीच मे दायर किए जाते है, कुछ छूट जाते है, कुछ को सजा हो जाती है और जिनको जेल की सजा हो जाती है उनकी गैरहाज़िरी मे उनके परिवार की देखभाल बाकी के जुर्मशुदा साथी और पुलिस वाले खुद करते है। यह सब कारोबार एक विशिष्ट योजना और व्यवस्था के अनुसार यन्त्रवत् चलता रहता है। पुलिस मजिस्ट्रेट, जेल के अधिकारी सब इन लोगो को जानते-समझते है। यह एक बिलकुल निराली अजीब दुनिया है। इसके लोगो मे आपस मे बडा भाईचारा चलता है, वे आश्वासनो और वचनो के पक्के होते है। जो बात कह देते है उसे पूरा करते है। चोरी के माल मे आधा हिस्सा देने की बात कही तो वह ईमानदारी से दिया जाएगा। इसमे एक पाई की भी गडबड हुई तो वह फलेगा नही, ऐसी उनकी धारणा रहती है। जो गडबड करता है उसे बिरादरी से निकाल दिया जाता है, और नियमो का उल्लघन करने के लिए उसे फिर सच्ची जेल भिजवा दिया जाता है या गुण्डो द्वारा उसकी मरम्मत करा दी जाती है। इस मरम्मत के डर से अक्सर लोग बडी मर्यादा से रहते थे।

भोलानाथ को इस दुनिया की काफी जानकारी थी। धनजय ने कहा, 'तुम इन लोगो के बारे मे एक किताब क्यो नही लिख डालते भोला ? बडी मनोरजक रहेगी।'

'सो तो रहेगी। पर मुझे लिखने को वक्त ही कहा मिलता है ?'

'वक्त की तो बात उतनी नही है जितनी तुम्हारी लहर की है। तुम्हारा तो हमेशा मौज-लहर का सौदा ही रहता है, झक्की आदमी जो ठहरे।' धनजय ने कहा।

भोलानाथ सचमुच थोडा झक्की भी था। जब जिसकी धुन लग जाए उसके पीछे पडा रहता। फिर उसमे आव देखता न ताव। आलस की झक्क आ गई तो महीनो अकेले एकान्त मे पडे-पडे गुजार देता—एक के बाद एक बीडी सुलगाते हुए, चाय पर चाय पीते हुए। पास के होटल का वह सबसे बडा आश्रयदाता था। एक कप की जरूरत होती तो वह दो कप मगाता। आसपास के किसी पडोसी को बुलाकर पिलाता, और कोई न मिलता तो जबर्दस्ती उस होटल वाले लडके को ही पिला देता। उनके बीडी के कट्टे पर भी दो-चार लोगो का हक रहता। जब कानूनी किताब पढने की धुन लगती तो शाम से बैठता तो कब भोर हो जाती पता नही चलता। मुर्गा बोलता तब वह भी चिल्लाता, 'अरे देख तो शकर, होटल खुल गया हो तो दो कप चाय ले आ।'

एक बार जब गाधीजी के प्रभाव मे उन्हे चरखा चलाने की धुन सवार हुई तो उठते-बैठते चरखा चलाने लगते। सुबह उठते ही चरखा, तो कचहरी से लौटते ही चरखा, तो रात भर चरखा। दो-चार महीने यह क्रम चला। फिर जो टूटा तो फिर चरखे पर धूल चढने लगी। और चरखा भी एक नही चार थे। क्योकि जब जो वस्तु उनके मन पर चढती तो उसकी खरीद मे कोताही हर्गिज नही होती।

प्रैक्टिस मे भी लडाई के ज़माने मे तो उन्होने एक-एक दिन मे तीन-तीन सौ कमाए। जो मुह से मागता वह फीस मिलती। पर पत्नी की मृत्यु के बाद जब विरक्ति हो गई तो तीन रुपये कमाने की भी इच्छा न रही। पर तीन रुपये हो या तीन सौ, अगले दिन अदालत मे जाने तक वे गायब होने ही चाहिए—इसे दे उसे दे, रिक्शे वाले, होटल वाले, दीन-दुखिया, साधु-सत। कोई भी मिल जाए, रुपया जब तक खर्च न हो जाए तब तक उन्हे तसल्ली नही, जैसे वे पास रहे तो काटते हो। अपरिग्रह का भी यह अजीब नमूना था।

'इस तरह से बेतहाशा खर्च करने से क्या फायदा भोला ? बुढापे-बीमारी के लिए तो कुछ बचाना चाहिए ?' एक बार धनजय ने कहा।

'रुपया बचाकर क्या करना है धनजय ? न साथ लेकर आए थे न साथ लेकर

जाएगे। और बीमारी-बीमारी मे तो भगवान ही मदद करेगे। और जो नही करेगे तो उनकी मरजी।'

एक विचित्र प्रकार की विरक्ति थी, अजीब तरह की निर्लिप्तता, और भगवान पर भरोसा तो था ही। जिसका घर-बार उजड जाता है, घर की लक्ष्मी चली जाती है, उसका हाल भी बडा विचित्र हो जाता है। धनजय का दिल भोला के लिए करुणा और सहानुभूति से भरा रहता था।

भोलानाथ के जीवन मे ईश्वर तथा साधु-सन्तो के प्रति आस्था बचपन से ही थी। हृदय देश-प्रेम से ओत-प्रोत था। गाधीजी का तो वह अनन्य भक्त था। पर प्रत्यक्ष जीवन मे इतना उच्छृखल और निर्द्वन्द्व कि एक का दूसरे से जैसे कोई सम्बन्ध ही न हो। जिस समय जो मूड आ जाता वही करता। कोई निश्चित ध्येय या महत्वाकाक्षा उसने अपनी आखो के सामने नही रखी थी। रखता तो उसके लिए कोई बात कठिन नही थी। योग्यता का उसमे अभाव नही था। बल्कि कुछ गुण तो ऐसे थे जो दुनिया मे मुश्किल से मिलते है। उदारता, सहृदयता, दया, न्याय-बुद्धि, निर्मोह, कर्तव्यभ्रष्टता से घृणा, चरित्र के प्रति आस्था आदि। पर इनमे एकसूत्रतौ न थी, और एक सर्वोपरि ध्येय के अभाव मे इन गुणो की कोई कद्र नही हो पाती थी। प्रसिद्धि से वे भागते थे, समाज-सोसाइटी से वे अलग रहते थे, भीड-भडक्का उन्हे पसन्द नही। बस, वे भले और उनकी अकेली आन्तरिक दुनिया भली।

इस समय तो बस उनका एक ही ध्येय था, एक ही बात उनकी नजर मे थी, एक ही इच्छा उनके समस्त जीवन पर छाई हुई थी कि सत्ता और सत्य की इस लडाई मे धनजय की जीत हो। धनजय, चूकि उसका दोस्त था, और उसका पक्ष न्याय का पक्ष था। इसके लिए कानूनी काम-काज के अलावा उन्होने एक हवन और जाप का सत्र शुरू कर रखा था। मूल प्रवृत्ति धर्म की ओर थी ही। सन्त देवाजी महाराज के कारण उसे प्रोत्साहन मिला। और अब अपनें मित्र पर विपदा आ पडी सो उनका धर्म-कर्म बडे उत्साह से शुरू हो गया। सुबह तो स्नान-ध्यान और कचहरी की तैयारी मे बीत जाती, पर सध्या और रात्रि उनकी थी। सो हवन और जप मे एक आसन पर ऐसे बैठते कि मध्य रात्रि उलट जाती फिर भी उठने का नाम न लेते। एक-एक दिन मे लक्ष-लक्ष नाम-जप करते। और यह सब इतनी लगन और निष्ठा से करते कि बडे-बडे कर्मकाण्डी पण्डितो को लजा देते। आसपास के लोग देखकर दग रह जाते।

जहा तक मुकदमो का सम्बन्ध था, भोलानाथ और धनजय की नीति यही थी कि मामले जितने भी अधिक लम्बाते बने उतने लम्बाते जाओ। 'अशुभस्य कालहरणम्' की नीति ही इस परिस्थिति मे सर्वश्रेष्ठ थी। इन मुकदमो से जो खलबली मची उसके कारण जोशी जी की प्रतिष्ठा मे धीरे-धीरे क्षति होने लगी, उनकी साख की जो ढकी मूठ थी वह धनजय के निर्भीक स्टेटमेट के बाद खुल गई थी, उनके खिलाफ आरोप करने वाले लोगो के मुह भी खुल गए थे, और इन सब मामलो के कारण राष्ट्रीय नेताओ के मन मे भी खटका हो गया था कि कही न कही कोई न कोई गडबड जरूर है। वरना नाहक इतना हो-हल्ला क्यो मचता ? स्वय जोशीजी के गिरोह मे और उनके राजनीतिक मित्र-परिवार मे यह विचार उठने लगा कि धनजय और युगान्तर पत्र के साथ जो झगडा खडा कर दिया गया वह अवास्तव था, क्योकि उससे लाभ की बजाय नुकसान ही अधिक होने की सम्भावना है। पर अब क्या किया जाए ? जिस तरह से मारा हुआ तीर और बोला हुआ शब्द वापस नही लिया जा सकता उसी प्रकार यह कदम भी तो वापस लौटाया नही जा सकता था। भोलानाथ का ख्याल था कि अगले आम चुनाव तक हम इन मुकदमो को खीच ले गए कि बस, पार लग गए। समय सब रोगो, दु खो और समस्याओ की दवा है। काल-प्रवाह हर दिन जोशी जी के खिलाफ जा रहा है, हर दिन धनजय के पक्ष मे चल रहा है। बस, इन परस्पर-विरोधी धाराओ के मिलन-बिन्दु तक ही हमे गाडी खीचनी है, उसके बाद तो मामला अपने आप ही हल हो जाएगा।

इसलिए हर मुकदमे को वे लोग अधिक से अधिक लम्बाते जाते थे। अदालतो की कार्रवाई अभियुक्तो के सहयोग के बिना कभी पूरी नही हो सकती। उन्हे काफी सुविधाए और अधिकार रहते है। वे उसका पूरा का पूरा लाभ उठा रहे थे। यदि नीचे की अदालत मे किसी मामले मे उनके खिलाफ निर्णय हो जाता तो वे उसके खिलाफ डिस्ट्रिक्ट ऐण्ड सेशन्स जज की अदालत मे अपील करते। उसके बाद हाई कोर्ट मे जाते और किसी-किसी मामले मे तो सर्वोच्च न्यायालय तक जाते। जब तक इन मुद्दो का निर्णय नही होता तब तक मुकदमे स्थगित रहते। मुद्दे बेकार भी नही रहते, काफी महत्वपूर्ण होते, क्योकि शासकीय पक्ष की ओर से कानूनी कार्रवाई कम, धाधली ज्यादा चलती थी। भोलानाथ और धनजय की इस नीति से शासकीय पक्ष वाले और चिढते, दात-होठ पीसते, पर कुछ नही कर पाते थे। समय की गति 'युगान्तर' पक्ष की स्थिति को मजबूत बना रही थी। पहले हमले

मे ही वह उखड जाता तो उखड जाता। पर अब तो लगता था कि बाजी सरकारी पक्ष के हाथ से निकल गई थी और सारे प्रदेश मे यह वातावरण फैल गया कि यह झगडा अब अण्डर ग्राउण्ड (भूमिगत) चला गया, जल्दी तय नही होगा। धनजय ने भी कुछ शान्ति की सास ली।

पर राजकीय क्षेत्रो मे युगान्तर-केस को लेकर काफी आग सुलगती रही। शासकीय दल की विरोधी पार्टियो ने इस आग को ठण्डा नही होने दिया। धनशेट्टिवार की समाजवादी पार्टी ने इसका सबसे ज्यादा फायदा उठाने की कोशिश की। बडी उठा-पटक और उछल-कूद की। चूकि अब वह अदालत से बरी कर दिया गया था, धनशेट्टिवार अपने आपको एक 'हीरो' मानता था और सोचता था कि अगले चुनाव मे मै खडा रहूगा और जोशी जी के दल को, वह भ्रष्टाचार मे लिप्त होने के कारण, परास्त कर सकेगा। मन्त्रिपद पाने के स्वप्न भी वह देख रहा था। और धनशेट्टिवार ने दिल्ली मे जाकर शासकीय दल के श्रेष्ठि वर्ग मे जोशी जी के खिलाफ शिकायतो पर शिकायतो की भरमार कर दी।

भोलानाथ को मित्र-प्रेम के कारण बार-बार यह मोह होता था कि यदि जोशी जी के विरुद्ध पक्षो के लोगो की कार्रवाई सफल हो गई तो धनजय के गले पर लगा हुआ फदा निकल जाएगा। भोलानाथ बार-बार कहता

'धनजय, तुम खुद दिल्ली जाकर इस मामले मे कोशिश क्यो नही करते? तुम्हारा भी तो वहा खूब परिचय है? देश के कतिपय नेता स्वातन्त्र्य-सग्राम मे तुम्हारे साथी थे। क्या वे तुम्हारे प्रति किए गए अन्याय का परिमार्जन नही करेगे?'

धनजय का यह मत नही था। पर इस समय वह कोई वाद-विवाद नही करना चाहता था। शहर का वातावरण इन मुकदमो की चर्चा और हलचल से भरा हुआ था। उस वातावरण मे इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर तटस्थता और निर्विकार दृष्टि से विचार करना कठिन था। इसलिए उसके मन मे बार-बार यही विचार उठ रहा था कि बाबाजी के आश्रम मे चला जाए। वहा के शात वातावरण मे ही इन गम्भीर प्रश्नो की ऊपापोह हो सकती थी। इधर काफी दौड-धूप और विवचना के कारण वह कुछ थकावट भी महसूस कर रहा था।

सयोग की बात हुई कि बाबाजी के यहा से एक आदमी आया और बोला, 'बाबाजी ने आपको बुलाया है। कृष्ण-जन्म का उत्सव होने वाला है। आप लोग

उसमे शामिल हो, ऐसी उनकी इच्छा है।'

वह पहला मौका था जब बाबाजी ने खुद धनजय के पास सदेशा भेजा था। क्या उन्हे पता चल गया कि उसके अतर मे हृदय-मथन चल रहा है ?

और वह हृदय-मथन इस बात पर नही था कि भोला बार-बार दिल्ली जाने पर जोर दे रहा है। उसकी दृष्टि इस समय केवल अपने केस पर नही थी। आम चुनाव एक वर्ष के फासले पर खडे थे और तब तक तो युगान्तर का मामला कोई न कोई स्पष्ट रूप लेकर सामने आ ही जाएगा, जो उसके लिए श्रेयस्कर होगा, ऐसी उसकी धारणा थी। पर रह-रहकर उसे जो अन्तर्व्यथा हो रही थी वह इस सघर्ष की तह मे जो बुनियादी सवाल थे उनके बारे मे थी। युगान्तर-केस के कारण, जिसके कुछ मामले सर्वोच्च न्यायालय मे गए थे, सारे देश मे यह बात तो फैल गई थी कि एक अखबार बडी मुस्तैदी के साथ अपनी आत्मा और अस्तित्व के सरक्षण की लडाई लड रहा है जिसकी तह मे सत्ता के दुरुपयोग की तथा भ्रष्टाचार की समस्याए है, जो केवल एक ही सूबे का सवाल नही है, पर कम-बेशी परिमाण मे सारे देश का सवाल है। प्रान्त-प्रान्त से उससे मिलने के लिए लोग आते और कहते कि जगह-जगह गाधी के आदमी गाधी के मार्ग से हटते जा रहे है, सत्ता और लोभ की माया मे लिप्त हो रहे है, कर्तव्यभ्रष्टता तथा चरित्र-हीनता बडे पैमाने पर बढ रही है, और हम भारत के ऊचे आदर्शो से गिरते जा रहे है। क्या सचमुच देश मे सत्वगुण का ह्रास और तमोगुण का प्रभाव व्यापक परिमाण मे बढ रहा है ? क्या इस पुण्यभूमि को सचमुच कलि का काला चरण पदाक्रान्त कर रहा हे ? यदि यह सब हे तो इस महान सकट से देश की रक्षा कैसे होगी ? कैसे उसका उद्धार होगा ?

'चलो भोलानाथ। बाबाजी के आश्रम चले। मुकदमे की अगली तारीख को तो अभी एक सप्ताह है। वहा चलकर अपने प्रश्नो का समाधान होगा और मेरा हृदय-मथन रुकेगा।'

भोलानाथ ने भी अपनी लाठी उठाई और दोनो मित्र सन्त देवाजी महाराज के आश्रम मे जाने के लिए निकल पडे। वही तीसरे दर्जे पैसेंजर गाडी की यात्रा। और वही दो मील की पैदल यात्रा जो इस समय वर्षा ऋतु के कादो-कण्टक के कारण बडी कठिन और कष्टप्रद रही। सामान की गठरी सिर पर थी, उसमे जूते बाध लिए गए थे, और कपास की काली जमीन के भयकर कीचड मे वे दोनो

मित्र धीरे-धीरे अपना रास्ता तय कर रहे थे। कही-कही तो घुटने-घुटने तक पैर भीतर धस जाते थे। बीच मे एक नाला पडता था जिसके पानी मे बाढ भर आई थी। वहा तो उन्हे सिर्फ लगोट पहनकर छाती भर पानी मे से अपना मार्ग निकालना पडा। पैर लडखडा रहे थे, पर दोनो दोस्त एक दूसरे का कन्धा पकडकर उस नाले को चीटी की गति से पार कर रहे थे और मुह से कहते जाते थे, 'जय देवाजी महाराज!'

आश्रम मे वे जब पहुचे तो उनका रूप-रग देखने के काबिल था। उन्हे देखते ही बाबाजी खिलखिलाकर हस पडे। बाबाजी की विनोद-बुद्धि भी गजब की थी। बोले, 'कैसी रही भगवन्?'

'बहुत अच्छी!' धनजय और भोला ने जवाब दिया।

'तो क्या भगवान के दर्शन यो ही होते है?' बाबाजी ने मुसकराते हुए कहा। 'मरे बिना तो स्वर्ग नही मिलता मेरे भाई। कोई बात नही। अब प्रेम से स्नान-ध्यान करो, भोजन तैयार है।'

और जब नगाडे का ढमाका और चौघडे के स्वर धनजय के कानो पर पडे तो उसे लगा जैसे उसका सारा श्रम-परिहार हो गया और वह आनन्द की एक दूसरी दुनिया मे ही पहुच गया।

४६

बाबाजी कृष्ण-जन्मोत्सव के कार्यक्रमो मे व्यस्त थे। मन्दिर मे दिन-रात भजन-पूजन, नाम सकीर्तन चलता रहता था। बाबाजी और उनके आश्रमवासियो ने उपवास किया था। बाबाजी अक्सर मन्दिर मे रहते या फिर अपनी कुटिया मे ध्यानावस्था मे पडे रहते। धनजय और भोलानाथ भी कुछ देर के लिए कीर्तन मे जाकर बैठे, और फिर उठकर दूर खेत मे देवी के मन्दिर के चबूतरे पर बैठ गए। ऊपर नीम के वृक्ष की शीतल छाया थी। ठण्डी हवा बह रही थी जो बडी प्यारी लगती थी। धनजय ने कहा, 'भोला, इस भूमि का ही कुछ ऐसा प्रताप दिखाई देता है जो यहा आते ही मन शान्त हो जाता है, सारा अन्तर्दाह नष्ट

हो जाता है। बाबाजी हमसे बातचीत कर पाए या न कर पाए, हमे बडी शान्ति अनुभव होने लगती है।'

'तुम ठीक कहते हो धनजय। बाबाजी का मेरा भी इतने वर्षों का अनुभव है, पर मैंने देखा है कि वे बातचीत तो बहुत ही कम करते हैं। वे न किसीका ज्योतिष बताते हैं न किसीको गण्डा या तावीज देते हैं, और न किसीको जप-तप की माला फेरने को कहते हैं। पर जो उनपर श्रद्धा रखते हैं, विश्वास करते हैं और उनके तत्वो पर आचरण करते हैं वे उनकी कृपा के पात्र हो जाते हैं और उनका सब काल-कण्टक अपने आप ही दूर हो जाता है। जो उनके स्नेह और प्रभाव की परिधि मे पहुच जाता है उसे सब समय यही लगता है कि कोई दैवी शक्ति हमेशा उसका सरक्षण कर रही है, उनके आशीर्वाद का छत्र उसके सिर पर है, और वह असहाय और अकेला नही है।'

'यही बात मैं तुमसे कहने वाला था, भोला। आज बाबाजी के सम्पर्क मे आए मुझे भी दो-तीन साल होने को आए, और यह समय मेरे जीवन मे कितना भयकर था यह तुम भी जानते हो—पर किसी सुन्दरता के साथ हमारी समस्याए धीरे-धीरे सुलझती जा रही हैं? मुझे विश्वास है कि सकट के ये बादल शनैः-शनैः हट जाएगे और हमारी सस्था बच जाएगी।'

'तुम यदि दिल्ली जाकर गत तीन वर्षों का कच्चा चिट्ठा राष्ट्र के नेताओ से कह सुनाओ तो ये बादल और भी जल्दी हट जाएगे।' भोलानाथ ने कहा।

'नही भोला, यह बात मुझे जचती नही। मैं इन मुकदमो से उत्पन्न हुई राजनीति मे नही पडना चाहता। ये मुकदमे तो अब अपने आप ही सुलझ जाएगे, थोडे समय की ही बात है। इसकी मुझे चिन्ता नही है। पर मुझे आजकल जो बात खटक रही है वह है देशव्यापी भ्रष्टाचार और नैतिक मूल्यो का ह्रास। युगान्तर की लडाई तो उसका एक प्रतीकमात्र है। पर जिस मनोवृत्ति के कारण यह लडाई मुझपर लादी गई वह कम-अधिक परिमाण मे सारे देश मे फैली हुई है।'

'क्यो नही फैलेगी? इतना बडा युगान्तर-काण्ड हुआ जिसमे सरासर भरी अदालत मे एक मुख्य मत्री के खिलाफ आक्षेप किए गए, और प्रधान मत्री के कानो पर जू तक नही रेगी! इस बात को भी अब तीन वर्ष होने को आए। लोग क्या सोचेंगे, यही न कि जोशी जी उनकी राजनीतिक पार्टी के मुख्य मत्री हैं, उनको हटाया गया तो पार्टी की बदनामी होगी, और फिर दूसरे सूबो मे भी इसी तरह की पचायत शुरू

हो जाएगी ? नीतिमत्ता से पार्टी की ममता ज्यादा होगी, इस बात की कम से कम प्रधान मत्री से तो उम्मीद नही थी। सच कहता हू धनजय, इससे मुझे बडा दर्द है। गाधीजी के वारिस से तो ऐसी उम्मीद नही थी ''

'उनका भी एक पक्ष है भोला। उनके पास जब तक पूरा सबूत नही आ जाता तब तक वे भी क्या करे ? मुख्य मत्री जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति के खिलाफ कदम उठाना आसान काम नही है। जब तक मामला ठोक-पीटकर नही देख लिया जाता तब तक वे भी क्या कर सकते है ? और मामले न्यायालय मे विचाराधीन होने के कारण उनसे पूरी सफाई भी नही मागी जा सकती। इसलिए तो सारी बात उलझ पडी है।'

'यह तो धनजय, महज 'टेक्निकल' अडचन है, और उसी तरह की सफाई है। इससे जनमत को सतोष नही होगा। वह तो मोटी-मोटी बातो को देखता है। मिनिस्टरो के बडे-बडे बगले, उनकी तथा उनके रिश्तेदारो की बडी-बडी मोटरे, शाही रहन-सहन, लम्बे-लम्बे दौरे, बडे-बडे भत्ते, जनता पर इस सबका क्या असर पडता है ? मै पिछले महीने ही तुम्हारे कानूनी कागज लेकर दिल्ली गया था, वहा भी यही हाल है। गाधीजी की वह सादगी और मितव्ययिता कहा ? ऐसा लगता है कि स्वतत्रता मिलने के बाद हमारा गाधीजी से काम खत्म हो गया, और इसलिए हमने उन्हे अलग उठाकर धर दिया। और हम लोग विदेशो की नकल करने लगे।'

'सो तो तुम ठीक कहते हो भोला। आजकल चारो ओर जो देख रहा हू उससे तो यही लगता है कि हम लोग मुह से तो गाधी की रट लगाते जाते है, गाधी-नगरो और गाधी-भवनो का निर्माण करते जा रहे है, पर जिस एक भवन मे—हृदय-भवन—मे उन्हे रखना था उससे उन्हे हटा दिया है। गाधी के देश मे ही गाधीजी का यह निर्वासन बडा दुखदायी लगता है भोला।'

'उनका निर्वासन क्यो नही होता धनजय ? उनके कारण तो अब हमे अडचन होने लगी है। उनकी विचारधारा और जीवन-प्रणाली की अगर हम दुहाई देने लगे तो फिर इतनी बडी-बडी तनख्वाहो और मुगलो की तरह शाही रहन-सहन के लिए कहा गुजाइश है ? उसके लिए तो यही कहना ज़रूरी था कि गाधी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए ठीक थे, पर स्वतत्र भारत के नव निर्माण के लिए वे 'आउट ऑफ डेट', दकियानूस और पुराने ख्यालो के मालूम पडते है। नये भारत का निर्माण तो आधुनिक ढग से होना चाहिए, विज्ञान और तकनीक के आधार पर होना चाहिए,

वरना दुनिया हमपर हसेगी। इसीलिए आए बडे-बडे कल और कारखाने, बडे-बडे बाध, बिजली और इस्पात की योजनाए '

'इनकी भी आवश्यकता है भोला, और स्वतन्त्र देश के निर्माण मे इनका भी स्थान है। पर दुर्भाग्य यही है कि इन्हीको इतनी प्रधानता दी जा रही हे कि भारतीय जीवन की अन्य विशेषताओ की तरफ ध्यान ही नही दिया जा रहा है। आखिर इस्पात के कारखाने तो कवेण्ट्री और पिट्सबर्ग मे भी है, नदी और बाध की योजना तो टैनेसी वेली मे भी है—इनमे हमारे लिए ऐसी विशेष भूषण की क्या बात हो गई कि हमने कोई बडा कमाल करके दिखा दिया ? कोई भी सर्वसाधारण शासन यदि आवश्यक पूजी, इजीनियरो और योजको की व्यवस्था करे तो यह काम आसानी से हो सकता है। इनको जो जरूरत से ज्यादा महत्व दिया जा रहा है वह ठीक नही है '

'ये लोग तो आजकल जीवन-मान ऊचा करने के पीछे पडे है—लोगो को अच्छा खाना-कपडा चाहिए, अच्छे मकान चाहिए, उनके रहन-सहन का ढग आधुनिक पद्धति का होना चाहिए। इन चीजो की आवश्यकता है, यह मै मानता हू क्योकि भूखे पेट तो भजन भी नही हो सकता। पर शरीर-सुख की कल्पना तो मुख्यत पश्चिम के भौतिकवाद से आई है। वहा पहले विज्ञान के चरण पडे, उसके साथ औद्योगिक क्रान्ति आई, सस्ते और नफीस माल का उत्पादन हुआ, सुखासीन जीवन का लालच बढा, बाजारो की तलाश हुई, उसमे से साम्राज्यवाद निकला, महायुद्ध हुए, नर-सहार हुआ, और मानवता की सभ्यता ही तबाही के दरवाजे पर जाकर खडी हो गई। इसी अन्धे रास्ते का अनुकरण करके भला हमारा क्या कल्याण होने वाला है धनजय ?' भोलानाथ ने पूछा।

'कल्याण ? इसमे क्या कल्याण होगा भोलानाथ ? पश्चिमी सभ्यता ने इसी राह चलकर एक ही पीढी के भीतर दो भयकर विध्वसक महायुद्ध देखे और अब वह अणु युग मे जा पहुची है जहा दो-चार बम ही समूची पृथ्वी का नाश कर सकते है। अब यह सभ्यता जान गई है कि एक गलत कदम उठाया कि दुनिया चौपट हुई ही समझो। पर पश्चिमी दुनिया हिंसा और द्वेष के कारण एक ऐसे दुश्चक्र मे फसी है कि उसे मार्ग नही सूझ रहा है। उसने भारत की तरफ आशा की नजरो से देखा—यही एक मुल्क था जिसकी वैदिक काल से एक विशिष्ट प्रकार की सस्कृति चली आ रही है, एक खास दृष्टि है, जिसमे राम और कृष्ण पैदा हुए,

बुद्ध और गाधी पैदा हुए और जिसकी केवल शान्ति और अहिसा की परम्परा रही है। इसी मार्ग पर चलकर इसने आधुनिक युग मे एक ऐसे बलशाली साम्राज्य से स्वतन्त्रता हासिल कर ली, जिस साम्राज्य मे कभी सूरज नही डूबता था। सारा विश्व इस प्रयोग को देखकर आश्चर्यचकित हो गया। साथ ही उसे विश्वास भी हो गया कि यही देश हमे हिसा के दुश्चक्र से बचने का तथा सभ्यता का मार्ग दिखा सकेगा। दुनिया हमारी तरफ आशा और आदर से देखा करती थी, पर हम उनकी आशा पूरी करना तो दूर रहा, उन्हीका अन्धानुकरण करने लगे, और अमेरिका, इग्लैड या रूस की देखा-देखी अपने देश की योजनाए बनाने लगे। विदेश के लोगो को धक्का लगा—अरे, ये तो हमारा ही मार्ग अख्तियार कर रहे है। कहा तो हमने सोचा था कि ये हमे नई राह दिखाएगे, और कहा ये हमारी उसी घिसी-पिटी राह पर ही चल रहे है, जिसने हमे सर्वनाश के गर्त के पास पहुचा दिया। उन्हे कितनी निराशा और विफलता हुई होगी? हमे भी हुई है। शताब्दियो के बाद तो हमारा देश स्वतन्त्र हुआ, और इतना विशाल क्षेत्र एक झण्डे और एक छत्र के नीचे आया। कितनी पुरानी हमारी सस्कृति और सभ्यता है! उसकी पृष्ठभूमि पर नया भारत और नया जीवन निर्माण करने की हमारे पास एक स्वर्ण-सधि आई थी, पर हम आधुनिकता और भौतिकवाद पर आधारित सभ्यता की चकाचौध मे उसे खो बैठे। हजारो वर्षो के बाद तो ऐसा ऐतिहासिक मौका आता है। पर उसे हम खो बैठे इससे बढकर भाग्यहीनता और क्या हो सकती है?'

'इसका कारण यह है धनजय, कि अपने जो प्रधान मत्री है न, वे आधुनिक विज्ञान की सभ्यता मे पले हुए व्यक्ति है। उनका वही दृष्टिकोण है जो पश्चिमी राष्ट्रो का है। उस दृष्टिकोण मे भारतीयता तो नाममात्र की है। जैसे इमर्सन के बारे मे कहा जाता है कि वे एक भारतीय ऋषि और चितक की तरह थे जो धोखे से अमेरिका मे पैदा हो गए थे, वैसा ही हाल हमारे प्रधान मत्री का है। वे बडे सहृदय है, परिश्रमी है, भारत-निष्ठ है, पर भारतीय सस्कृति के प्रतिनिधि नही है। गाधी जी ने उन्हे अपना वारिस तो बनाया पर उनमे गाधी-दर्शन और गाधीवाद की दृष्टि तो करीब-करीब नही के बराबर है। गाधीजी ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पहले उन्हे अपना उत्तराधिकारी तो घोषित कर दिया था, पर स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद वे प्रधान मत्री के साथ बैठकर इस बात का फैसला करना चाहते थे कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत का नक्शा कैसा हो, नवीन भारत का मन्दिर किस तरह का हो?

पर खेद है कि यह बात तय होने के पहले ही गाधीजी की आखे बन्द हो गई और प्रधान मत्री ने अपने आपको देश का सर्वेसर्वा पाया। सो, उन्होने जैसा उनका प्रामाणिक दृष्टिकोण था उसी तरह भारत का निर्माण करने की योजना बनाई। इसमे उन्हे दोष देना भी मुश्किल है क्योकि आदमी तो आखिर अपनी बुद्धि और वृत्ति के अनुसार ही काम करेगा। वे जो भी कर रहे है वह अच्छी नीयत से कर रहे है, पर यदि मूल मजिल ही गलत रही तो सफर की सारी मेहनत तो बेकार ही गई न ? हा, रास्ते पर चलने का, कुछ न कुछ करते रहने का, बगैर आराम के परिश्रम करने का सतोष हमे ज़रूर मिलेगा, पर इसमे यदि बुनियादी दिशा-भूल ही हो गई हो तो हम कहा जा पहुचेगे, जरा सोचो तो ?'

भोलानाथ जो कहता था उसमे तथ्य नही है, ऐसा तो धनजय नही कह सका। वह ज़रा विचार मे पड गया। उसे खामोश देखकर भोलानाथ ने कहा, 'क्यो, तुम्हारे प्यारे प्रधान मत्री पर मै आक्षेप कर रहा हू इसलिए तुम नाराज हो गए ? क्या सोच रहे हो ?'

'नही नाराजी-वाराजी की बात नही है। प्रधान मत्री के लिए सचमुच मेरे दिल मे बडा प्यार है। वह एक बहुत ही ईमानदार और निर्मल अन्त करण के व्यक्ति है, बच्चो से जब मिलते है तो कितना विशुद्ध और अकृत्रिम रहता है उनका स्नेह ! भावुक है, बुद्धिवादी है '

'बुद्धिवादी है, पर चिन्तक नही है, धनजय ! उन्होने कोई नई विचारधारा या नया समाजशास्त्र ईजाद नही किया है। जो विचारधाराए मौजूद है उन्हीका वे विवेचन और पिष्टपेषण बहुत उत्तम रीति से करते हैं। उसका ढग बहुत आकर्षक और नवीन होता है, पर उसमे मौलिकता नही रहती। रूसो, तालस्तॉय या गाधी —ये सब चिन्तक थे, क्रान्तिकारी विचारधारा या जीवन-प्रणाली के निर्माता थे। प्रधान मत्री क्रान्ति के पुत्र है, पर क्रान्ति के पिता नही है, प्रणेता नही है। इसी-लिए विश्व की चोटी के लोगो मे उनकी गणना नही होगी। मेरा तो ख्याल है कि इतिहास मे वे यदि स्मरण किए जाएगे तो इसलिए नही कि वे बडे राज-नीतिज्ञ थे, या भारत जैसे विशाल देश के पहले स्वातत्र्योत्तर प्रधान मत्री थे, बल्कि अपनी दो-चार पुस्तको के कारण, जो उन्होने जेल की तनहाई मे लिखी है। उनमे उनकी मानवीयता के जो दर्शन होते है वे ज़्यादा प्रिय और शाश्वत होगे, बजाय उनके दीगर कामो के, जैसे भिलाई और भाखडा नागल के। ग्लैडस्टन और पिट

को आज कौन याद करता है भाई ? चर्चिल को लोग भूल जाएगे पर उसके युद्ध-सस्मरणो को नही।' भोलानाथ कहता गया। आज न जाने उसे क्या हो गया था जो वह बोलने के मूड मे था। वह जो बोल रहा था वह खुद बोल रहा था या जिस धरती पर वह बैठा था वह उससे बुलवा रहा रही थी, यह धनजय नही समझ सका। वह उसकी तरफ बडे आश्चर्य और कौतुक से देखते हुए बोला

'तुमने तो यार इस मामले मे बहुत कुछ सोचा-समझा है, ऐसा दिखता है। पर जो काम प्रधान मत्री कर रहे है उसे किसी न किसीको तो करना ही पडता। शासन-तन्त्र सम्हालना, और देश को एक स्वस्थ और स्थायी शासन देना, जो प्रजातत्र के सिद्धान्तो को लेकर चले, यह छोटा काम नही है। अडोस-पडोस के देशो मे क्या हुआ या हो रहा है, देखा नही तुमने ? प्रधान मत्री के कारण ही तो हमारे देश की इज्जत बढी है, दुनिया का ध्यान उसकी ओर गया है, यह तो मानना ही होगा।'

'सो तो मानना ही होगा धनजय। पर बुद्ध और गाधी के देश का जो भी प्रधान मत्री होगा वह यही तो करेगा। आखिर शान्ति की भावना तो हमारे रग-रग मे भरी हुई है। हमारा देश किसी भी लडाई मे कैसे शामिल हो सकता है, और किसी एक गिरोह मे कैसे बैठ सकता है ? वैसी न तो हमारी परम्परा है और न हमारे यहा की आबोहवा।'

'तुम तो आज उन्हे किसी भी बात का क्रेडिट देने के लिए तैयार नही हो भोला, आखिर वकील पेशा आदमी ठहरे। जिस बाजू से खडे हो गए सो खडे हो गए। फिर दूसरा बाजू तुम्हे दिखता ही कहा है ?'

'ऐसी बात नही है धनजय! मुझे राजनीति मे क्या लेना-देना ? मै तो प्रधान मत्री से एक बार भी नही मिला और न कभी इस जनम मे मिलने का सभावना है। दूर से ही दरस-परस हो जाते है उतने ही काफी है। मै उनका तो शुभचितक ही हू—वे सौ साल जिए ऐसी मेरी हार्दिक कामना है। पर मुझे खेद इसी बात का है कि वे भ्रष्टाचार को नही रोक सके, चरित्र के मूल्यो की सुरक्षा नही कर सके। उनका ध्यान दुनिया की तरफ पहले जाता है, विदेश मे क्या होता है इसकी ज्यादा फिक्र है, पर अपने देश मे, घर मे दिया तले कैसा अधेरा है यह उन्हे दिखाई नही देता। नतीजा यह होता है कि हमारी जो कुछ भी प्रगति होती है उसका पूरा लाभ हमारे हाथ नही लगता। हमारी हालत उस मेढक की तरह हो जाती है जो

कुए की चिकनी दीवाल पर दो फुट ऊपर चढता है और एक फुट नीचे खिसक जाता है। यदि देश मे आज इतनी कर्तव्यभ्रष्टता और चारित्रिक अनास्था नही होती तो हमारी तरक्की न जाने कितनी अधिक हो जाती। इस चारित्रिक सकट का क्या इलाज है कुछ समझ मे नही आता। पर जब तक वह सकट देश से नहीं हटता तब तक हमारी सारी प्रगति खोखली और अस्थायी है ऐसी मेरी निश्चित राय है।' भोलानाथ ने कहा।

'कर्तव्यपरायणता और चारित्रिक निष्ठा तो जीवन की शाश्वत प्रेरणाओ से आती है भोलानाथ।' धनजय ने कहा, 'महज खाना-कपडे का विचार करके तथा केवल जीवन-मान बढाने की चिन्ता से तो वह नही पैदा होती। शारीरिक भूख शमन होने के बाद तो आत्मा की भूख मनुष्य को सताने लगती है। आत्मिक क्षुधा की अतृप्ति ही हमारे समस्त नैतिक पतन का कारण है। आत्मा की यह क्षुधा ईश्वर से साक्षात्कार करने के लिए तडपती है, मानव की आत्मा विश्व की ब्रह्मात्मा मे विलीन होने के लिए छटपटाती है, और क्षुधा की पूर्ति या तृप्ति का मार्ग धर्म है। पर धर्म की तरफ हमारे शासको का ध्यान ही नही है।'

'धर्म की तरफ? ओ बाबा! आजकल तो इस धर्मपरायण देश मे धर्म का नाम मुह से निकालना भी पाप है!' भोलानाथ दोनो कानो पर हाथ रखते हुए बोला, 'आजकल धर्म की बात करने वाला आदमी पुरातनवादी है, परम्परावादी है, कट्टरपथी है, अन्धविश्वासी है, जातिवादी है—सब कुछ है पर आधुनिक जगत का सभ्य नागरिक नही है। इस धर्मनिरपेक्ष राज मे तुम धर्म की बात करते हो? उसमे तो हम-तुम जैसे जप-ध्यान करने वाले लोगो के लिए जो सतो के पीछे पडे रहते हैं, कोई स्थान नही है।' भोलानाथ ने व्यग्य के साथ कहा।

'धर्म के नाम पर उसकी विकृतियो को फासी पर चढा दो तो बात अलग है। पर मेरी निश्चित धारणा है कि आज के भारत की सारी बुराइया और मुसीबते धर्मपथ से भ्रष्ट होने के कारण ही है, भोला।' धनजय ने आवेश मे कहा।

'सो कैसे, ज़रा मुझे समझाओ तो। इस सम्बन्ध मे मेरे भी अपने कुछ विचार है पर तुम्हारी क्या धारणा है यह मै जानना चाहता हू।' भोलानाथ ने कहा।

'धर्म—यह समाज को धारण करने वाला नीति-तत्व है, भोलानाथ।' धनजय ने कहा, 'देश की सस्कृति और जीवन-प्रणाली हमेशा उसीपर आधारित रही

है। यह तत्व हमारे रोम-रोम मे, रक्त के बिन्दु-बिन्दु मे सना हुआ है। यही कारण है कि गाधी अपने जीवन मे इतनी लोकप्रियता और श्रद्धा सम्पादन कर सका जो विश्व के किसी महापुरुष को, ईसा और बुद्ध को भी, प्राप्त नही हुई थी। उसका समस्त जीवन-दर्शन धर्म पर आधारित था, और भारतीय जनता की समझ मे वह फौरन आ जाता था। वह लगोटी और अगोछा पहने घूमता था, रोज प्रात -साय रामधुन गाता था, एक झोपडी मे रहता था, हमेशा जनकल्याण की भावना मे रत रहता था, वह जनता के लिए एक खुली हुई किताब की तरह था जिसका एक एक पृष्ठ वह पढ सकती थी। और वह उसके पीछे पागल होकर दौड पडी। उसके बल पर उसने इस देश मे इतनी महान शक्ति पैदा की कि अग्रेजी साम्राज्य को हटना पडा और दुनिया के सामने उसने एक ऐसा क्रान्तिकारी जीवन-दर्शन रख दिया जो केवल पुस्तकीय शास्त्र नही था, पर प्रत्यक्ष जोवन की प्रयोगशाला मे सिद्ध हुआ वास्तविक प्रयोग था? उसका प्रयोग आगे चलाने का उत्तरदायित्व इसी देश के लोगो पर था, जो उसके उत्तराधिकारी थे, उसकी सतान थे। पर हमने उस ऐतिहासिक कर्तव्य से मुह मोडकर पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण करने मे ही जीवन की सार्थकता समझ ली—उस सभ्यता का जो भौतिकवाद और भोगवाद पर आधारित है और जिसका दिवाला पिट गया है। और वह भी आधुनिकता के नाम पर! भला सोचो तो, गाधी की आत्मा क्या कहती होगी?'

'तुम बात तो ठीक कहते हो, धनजय। तुम्हारा क्या ख्याल है—गाधीजी को इतनी अद्‌भुत लोकप्रियता मिली उसका क्या कारण है?' भोलानाथ ने पूछा।

'इस देश मे सतो और ऋषि-मुनियो की पूजा करने की परम्परा रही है, चरित्र और चितन का बहुमान रहा है। केवल सत्ता या धन की कोई महिमा नही रही है। राजसत्ता ने भी धर्मसत्ता के सामने सिर झुकाने मे हमेशा अपना गौरव माना है। हमारे यहा चक्रवर्ती-पद उसी राजा को मिला है जो सत्ता का उपयोग स्वार्थ के लिए नही पर एक न्यासी (ट्रस्टी) की तरह लोक-मागल्य के लिए करता था। ऐसे राजाओ ने हमेशा धर्मगुरुओ के आदेशो के अनुसार चलकर ही धर्मसिहासन की स्थापना की है। राज्यसत्ता पर धर्मसत्ता का सदैव अकुश रहता था इसलिए वह स्वच्छन्द और अमर्यादित नही हो पाती थी। राजा रामचन्द्र के गुरु वसिष्ठ मुनि थे, राजा जनक के याज्ञवल्क्य ऋषि। धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान कृष्ण के आदेशो के अनुसार धर्मराज्य की स्थापना की, तो मगध सम्राट ने महा-

मत्री चाणक्य को अपना सलाहकार माना जो स्वय एक कुटिया मे रहता था। ऐति-हासिक काल मे छत्रपति शिवाजी महाराज ने स्वामी रामदास को अपना गुरु माना, तो आधुनिक काल मे गाधी ने राज्यसत्ता के बाहर रहकर ही राज-काज का नियन्त्रण किया। स्वतत्रता-प्राप्ति के पहले उनके शिष्यो ने उनका नियन्त्रण पूरा-पूरा माना—शायद इसलिए कि उसके बिना गति नही थी—क्योकि स्वातत्र्य-सग्राम के नये तन्त्र (टेकनीक) के वही आचार्य थे। पर स्वतन्त्रता मिलते ही हमारे नेताओ ने उनका नियन्त्रण दूर कर दिया और लगे अपनी मनमानी करने। तभी से हमारे देश की किश्ती बिना मस्तूल के जहाज की तरह इधर-उधर भटक रही है। जब तक गाधी का उपयोग था उसे हमने सिर पर लेकर नाचा, ज्योही हमारी क्षुद्र बुद्धि मे उसका काम खतम हो गया उसे सिर से उतारकर अलग धर दिया। इतिहास इस भयकर अवसरवादिता और कृतघ्नता पर क्या कहेगा, जरा सोचो तो?'

'पर ऐसा क्यो हुआ धनजय ? आखिर इस घटना के पीछे कोई न कोई ताकत या नियम तो होना ही चाहिए। गाधी के ही देश मे उसके मरने के बाद ही इतना अ-गाधीत्व क्यो?' भोलानाथ ने पूछा।

'मुझे भी इस घटना से बडा आश्चर्य होता है भोला। मुझे लगता है कि प्रत्येक महान क्रान्ति के बाद एक प्रतिक्रान्ति होती है। ईसा की मृत्यु के बाद ईसाइयत कुछ काल के लिए बर्बरता की प्रतीक हो गई। बुद्ध के महानिर्वाण के बाद कुछ समय के लिए दुर्नीति और अनाचार का साम्राज्य फैल गया। और आज गाधी के बाद भी व्यापक परिमाण मे भ्रष्टाचार और चरित्र-बल का ह्रास दिखाई देता है। कोटि-कोटि सूर्य की प्रभा के अस्तगत होने के बाद तो कुछ देर के लिए घुप्प अधेरा हो जाना स्वाभाविक है। कुछ काल बीत जाने के बाद ही फिर सतुलन वापस लौटता है, और योग्यायोग्य का विचार स्थिर होता है। आज की अपेक्षा सौ वर्ष बाद गाधी अधिक शक्तिशाली होगा और हजार वर्ष बाद तो भगवान के अवतार की तरह पूजा जाएगा जैसा कि राम और कृष्ण के बारे मे हुआ है।' धनजय ने कहा।

'यह तो एक तात्विक पृष्ठभूमि की बात हुई, धनजय। पर प्रत्यक्ष व्यवहार के क्षेत्र मे तुम्हारा क्या ख्याल है कि देश मे स्वतत्रता के बाद हमे क्या करना चाहिए था? हम कहा गलती खा गए?'

'गाधी जी ने धर्म को ही जीवन का आधार माना था। धर्मरहित राजनीति को तो वे दूर से भी स्पर्श करने के लिए तैयार नही थे। उनका धर्म सर्वधर्मो का समन्वय था, उदार था। उसमे कट्टरता, दभ या अन्धविश्वास के लिए स्थान नही था। वह हमारे देश की प्रकृति और गुण-धर्म के सर्वथा अनुकूल था। उसके कारण हमारे देश मे चारित्रिक मूल्यो की प्रतिष्ठा बढी, त्याग और सादगी का महत्व बढा, सादा रहन सहन और ऊचा चितन आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा। स्वार्थ की जगह परमार्थ का, सत्ता की जगह सेवा का, पाखण्ड और मिथ्याचार का जगह सत्याचरण का, द्वेष और सघर्ष की जगह प्रेम और सद्भावना का वातावरण फैला। आदमी की इज्जत उसकी सत्ता या धन-दौलत के कारण नही, उसके चरित्र और गुणो के कारण होनी चाहिए ऐसा उनका कटाक्ष था। यह तो सर्वथा एक नई दृष्टि थी, पूर्णत नय मूल्यो का आविष्कार था। वह था तो पुराना, हमारे देश की प्राचीन सस्कृति और परम्परा के अनुकूल, पर नया इसलिए लगता था कि वह पाश्चात्य सभ्यता मे रगे हुए अग्रेजी शासन के जमाने मे अवतरित हुआ था, और वह उससे बिलकुल भिन्न था। इसीलिए वह क्रान्तिकारी लगता था। उसीको अपनी राजनीति की आधारशिला मानकर हम आगे बढते तो इतने गुमराह नही होते, इस तरह नही भटकते।'

'पर तुमने यह नही बताया धनजय, कि प्रत्यक्ष व्यवहार मे हम इस भटकने से बचने के लिए क्या कर सकते थे, तुम्हारी राय मे स्वातत्र्योत्तर भारत के नवनिर्माण की तस्वीर मे क्या खामी रह गई ?' भोलानाथ ने प्रश्न किया।

'हमारी तस्वीर भदरगी तस्वीर है भोला। इसमे सब तरह के रग है, पर रगसगति नही है। हमने कुछ इग्लैंड का देखा तो उसका अनुकरण कर लिया, कुछ अमेरिका मे देखा तो उसे ले लिया, रूस मे देखा तो उसे भी रख लिया, चीन गए तो वहा से भी कुछ विचार उठा लाए, और लोग सर्वोदय-सर्वोदय चिल्लाते है तो उसे भी रख लिया, यानी कही का ईंट, कही का रोडा, भानमती ने कुनबा जोडा। न इसमे कोई सूत्रबद्धता है, न एक निश्चित योजना। इसमे और सब हो पर भारतीयता की छाप करीब-करीब नही है। भारतीयता के नाम से ही यदि कुछ नेताओ को नाक-भौ सिकुडने लगे, और भारतीयता को पुरातनवाद मानकर ही उसपर हमला करने की वृत्ति जाग उठे तो और क्या होगा ?'

'पर उन लोगो का दिमाग तो विज्ञान से प्रभावित है। विज्ञान को ही वे

आधुनिक युग का परमेश्वर मानते हैं, सो उसका क्या किया जाए ?'

'विज्ञान से भारतीय सस्कृति की कोई दुश्मनी नही है भोला। उसे बदनाम करने के लिए ही खामखा यह इलजाम लगाया जाता है। विज्ञान की दृष्टि सत्य और ज्ञान की दृष्टि है, तर्कशुद्ध प्रणाली से तथ्य का खोज करने की दृष्टि है, और भारतीय जीवन-दृष्टि ने हमेशा इसे अतीव आदर ही दिया है। उपनिषद की एक कथा मे यमराज ने नचिकेता को विश्व की समस्त धन-सम्पदा, सुरा-सुन्दरिया तथा भोग-विलास के साधन देने का प्रलोभन बताया, पर उसने इन सबको ठुकरा-कर मागा केवल ज्ञान, आत्मा-परमात्मा के रहस्य की जानकारी। आद्यशकराचार्य की भी यह दृष्टि थी कि जो बात तर्क और बुद्धि को न जचे उसे कदापि ग्रहण मत करो। आत्मज्ञान के लिए ही तो बडे-बडे ऋषि-मुनियो ने तप किए है। इसलिए यह कहना कि भारतीय सस्कृति ज्ञान की विरोधी हे, उसका अपमान करना है। ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक आध्यात्मिक ज्ञान और दूसरा विज्ञान। जिस प्रकार सफल कर्म करने के लिए इन दोनो हाथो की आवश्यकता होती है उसी प्रकार जीवन की पूर्णता के लिए इन दोनो प्रकार के ज्ञानो की आवश्यकता होती है। आध्यात्मिक ज्ञान का अर्थ ही हे, अद्वैत। यानी सारी मानव-जाति का ही मै अविभाज्य अश हू, जो चैतन्य तत्व मुझमे है वही सब चराचर भूतो मे व्याप्त है, सारे मानव एक ही पिता की, ईश्वर की, सतान हैं, वे सब मेरे भाई ही हैं, उनकी सेवा और कल्याण के लिए ही मुझे विज्ञान की आवश्यकता है। यही दृष्टि ज्ञान-विज्ञानात्मक दृष्टि है, जो अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय करती है। यदि विज्ञान के पीछे यह अद्वैत का तत्वज्ञान न रहा, एकत्व का तत्वज्ञान न रहा तो विज्ञान मानव का सर्वनाश ही करके छोडेगा। और सारा विश्व एक सुन्दर नदनवन की जगह भयकर श्मशान बन जाएगा।'

'सचमुच धनजय, तुमने जो बाते कही है वे बहुत ही बुनियादी हे। पता नही हमारे नेतागण इनके बारे मे क्यो नही सोचते ?'

'क्या सोचेगे भोलानाथ ? उन्हे वक्त ही कहा है ? सबके सब तो जाकर सरकारी पदो और ओहदो पर बैठ गए है जहा सुबह से शाम तक टेलीफोन, इटरव्यू, फाइले, भाषण, उद्घाटन, दौरे-प्रवास चलते रहते है। चौबीस घण्टे, दिन-रात जैसे उनके ऊपर कोई भूत सवार हो गया हो। इसमे कितना काम उपयोगी है और कितना बेकार है, भगवान जाने। इस अविश्रान्त भाग-दौड मे उन्हे बुनियादी बातो

को सोचने-समझने की फुर्सत कहा ? जो कुछ कॉलेज या जेल मे पढ लिया, सो पढ लिया। जो सस्कार बन गए सो बन गए। अब नये सस्कारो तथा नये विचारो के लिए उनके पास समय कहा है, गुजाइश कहा है ? दिमाग मे जो कुछ है वही उनकी कमाई है, और उसके ताले खुलने का नाम नही लेते। जो सोचते है, विचारते है, चिन्तन करते है, उनकी समाज मे या देश मे कोई प्रतिष्ठा नही है। सभी गुण शासन मे समाहित है, और सत्ता की परिधि के बाहर कुछ भी नही है, ऐसी धारणा बल पकड रही है। साहित्य, चिन्तन, स्वतत्र पत्रकारिता सभी अधिकाश मे शासनाभिमुख हो गए है। शासन के माध्यम से पचवार्षिक योजनाओ के नाम से करोडो रुपया खर्च हो रहा है। साहित्य-निर्माण, समाज-कल्याण, कला-सृजन, शिक्षादान सभी कुछ सरकार के जरिये हो रहा है। शासन के प्रभाव का पजा इतनी दूर तक फैला हुआ है कि उसकी परिधि से बचना मुश्किल होता है। जीवन-मान और महगाई इतनी बढ गई है कि जो लोग स्वाभिमान से स्वतन्त्र चिन्तन और समाज-सेवा का व्रत लेना चाहते है उनकी जिन्दगी कठिन हो गई है। इसलिए निर्भीक, स्वतत्र और तेजस्वी व्यक्तियो के चिंतन और विचार-प्रदर्शन के लिए बहुत ही प्रतिकूल वातावरण है। राजनीति ने सारे देश के जीवन को इतना ग्रसित कर लिया है कि सास्कृतिक मूल्यो की अवहेलना हो रही है। शासन के ढोल-ढमाके मे कवि या गायक का स्वर नक्कारखाने मे तूती की आवाज़ की तरह क्षीण और निष्प्रभ लगने लगता है। हमारा समाज-जीवन और राष्ट्र-जीवन असतुलित हो गया है, जिसमे धर्म, कला, साहित्य, सत्य, सौन्दर्य आदि सास्कृतिक मूल्यो के लिए अत्यन्त गौण स्थान दिया गया है। जब तक हमारे दृष्टिकोण मे परिवर्तन नही होता हमारे मूल्य नही बदलते तब तक सत्तात्मक राजनीति की धीगा-धीगी ही चलती रहेगी पर यह धीगा-धीगी विदेशो की आयात है, भारतीय जन-जीवन का यह स्वभाव या गुण-धर्म नही है '

धनजय बोलता जा रहा था। ऐसा लगता था जैसे इतने दिनो से विचारो का जो समुद्र-मथन भीतर ही भीतर चल रहा था—आज वह बाहर सतह पर फूट पडने को उद्यत है। भोलानाथ ने उसे रोका नही। धनजय बोलता गया

'इस पश्चिमी जीवन-दृष्टि का असर यह हुआ कि बस, प्रत्येक आदमी निन्यानबे के फेर मे पड गया। अच्छा खाना, अच्छा कपडा, अच्छा मकान, रेडियो, फर्नीचर सब कुछ अच्छा चाहिए। वह यदि हमारी तनख्वाह मे से पूरा नही होता है

तो दूसरे तरीके से पूरा करना चाहिए। फिर वह गैरकानूनी तरीका ही क्यो न हो। अधिकारो पर हरेक जोर देता है कि मुझे यह चाहिए, वह चाहिए, पर कर्तव्य की तरफ किसीका ध्यान नही है। कम से कम परिश्रम मे अधिक से अधिक सुख-भोग मिलना चाहिए इसी ध्येय के पीछे हम पागल है। तनख्वाहे बढनी चाहिए, महगाई भत्ता बढना चाहिए, वेतन बढने चाहिए, काम के घण्टे कम होने चाहिए, सुविधाए बढना चाहिए, यही नारे उठते है। फिर काम कौन करेगा, देश की सपत्ति कैसे बढेगी, राष्ट्र ऊचा कैसे उठेगा—इसकी तरफ ध्यान नही है। जर्मन और जापान पिछले युद्ध के जमाने मे बमबारी के कारण तहस-नहस हो गए, पर दस बरसो के भीतर वे उठ खडे हो गए और आज हमे—भारत को—कर्ज देने की शक्ति रखते है। और हमारा देश, जिसे लडाई की आच तो नही लगी, पर जिसने लडाई के कारण काफी समृद्धि कमाई, वह सब न जाने कहा काफूर हो गई और हमे निर्लज्जतापूर्वक दूसरे देशो के आगे हाथ पसारने की आवश्यकता पड गई है। जो परिश्रम, लगन, देशनिष्ठा जर्मनी और जापान के लोग दिखा सकते है वह हम क्यो नही दिखा सकते ? हमारे आचार-विचार मे इतनी विच्छृखलता, इतनी तफावत क्यो है ? प्रत्येक देश का एक स्वभाव-धर्म होता है, एक प्रकृति होती है, जैसे इग्लैड मे कूटनीति, अमेरिका मे वाणिज्य, फ्रास मे कला, उसी प्रकार भारत की प्रकृति अध्यात्म की है। उसको बिसराकर हम भारतीय स्वतत्रता का मन्दिर नही बना सकते। भारत का नव निर्माण दूसरे देशो की अन्धी नकल करके नही कर सकते। वह तो मूल मे भारतीयता के पाये पर ही खडा हो सकता है। हमारी सारी कला, सस्कृति और सभ्यता विशुद्ध भारतीयता की पुख्ता आधारशिला पर स्थापित करे तभी वह स्थिर और स्थायी होगी। वरना हमारे राष्ट्र की सारी इमारत भीतर से कमजोर हो जाएगी, और परिस्थिति के जरा-से धक्के से वह खण्डित हो उठेगी।' धनजय ने कहा।

'तो क्या तुम्हे भविष्य के बारे मे चिन्ता है धनजय ? क्या हमारा देश पथ-भ्रष्ट हो गया है ?' भोलानाथ ने पूछा।

'नही भोलानाथ ! मुझे भविष्य के बारे मे कोई चिन्ता नही है। यह तो काल-पुरुष का खेल है, एक लीला है जो देख रहा है कि देखे तुम कितने पानी मे खडे हो। भारतीय सस्कृति की परम्परा अत्यन्त प्राचीन और उज्वल है, हिमालय की तरह अडिग और अजेय, गगा की धारा की तरह निर्मल और चिरन्तन। जाह्नवी

की धारा मे अलकनन्दा और मदाकिनी जैसी न जाने कितनी असख्य सरिताओ का जल है। उसके तट पर न जाने कितने ऋषि-मुनियो ने तपस्या की है, और ईश्वर से साक्षात्कार होने पर आनन्दाश्रु बहाए है—उनका जल भी गगा की धारा मे मिला है। किसानो के परिश्रम से थके हुए शरीरो के स्वेद-बिन्दु भी इसी धारा मे सम्मिलित हुए है। उन सबसे मिल-जुलकर बनी है यह गगा की अखण्ड धारा। और उसी तरह है हमारी भारतीय सस्कृति का अखण्ड प्रवाह जिसमे वैदिक ऋषियो का चिन्तन, कवियो के स्वप्न, कर्मयोगियो के परिश्रम तथा समाज-सुधारको और उद्धारको की सेवा-भावना, तथा साधु-सतो का भक्ति-भाव मिला-जुला है। यह अखण्ड प्रवाह शताब्दियो से, सहस्राब्दियो से चला आ रहा है, और यह हमारे रक्त के कण-कण मे समाया हुआ है। वही हमारे जीवन की स्फूर्ति और प्रेरणा है, वही हमारे आदर्शो और स्वप्नो का अधिष्ठान है। और उसीके आधार पर भारतीय स्वतत्रता का स्वर्ण मन्दिर भी खडा होगा। उसे अज्ञान से, अनुभव से कोई खण्डित करने का प्रयत्न करेगा तो क्षण भर के लिए वह भग्न मन्दिर भले ही दिखाई दे, पर यह सिर्फ क्षण भर के लिए ही होगा। उसको खण्डित करने वाले लोग यथासमय महाकाल के विराट वक्त्र मे विलीन हो जाएगे पर वह स्वर्णमन्दिर फिर उठ खडा होगा, अपनी समस्त प्रभा, और वैभव और गौरव के साथ, और उसका प्रकाश दिग-दिगन्त मे फैलेगा, उसकी आरती का घण्टानाद समस्त आसमत मे गूज उठेगा।'

उसी समय भोलानाथ और धनजय ने देखा कि दूर बाबाजी के कृष्ण मन्दिर मे भी आरती चल रही है, और शख और घण्टा की ध्वनि दशदिशाओ मे फैल रही है। भोलानाथ ने उठते हुए कहा, 'चलो धनजय, हम लोग भी मन्दिर चले, आरती हो रही है।'

४७

नये आम चुनावो की तैयारिया ज़ोर-शोर से हो रही थी। पाच साल मे एक बार यह मौसम आता है। सारे देश मे बडी चहल-पहल रहती है। प्रजातन्त्र की यही विशेषता है कि हर पाच साल मे शासकीय दल को जनता के सामने

अपना समर्थन प्राप्त करने के लिए जाना पडता है। उसीमे उसकी रीति-नीति का लेखा-जोखा होता है, चर्चाए होती है, यह काम अच्छा हुआ, यह काम गलत हुआ। अपने कार्यकाल के अन्तिम वर्ष मे शासन बडा चुस्त, जिम्मेदार और जनताभिमुख हो जाता है। अच्छे-अच्छे काम करता है, लोगो का अधिक ख्याल रखता है ताकि इसकी मिठास मे लोग पुरानी बाते भूल जाए और उन्हे फिर से निर्वाचित कर दे। प्रजातन्त्र मे जनता के हाथ मे ही सर्वोपरि सार्वभौम सत्ता रहती है। नागरिक ही सबसे बडी इकाई है। जो दल बहुमत प्राप्त करता है वह उसीके नाम की दुहाई देकर शासन चलाता है। विश्व के समाजशास्त्रियो ने तथा राज्यशास्त्रविदो ने सोच-विचार कर यही निर्णय व्यक्त किया है कि प्रजातन्त्र ही मानव-समाज के नियन्त्रण और कार्य-सचालन का सबसे श्रेष्ठ और सबसे सभ्य तरीका है। फ्रास मे स्वातन्त्र्य-समता और बन्धुत्व की भावना को लेकर राज्य-क्रान्ति हुई। इग्लैंड मे भी राजाओ के सिर काटकर तथा उन्हे गद्दी से उतारकर प्रजा की प्रभुसत्ता का प्रादुर्भाव हुआ। स्वातन्त्र्य और समता के सिद्धान्तो पर अमेरिका ने तो पहले ही इग्लैंड के उपनिवेशवाद से मुक्ति पा ली थी। वहा तो राजाओ की परम्परा ही नही थी इसलिए जनता की सार्वभौम सत्ता के आधार पर ही शासन का निर्माण हुआ। धीरे-धीरे इन विचारो का यूरोप मे तथा अन्य देशो मे व्यापक प्रचार हुआ और प्रजातन्त्र की नीव दृढ होती गई।

लेकिन इग्लैण्ड और फ्रास मे ही, जो इन प्रगतिशील विचारो के प्रणेता माने जाते थे, दिया तले अधेरा था और उन्हीकी नाक के नीचे बडे-बडे साम्राज्य और उपनिवेश कायम हुए। घर मे प्रजातन्त्र था, इन उपनिवेशो मे गुलामी थी। घर मे गोरे लोग रहते थे, उपनिवेशो मे काले लोग रहते थे। एक के लिए एक न्याय था, दूसरे के लिए दूसरा। इन परस्पर विरोधी चित्रो के कारण प्रजातन्त्र का नैतिक अधिष्ठान कमजोर हो गया, और उसका वर्णन 'मुख मे राम और बगल मे छुरी' की तरह होने लगा। यानी ऊपर से प्रजातन्त्र परन्तु भीतर घोर एव क्रूर साम्राज्यशाही। इस स्वार्थी पाखण्ड के विरोध मे एक दूसरी विचारधारा आगे बढी जो सशस्त्र क्रान्ति के बल पर जनता का राज्य कायम करने लगी। रूस इसका अग्रणी था। इसमे विश्व के समस्त श्रमिक-जन एक है, और शासन-सूत्र उनके ही हाथ मे रहने चाहिए यह विचार निकला। इन सूत्रो को प्राप्त करने का सर्वमान्य तरीका था सशस्त्र क्रान्ति। रूस की राज्यक्रान्ति की सफलता के कारण यह विचार ताकत

पा गया। सर्वसाधारण जन की समता पर यह आधारित था इसलिए इसका नाम साम्यवाद हो गया।

इन सब विचारधाराओ का पिष्टपेषण ग्रीस के तत्ववेत्ताओ ने किसी न किसी रूप से किया था, पर औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि पर इन विचारो ने नये रूप-रग धारण किए और भिन्न-भिन्न देशो की प्रकृति के अनुसार नई-नई मान्यताए और नये-नये आकार प्राप्त किए। पर औद्योगिक क्रान्ति के कारण ही पूजीपतियो और श्रमिको के वर्ग पैदा हुए, और उसीके कारण ही साम्राज्यवाद और साम्यवाद का जन्म हुआ। एक ने प्रजा के नाम पर सत्ता हथियाने की कोशिश की तो दूसरे ने श्रमिको और मजदूरो के नाम पर। हिसा का आश्रय दोनो ने लिया, क्योकि इसके सिवा वे दूसरा शस्त्र या साधन जानते ही नही थे, और उन दोनो को बाधने वाली एक कडी थी—अर्थनीति। इस अर्थनीति के पालन मे वे एकदम परस्पर विरोधी थे, पूरब-पच्छिम थे, पर उनको जोडने वाली शृखला अर्थनीति की ही थी। यानी एक ही शृखला के वे दो सिरे थे,एक दूसरे के बिना उनका अस्तित्व ही नही था।

इतने मे जर्मनी और इटली जैसे देशो को अनुभव हुआ कि प्रजातन्त्र की या राजाशाही की व्यवस्था बहुत ही धीमी, उलझी हुई और भ्रष्टाचार से ओत-प्रोत है तो उन्होने व्यक्तियो को पैदा किया जिन्होने सेना के बल पर प्रखर राष्ट्रीयता के नाम पर पराजय के अपमान और कलक को धो निकालने का आश्वासन देकर अधिनायकवाद (डिक्टेटरशिप) का निर्माण किया, जहा हिटलर और मुसोलिनी जैसे तानाशाह पैदा हुए। इस तानाशाही के माध्यम से दस साल के भीतर ही जर्मनी ने जो अद्‌भुत फौजी सत्ता और ताकत निर्माण की उसने सारी दुनिया को हैरत मे डाल दिया। और वही विश्व-विजय न कर बैठे और हम लोग कही के न रहे इसी डर मे दूसरा महायुद्ध छिड गया जिसमे मतलब की दोस्ती मे परस्पर विरोधी लोग भी एक ही खेमे मे जाकर बैठ गए—इग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रास और रूस एक तरफ तो जर्मनी, इटली और जापान दूसरी तरफ। प्रजातन्त्र, साम्राज्यवाद और साम्यवाद एक ही मच पर आ डटे और जब तक एक दुश्मन सामने था, अपनी-अपनी दुश्मनी को पिए रहे। पर वह दुश्मन जब खत्म हुआ तब वे भी अपने असली रगो मे सामने आ गए।

पर इस लडाई ने एक फायदा किया—साम्राज्यवाद के बन्धनो को ढीला कर दिया। अमेरिका ने फिलिपीन्स को पहले स्वतन्त्रता दी, अग्रेजो ने पहले लड-

झगडकर और बाद मे स्वेच्छा से भारत को मुक्त कर दिया, बर्मा, सीलोन स्वतन्त्र हुए और अन्य उपनिवेशो मे भी स्वतन्त्रता के आन्दोलन ने जोर पकडा।

भारत मे नई स्फूर्ति, नई लहर फैल गई। उसने प्रजातन्त्र को स्वीकार किया। अपना सविधान बनाया, पर उसपर इग्लैण्ड, अमेरिका और फ्रास के सविधानो का जबर्दस्त प्रभाव था—फ्रास का कम इग्लैण्ड-अमेरिका का ज्यादा। दृष्टि यही थी कि ये देश प्रगतिशील है, आधुनिक सभ्यता और विचारो के अगुआ है, हम इनकी नकल न करे तो प्रगतिशील, आधुनिक और सभ्य कैसे कहलाए जाएगे ? इसका कारण यही था कि हमारे नेताओ पर पश्चिमी विचारो की इतनी गहरी छाप पडी थी कि वे मन से तो भारतीयत्व की भावना रखने की कोशिश करते थे, पर दिमाग पर सारे यूरोपियन चिन्तको के विचार हावी हुए बैठे थे। उनकी राष्ट्रीयता और स्वातन्त्र्य-भावना मे कुछ रोमास का रग मिला हुआ था जो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर अत्यधिक जोर देने के कारण आया था। उनकी प्रजातन्त्र की तस्वीर इसी विचारधारा पर आधारित थी। प्रजातन्त्र मे नागरिक के हाथ मे ही सार्वभौम सत्ता रहती है। एक हद तक यह ठीक है, पर नागरिक ही यदि चरित्रहीन और निर्बुद्धि रहा तो इस प्रजातन्त्र का क्या होगा ? इसका जवाब प्रजातन्त्र के हिमायतियो के पास नही था।

भारतीय चिन्तन की यह दृष्टि थी कि नागरिक यदि यह समझ ले कि वह विश्वव्याप्त चैतन्य तत्व का ही एक अग है, स्वय ईश्वर का ही प्रतीक है, उसीकी प्रतिमूर्ति है, तो अनायास ही नीति और सदाचार की ओर उसकी प्रेरणा होने लगती है, धर्मपथ का अनुसरण करने के प्रति सहज स्वाभाविक आकर्षण होने लगता है। अर्थात्, पश्चिमी भौतिकवाद के अर्थतत्व से प्रजातन्त्र की मुक्ति करके उसमे अध्यात्मतत्व भरने की आवश्यकता है। उससे केवल एक देश के ही नही, समस्त विश्व के नागरिक, केवल बन्धु ही नही है, एकात्मजीव है, यह भावना दृढ होगी, और यह विश्वात्मकता ही विश्व मे शान्ति का राज्य, धर्म का राज्य या रामराज्य की स्थापना करने मे सफल होगी। भारत का यही मौलिक विचार विश्व के चिन्तन के लिए एक नम्र देन है।

पर भारत ने प्रजातन्त्र का बाह्य स्वरूप तो स्वीकार कर लिया, परन्तु उसकी आत्मा मे कौन-से रग भरने चाहिए इस ओर विशेष ध्यान नही दिया। इस स्वरूप की कल्पना जहाज़ पर चढकर विदेशो से आई थी पर उसमे भारतीयता के लिए

बहुत कम जगह थी। विशुद्ध भारतीयता की पृष्ठभूमि पर हम उस कल्पना का समन्वय नही कर सके।

समन्वय का यह विचार साम्यवाद से तो बहुत आगे है ही, जहा हिसा पर आधारित राज्यसत्ता ही सर्वोपरि है, और व्यक्ति गौण है, न्यून है, शासनतत्र की विशाल मशीन का एक पुर्जा है, पर यह विचार पश्चिमी प्रजातन्त्र से भी आगे है, जो केवल भौतिकवाद पर आधारित है और जिसमे आदमी के खाने-कपडे पर जीवन-स्तर बढाने पर ही विशेष जोर दिया जाता है।

भारतीय विचार-व्यवस्था मे मानव की प्रतिष्ठा ही सर्वोपरि है जो उसके आत्मतत्व पर निर्भर है। उसे प्रजातत्र का अध्यात्मीकरण कहे या आध्यात्मिक प्रजातन्त्र (स्पिरिच्यूएल डेमॉक्रेसी) कहे। इसमे धीरे-धीरे सख्या गौण हो जाती है, गुण ही महत्व पाने लगते है। इसी दृष्टि से गाधीजी ने एक बार दावा किया था कि यदि मै भारत की कोटि-कोटि जनता के सुख-दु खो का, सासो और उसासो का स्वप्न और आकाक्षाओ का स्पन्दन अपने हृदय मे अनुभव करता हू तो उनके प्रतिनिधित्व के लिए मै अकेला ही काफी हू। जन-जीवन के कल्याण और मागल्य की सतत साधना और चितना से ही यह एकात्मकता आती है। सन्तो, कवियो और कलाकारो के सामर्थ्य की भी यही कुजी है। जब कोई भी साहित्यकार या कलाकार जन-जीवन या राष्ट्र-जीवन से सम्पूर्ण तादात्म्य पाकर, समाधिस्थ हो, अपने अन्तर्देवता की वाणी कहता है तो उसमे कोटि-कोटि मुखो की वाणी प्रतिध्वनित हो उठती हे, सजीव बन जाती है। यही उसकी सामर्थ्य हे और इसका प्रजातन्त्र के आकडो या वोटो से कोई सम्बन्ध नही है।

इसी विचारधारा पर आधारित गाधी ने हमे विशुद्ध भारतीयता की अद्भुत दृष्टि दी जो सर्वथा मौलिक और क्रान्तिकारी थी। उसपर चलने का जो साहस गाधी मे था वह उसके शिष्यो मे नही रहा, और उनके हाथ-पाव ढीले पड गए।

गाधी ने जल्दी ही अपनी आखे मूद ली। वह सन्त था, क्रातदर्शी था, इसलिए शायद जानता था कि आगे क्या होने वाला है। इसलिए जिन्दा रहकर अपनी ही आखो अपना मरण देखने की बजाय अपनी इज्जत हाथ मे रखकर पहले ही क्यो न आखे बन्द कर ली जाए ? इसलिए वह तो यह कहकर चल पडा कि लो भैया, मै तो अपना कारज करके चला, तुम यह गठरी सम्हालो।

उसकी विरासत के रूप मे यह गठरी हमारे हाथ आई—सोने की गठरी थी

वह। उसमे स्वतन्त्रता थी, सत्ता थी, जादू की लकडी थी, अलाउद्दीन का लैम्प था——कि जिसके बल पर हम जो बनाना चाहते, वह बना सकते थे, महल चाहे तो महल, उद्यान चाहे तो उद्यान, स्वर्ग चाहे तो स्वर्ग !

और वह गठरी देकर चला गया तो हमने सिर धुन-धुनकर रोना-पीटना शुरू किया, हाय-तोबा मचाई, विलाप और व्यथा के आसुओ के पनारे बहाए !

उस समय उस विलाप और क्रन्दन को देखकर तो यही लगता था कि नही, गाधी मरा नही है, अमर है, और आज यदि वह हमारे अश्रुओ मे साकार हो उठा है तो कल वह हमारे कृतित्व मे जरूर उतरेगा ।

पर आज लगता है, उन अश्रुओ मे कही कुछ नक्राश्रु तो नही मिले थे जो आज बडी भारी जायदाद छोड जाने वाले पिता के लिए दत्तक पुत्र की आखो मे उमड पडते है ? जो रक्त का पुत्र होता है वह बेचारा अपने आसू चुपचाप पी जाता है, पर दत्तक पुत्र को तो अपना प्रेम जताने के लिए छाती पीट-पीटकर मुहल्ले को जगाना पडता है ।

हमारी आखो मे आसू तो थे पर उनके परदो के भीतर से हमारी नजर बराबर उस गठरी पर ठहरी हुई थी——

वही सोने की गठरी, सत्ता की गठरी, रम्यनगरी का निर्माण करनेवाली जादू की गठरी ।

उस गठरी मे और क्या था ? उसमे था स्वातत्र्य-समर मे अपनी आहुति देने वाले शहीदो का रक्त——झासी की रानी लक्ष्मीबाई का, भगतसिह और बिस्मिल का, सुभाषचन्द्र बोस का, उन सब असख्य ज्ञात एव अज्ञात शहीदो का रक्त, जिन्होने देश-स्वातत्र्य को यज्ञ माना और अपने आपको आहुति !

उसमे थे स्वातन्त्र्य के लिए अपने जीवन का होम करने वाले हुतात्माओ की विधवाओ के आसू, माता और बहनो के उष्ण नि श्वास, अन्दमान तथा ब्रिटिश जेलो मे सडने वाले लाखो राजबन्दियो की आहे और कराहे ।

उसमे थे वैदिक ऋषियो के मत्र, धर्म-सत्ता के सस्थापको के परिश्रम, भारतीय सन्तो की बानी, भारतीय तत्ववेत्ताओ के जीवन-दर्शन, भारतीय कर्मयोगियो के स्वेद बिन्दु, भारतीय कवियो के स्वप्न !

और उसमे थी, इन सब सहस्त्राब्दियो के प्रवाहो के सगम और सचय से निर्मित भारत की वह देदीप्यमान और अजस्र आत्मा, जिसका प्रतीक था, गाधी !

और उसमे था उस भव्य, विशाल और जाज्वल्यमान स्वर्णमन्दिर का मान-चित्र, जिसकी प्रभा दीप्तिमत है, और जिसका दर्शन भारत की अजर, अमर आत्मा ने इस रूप मे किया था

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यम्
अनन्तबाहु शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वा दीप्तहुताशवक्त्र
स्वतेजसा विश्वमिद तपन्तम् ।

एक ऐसे राष्ट्र-पुरुष के रूप मे, जिसका न आदि है, न मध्य है, न अन्त है, जो अनन्त सामर्थ्य से युक्त है, अनन्त हाथो वाला है, चन्द्र और सूर्य जिसके नेत्र हैं, जिसका मुख अग्नि की तरह प्रज्वलित है, और जो अपने अलौकिक तेज से समस्त विश्व को आलोकित करता है ।

इस गठरी का हमने स्वर्ण देखा, और उसका उपयोग करने की सत्ता देखी---

पर उससे किस प्रकार का मन्दिर निर्माण करना है यह हमारी आखो मे अस्पष्ट हो गया, हमारी आखो से ओझल हो गया ।

और वह बूढा तो हमारे हाथ मे गठरी थमाकर चलता बना, मानो यह कहकर गया कि भई, मैने अपना काम तो कर दिया, अब तुम्हारा तुम जानो । मेरा भाग्य मेरे साथ, और तुम्हारा भाग्य तुम्हारे साथ ।

४८

युगान्तर-केस के एक मुकदमे की सुनवाई, जिसमे धनजय और उसके साथियो पर दफा ४२० का मामला चलाया गया था, खतम होने पर आई । उसका सम्बन्ध सरकारी प्रेस के किसी बिल से था, जिसका काम युगान्तर प्रेस मे उन दिनो हुआ था जब उसके और शासन के सम्बन्ध मैत्री के थे । सरकारी गवाहो ने तथा पुलिस के लोगो ने मुकदमे को काला करने मे कोई कसर नही की । लेकिन जो न्यायाधीश थे उनकी नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार हाईकोर्ट ने की थी । यह नियुक्ति धनजय की एक दरख्वास्त के फलस्वरूप

हुई थी जिसमे उसने कहा था कि चूकि मुख्य मत्री स्वय इन मुकदमो मे दिलचस्पी रखते है, उसे उनके प्रदेश मे न्याय मिलने की सभावना नही है। इन न्यायाधीश महोदय की न्यायप्रियता की अच्छी ख्याति थी और वे किसीके प्रभाव मे भी नही आ सकते थे ऐसा आम तौर पर ख्याल था। मुकदमा दो साल तक चला और अन्त मे फैसले की तारीख आ गई। बचाव बहुत अच्छा था और नित्य की तरह धनजय ने सारी जिम्मेदारी अपने सिर पर ही ले ली थी। उसकी इच्छा थी कि उसके मातहत सब कर्मचारी छूट जाए, उनकी परेशानी दूर हो—फिर वह अकेला खुलकर लडेगा। फैसले के लिए यह मुद्दा था कि अदालत के सामने जो सबूत आए थे उनके आधार पर धनजय तथा उसके सहयोगियो पर अभियोग रखा जा सकेगा या नही।

धनजय के आनन्द और आश्चर्य का ठिकाना नही रहा जब न्यायाधीश महोदय ने सभी अभियुक्तो को पूर्णत बरी कर दिया, और यह फैसला दिया कि उनपर आरोप तक लगाने की गुजाइश नही है। जोशी जी के मुख्य मत्री रहते हुए उनकी आखो के सामने ही यह फैसला हुआ। उनकी प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। धनजय ने न्यायाधीश महोदय को हृदयपूर्वक धन्यवाद देते हुए कहा, 'मै आपको धन्यवाद केवल इसलिए नही देता हू कि मै आज बरी कर दिया गया। यह व्यक्तिगत सुख-दुख की उतनी बात नही है जितनी सार्वजनिक कल्याण की है। प्रजातन्त्र मे सत्ताधारी लोग जुल्म और ज्यादती करे या सत्ता का दुरुपयोग करे तो एक सर्वसाधारण नागरिक का धनी-धोरी न्यायालय को छोडकर और कोई नही है। प्रजातन्त्र का शासन सत्य और न्याय पर आधारित रहे, नीति और कानून के मुताबिक चले, किसीका द्वेष न करे या बदला लेने की वृत्ति न रखे—यह न्यायालयो की जागरूक दृष्टि के कारण ही हो सकता है। सविधान ने नागरिको को जो अधिकार दिए है उनकी सुरक्षा न्यायालयो की कर्तव्य-बुद्धि के कारण ही हो सकती है। मै आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हू क्योकि मेरा विश्वास है कि आप जैसे न्यायनिष्ठ न्यायाधीश ही भारतीय प्रजातन्त्र के प्रहरी है, कानून और व्यवस्था के सरक्षक है। प्रजातन्त्र की प्रारभिक अवस्था मे जब हमारा अनुभव अल्प है, और हमारी मान्यताए स्थिर और दृढ नही हो पाई है तब न्याय-मन्दिर ही नागरिक का तथा प्रजातान्त्रिक जीवन-प्रणाली का एकमात्र सहारा है। ईश्वर आपका कल्याण करे।'

४९

दूसरे दिन युगान्तर मे धनजय और उसके साथियो की रिहाई का समाचार बडे-बडे हेडिंगो के साथ प्रथम पृष्ठ पर ही प्रकाशित हुआ। सारे प्रदेश मे सनसनी मच गई। धनजय के खिलाफ चलाए गए कतिपय मुकदमो मे यह पहला ही मुकदमा था जिसका फैसला सुनाया गया था। यह फौजदारी का मामला था और धोखेजनी का गभीर इलजाम उसपर लगाया गया था। इसी इलजाम के कारण ही तो युगान्तर के विज्ञापन बन्द कर दिए गए थे। पुलिस ने इस मुक्दमे को खडा करने मे तथा सफल बनाने मे जी-तोड मेहनत की थी, जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाए थे। पर उनकी एक न चली, और न्याय और सत्य की विजय हुई। जो निर्दोष था-वह निर्दोष ही करार दिया गया। मुख्य मत्री के क्षेत्रो मे घोर मायूसी छा गई। पुलिस का तो जैसे मुह ही उतर गया। बात सिर्फ धनजय के निर्दोष छूटने की नही थी, बल्कि अब पूरी बाजी उलटने की थी। धनजय तो दिन-दहाडे चिल्लाया करता था कि ये सारे मुकदमे झूठे है, बनावटी है, व्यक्तिगत बदला लेने के लिए गढे गए है, और आज न्यायालय के निर्णय ने उसके कथन पर पुष्टि की मुहर लगा दी। जोशी जी ने दिल्ली मे दमपट्टी दे रखी थी कि मुकदमे सच है उसमे फसने के कारण ही धनजय ने प्रत्यारोप किए है, कानून अपना काम कर रहा है, और चूकि मामले विचाराधीन है वे अपनी सफाई इसलिए नही दे सकते कि अदालत की मानहानि की सभावना है। फैसला होते ही दूध और पानी अलग दिख जाएगा।

दूध और पानी अलग तो दिखा, पर उस तरह नही जैसी कि जोशी जी को अपेक्षा थी। दिल्ली वाले अब चुप नही बैठेगे। उनके राजनीतिक विरोधी भी चैन से नही बैठेगे। उसी दिन दिल्ली तार पर तार गए कि देखिए, जुल्म का सबूत सामने आ गया न ? अन्याय पर आखिर कब तक परदा डाला जा सकता है ?

इस फैसले की अधिकृत नकल दिल्ली गई और वहा गहरी छान-बीन हुई। राष्ट्रीय नेताओ की धारणा पक्की हो गई कि जोशी जी के खिलाफ जो वातावरण बन गया है वह उनकी तथा उनके दल की प्रतिष्ठा के अनुकूल नही है। उससे तो एक समूचे सूबे का वातावरण दूषित हो जाता है और उसकी प्रतिक्रिया अन्य सूबो पर भी पडती है। इन लगडी भैसो को लेकर चुनाव की मजिल पार नही की जा सकती।

राष्ट्रीय दल के श्रेष्ठिवर्ग ने निश्चय कर लिया कि अभी तुरन्त कदम उठाना तो उचित नही है, पर इस चुनाव मे श्री पूरणचन्द्र जी जोशी को पार्टी का टिकट नही दिया जाएगा, और उन्हें अब राजसन्यास लेने की सलाह दी जाएगी।

धनजय को उन बातो मे दिलचस्पी नही थी। पर इन अफवाहो और घटनाओ के कारण जो लोग दिल्ली से लौटते थे वे तो सट्टा लगाने लगे कि जोशी जी का यह अन्तिम कार्यकाल है, चुनाव के बाद वे मुख्य मन्त्री तो क्या, धारा सभा के सदस्य भी नही रहेगे। इस वातावरण मे पुलिस की नाडी ठडी पड गई, पब्लिक प्रॉसिक्यूटर का उत्साह भी सर्द हो गया। वह अब धनजय से जरा मुसकराकर, और जरा खुशामद करके बोलता था। उसकी नजर तो हाई कोर्ट की जजी की तरफ लगी हुई थी। वह कोई जोशी जी का गुलाम थोडे ही था, अपने मतलब का गुलाम था। उसका हाल उसी दरबारी दीवान की तरह था जो बादशाह की मर्जी के मुताबिक बैंगन का रग भी बदल-बदलकर बताया करता। बादशाह ने एक बैगन हाथ मे पकडकर दीवान साहब से कहा, 'दीवान साहब, यह बैगन तो काला मालूम पडता है।'

'जी हा, गरीब परवर, यह एकदम काला है, जैसे अमावस की रात।'

'लेकिन दीवान साहब, अब मेरा यह ख्याल हो रहा है कि यह लाल रग का मालूम पडता है।' बादशाह ने कहा।

'आपने सही फरमाया हुजूरे आलम! यह एकदम भडकीला लाल है, तोते की चोच की तरह।'

'लेकिन अब मै इसे और भी गौर से देखता हू तो लगता है कि यह एकदम सफेद है।'

'वल्लाह, आपने भी क्या बात कही है जहापनाह। यह तो काजी जी की दाढी की तरह एकदम सफेद है।'

जहापनाह मुस्कराए। बोले, 'दीवान साहब, आप भी अजीब आदमी है। काले, लाल और सफेद रग मे कोई फर्क ही नही करते। घडी-घडी मे रग बदलते है।'

'आपने बहुत दुरुस्त फरमाया मेरे अन्नदाता। मै तो हुजूर का गुलाम हू, बैगन का गुलाम थोडे ही हू?'

पब्लिक प्रॉसिक्यूटर समरेन्द्र गुप्ता का वही हाल था। उसीका क्या, जोशी जी

के आसपास जो खुशामदी और खुदगर्ज लोग इकट्ठा हुए थे उनका बिलकुल यही हाल था। उन्होने यदि जोशी जी को खुश करने के लिए गलीज से गलीज़ काम किए तो इसी उम्मीद से कि जोशी जी का मुख्य मन्त्रित्व अटल है, उनका सरक्षण हमे सब समय मिलता रहेगा।

पर अब तो जो बाते बाजार मे और राजनीतिक हलको मे सुनी जा रही है वे विचित्र है। यदि स्वय मुख्य मन्त्री जी को ही दिल्ली के हुक्म से अवकाश ग्रहण करना पडा तो फिर हमारा क्या होगा ?

युगान्तर के पाठको को तथा आम जनता को विश्वास होने लगा कि समय ने पलटा खाया है, धनजय के जीवन पर मडराने वाले काले बादल छट रहे है। भोलानाथ ने कहा कि यह बाबाजी की कृपा है—तुम देखो तो सही धनजय ! बाकी झझझे भी किस आसानी से दूर हो जाती है। देवाजी महाराज की कृपा बडे विचित्र ढग से फलती है।

गीता ने अर्चना से कहा, 'मैने कहा था न बिटिया, कि बाबूजी इस मामले मे भी जीतेगे ?'

अर्चना धनजय के गले से जा लगी। उसकी खुशी का पारावार नही। उसने कहा, 'मुझसे तो भगवान ने उसी दिन कह दिया था अम्मा, कि ऐसा ही होगा। भगवान कभी गलत नही कहते।'

गीता ने अर्चना को पास खीचते हुए कहा, 'हा बेटी, तेरे भगवान की ऐसी ही कृपा बनी रहे तो तेरे बाबूजी देखते देखते बहुत बडे आदमी बन जाएगे।'

अर्चना भी बडे बाप की बेटी की शान मे जरा अकडकर खडी हो गई।

'नही बेटी, हमे बडप्पन-वडप्पन से क्या करना है ? अपनी स्कूल की किताब का वह सबक तुम भूल गई ?

'लघुता से प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चीटी लै शक्कर चली, हाथी के सिर धूरि॥'

'हा बाबूजी। हमारी मास्टरनी बाई ने हमे यह सबक पढाया था। मै इसका अर्थ बता सकती हू '

इसी तरह उस छोटे-से परिवार मे प्रेम और आनन्द का सागर लहरा उठा। धनजय का हृदय कृतज्ञता से भर गया।

५०

बात वही हुई जिसका कि लोगो को अदेशा था। जब अगले चुनाव के टिकट बटने का वक्त आया तो राष्ट्रीय दल के अध्यक्ष ने जोशी जी को दिल्ली बुलाकर कहा, 'अब आप काफी वृद्ध हो गए हैं, अवकाश ग्रहण कर लीजिए।'

'मेरा स्वास्थ्य तो अच्छा है। मै अभी पाच साल और काम कर सकता हू।'

'नही, अब काफी हो चुका। आप छुट्टी ले लीजिए।'

जोशी जी को एक गहरा धक्का लगा। आज तक वे कई बार उनके खिलाफ की गई शिकायतो को पी गए थे। इस बार भी पी जाएगे ऐसा भरोसा था। उन्होने पूछा, 'आखिर इसकी वजह ?'

'आपके खिलाफ तो शिकायतो के गट्ठे पडे है। आपके निकटवर्ती सहयोगी ही आपसे आजिज आ गए है। हम आपसे कहना तो नही चाहते थे, पर आपने पूछा, इसलिए हमे बतलाना पडा। हम नही चाहते कि कोई कन्ट्रोवर्सी (विवाद) हो और आपको तकलीफ हो। जो काम करना है उसे ग्रेस (सद्भावना) के साथ करना चाहिए।'

फिर भी जोशी जी ने हिम्मत नही हारी। प्रधान मंत्री के पास गए। उनके हाथ मे अमर्यादित सत्ता थी। वे चाहे जिसको गवर्नर बना दे, मुख्य मन्त्री बना दे, राजदूत बना दे, मिट्टी का सोना कर दे। वे खुश हो जाए तो अब भी बात सम्हल सकती है।

पर प्रधान मत्री तो पहले से ही भन्नाए बैठे थे। बोले, 'कहिए, क्या फैसला किया ?'

'एक मौका और मिल जाता तो सूबे मे राष्ट्रीय दल का सगठन इस्पात की तरह मजबूत कर देता।'

'क्यो ?'

'मेरे साथ पूरी पार्टी खडी है। मै न रहूगा तो सूबा तितर-बितर हो जाएगा।'

प्रधान मत्री भडक उठे। बोले, 'आप समझते है सूबा आप चला रहे है ? वह तो राष्ट्रीय पार्टी की इज्जत है और जनता का प्रेम है, जो सूबा चल रहा है। क्या इस मुल्क को मै या आप चला रहे है ? यह तो अपनी ताकत से चलता है—किसी एक आदमी की ताकत से नही। लाइए, आप अपनी जगह अभी खाली कर

दीजिए, अपना इस्तीफा फौरन दे दीजिए, और देखिए सूबा चलता है कि नही।'

जोशी जी ने समझ लिया कि दाव पूरा उलट चुका है। अब कही कोई सहारा नही है। वे हताश हो गए। मोटर मे धम्म से जा बैठे तो उन्हे गश आ गया। किसी तरह लडखडाते अपने डेरे पर पहुचे और बिस्तर पर धडाम से गिर पडे। वे जिनके यहा ठहरे थे वे उनकी हालत देखकर घबडा गए। सिर पर हाथ रखा तो वह तवे जैसा गरम लगा।

डॉक्टर आए, एक नही अनेक। दौड-धूप शुरू हुई, टेलीफोन पर टेलीफोन लगे। डॉक्टरो ने कहा कि कोई जबर्दस्त 'मेन्टल शॉक' लगा है जिसे वे नही सम्हाल सके वृद्धावस्था तो खैर थी ही।'

सारी रात बडी विकलता मे बीती। बडा क्लेश हुआ। पर तबियत की हालत मे कोई परिवर्तन नही हुआ। और वह क्रमश बिगडती ही गई।

और चौबीस घण्टो के भीतर ही सारे देश ने अत्यन्त शोक और आश्चर्य के साथ सुना कि एक विशाल प्रदेश के मुख्य मन्त्री पूरणचन्द्र जी जोशी का अकस्मात स्वर्गवास हो गया।

५१

धनजय को जब उसके सहायक सम्पादक ने टेलीफोन पर यह समाचार बताया तो वह विश्वास नही कर सका। बोला, 'ऐसा कैसे होगा?'

'जी हा, खबर सच है। अभी टेलीप्रिंटर पर आई है।' उसने कहा।

अब तो अविश्वास करने का कोई कारण नही था। घण्टे भर के भीतर शोक-सदेशो की झडी लग गई।

धनजय सुन्न रह गया। यह समाचार बिलकुल अनपेक्षित था। जोशी जी अभी-अभी परसो तक हट्टे-कट्टे थे, सूबे की राजनीतिक गतिविधियो पर उनकी नजर थी, अगले चुनाव की तैयारियो मे मुस्तैदी के साथ जुट पडे थे। और एकाएक यह क्या हो गया?

उसे लगा कि उसके निकट का एक घनिष्ठ सम्बन्धी चला गया, उसके हृदय

पर गहरा आघात लगा।

जोशी जी और उसके सम्बन्ध अत्यन्त निकट के थे—और जब वे अत्यन्त मधुर थे तब तो उनकी मिठास की कल्पना करना भी कठिन है। उनका हृदय बडा विशाल था, उदार था, स्नेह से ओतप्रोत था। एक जमाना ऐसा था कि उन दोनो के व्यवहार पिता-पुत्र की तरह थे। जोशी जी वयोवृद्ध थे और उसने अपनी सारी श्रद्धा और आदर उन्हे समर्पित किया था। धनजय स्वय बडा भावुक भी था। जिसे मानता था उसे पूरे दिल से मानता था। पर जब उसका हृदय-भग हो जाता तब फिर उस ओर से मुह फेर लेता तो पीछे मुडकर एक बार भी नही देखता था। उनके साथ सम्बन्ध निभाना अत्यन्त सरल था, और अत्यन्त कठिन भी था।

उसे जेल के वे महत्वपूर्ण अविस्मरणीय दिन याद आए, कितने प्यारे थे वे दिन। दोनो एक दूसरे के निकट आए थे। उनकी मैत्री कितनी निस्स्वार्थ थी? उसमे राजनीति का कलुष नही था, सत्ता का तामस नही था।

यह पारिवारिकता और स्नेह-भाव कुछ वर्षों तक टिका। वह इसी प्रकार निष्कलक टिका रहता तो कितना सुन्दर होता!

राष्ट्रीयता के सग्राम मे वे नजदीक आए थे, कन्धे से कन्धा भिडाकर उन्होने देश के उत्थान के लिए अग्रेजी हुकूमत से लडाइया लडी थी, आसू बहाए थे, रक्त-दान किया था, दारुण दु ख और अभाव भोगा था। उनका स्नेह कष्ट-सहन की अग्नि मे तपकर कुन्दन जैसा शुद्ध और एकरूप हो गया था।

पर सत्ता-कामिनी के अवतरण के साथ ही उन स्नेह-सम्बन्धो मे विकार आ गया। आदर्शों और स्वप्नो पर आधारित उस पवित्र एव निष्कलक मैत्री मे दुनिया-दारी और व्यावसायिकता आ गई। हित-सम्बन्धो मे फर्क पड गया, सत्ता के मद ने दृष्टि-भेद पैदा कर दिया, उगते हुए सूरज की पूजावृत्ति ने आसपास स्वार्थियो और खुशामदियो की ऊची-ऊची दीवारे खडी कर दी, 'अह' की पुष्टि और तुष्टि हुई और स्नेह की पुरानी दुनिया, आदर्शो और स्वप्नो का अन्तर्जगत, निश्छल पारिवारिकता का मधुर विश्व न जाने कहा छिन्न भिन्न हो गया और उसकी मीठी-कडवी स्मृतिमात्र रह गई।

और यह कहानी धनजय और जोशी जी के बीच ही नही गुजरी, देश के जिले-जिले मे, सूबे-सूबे मे गुजरी। पुराने सग्राम-साथी बिछुड गए, सुख-दुख के मधुर सम्बन्ध टूट गए, त्याग और व्यथा के दुर्दिनो का विस्मरण हो गया, और शासन

नही सकता, स्वय मर्यादा पुरुषोत्तम राम नही टाल सके, धर्मराज युधिष्ठिर नही टाल सके तो धनजय जैसा सर्वसाधारण आदमी क्या टाल सकता है? उस समय तो धीरज रखकर और अपने आन्तरिक सत्य पर तथा ईश्वर पर अटूट श्रद्धा रखकर ही विपदा सहनी पडती है। समय बदलता है तब तो खूटी भी हार निगल लेती है और मरी-भुनी हुई मछलिया उछलकर पानी मे कूद जाती है। सोने को हाथ लगाओ तो वह मिट्टी बन जाता है। पर यह समय भी हमेशा ऐसे नही रहता, क्योकि बदलना उसका धर्म है, काल-चक्र कभी स्थिर नही रहता। जो ऊचे बैठे है वे गिरते है, और जो नीचे है वे ऊपर उठते है। प्रकृति का यह नियम अटल है।

इसलिए विपदा के दिनो मे तो यही श्रेयस्कर है कि

रहिमन चुप व्है बैठिये, समुझि दिनन कौ फेर।
जब दिन नीके आतु है, बनत न लागे देर॥

धनजय को विश्वास था, और वह स्वय देख रहा था कि उसका समय अब बदल रहा है और उसकी मुसीबतो और चिन्ताओ का अन्त होने की घडी निकट आ रही है। और यह क्रम जोशी जी रहते तब भी नही टूटता। इसमे नियति अपना खेल अलग खेलती है। उसके कार्य करने के तौर-तरीके बिलकुल भिन्न होते हैं, तर्क और समझ से परे होते है। मानव तो नियति के हाथ मे एक कठपुतली का खिलौनामात्र है। वह उससे चाहे जैसा नाच नचवा सकती है।

पर धनजय मानव है। उसके भीतर हृदय है, और वह प्रियजनो के वियोग मे रोता है।

आज वह जोशी जी के लिए फूट-फूटकर रो उठा। और जब शोक का आवेग कम हो गया तब वह बिस्तर से उठा और बोला, 'गीता, चलो ठाकुर जी के सामने दीप जलाकर उनसे प्रार्थना करे कि वे दिवगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।'

५२

एक महीने बाद। चुनाव के बादल उमड आए थे, और चारो तरफ भाइयो, हमे वोट दो, देवियो, हमे वोट दो के नारे सुनाई पड रहे थे। राजनीतिक नभोमण्डल मे जैसे तूफान आ गया, पद-लोलुप और उनसे लाभ उठाने वाले

व्यक्तियो के सिर पर जैसे भूत सवार हो गया। और सारे दिगन्त मे वही नारे, वही स्वर सुनाई देते—भाइयो, हमे वोट दो! देवियो, हमे वोट दो!!

वही मोटरो की घर-घर और दौड-धूप, लाउड स्पीकरो की भो-भो, हैण्डबिलो की लाखो की तादाद मे छपाई और वितरण। दे समाचारपत्रो मे प्रोपेगैण्डा! किसीको बात करने की फुर्सत नही। हा, आप कह दे कि हमारे पास इतने वोट है तो फिर बात ही अलग है। फिर आप तो उनके देवता हो गए। लीजिए, यह मोटर, ये हैण्डबिल, यह रुपया, यह हमारा फोटो और यह हमारी पेटी की निशानी।

ओफ! अजीब हालत थी। मिनिस्टर हवाई जहाजो से दौरे कर रहे थे, मोटर मे खाते थे, मोटर मे सोते थे। विधान सभा के सदस्यो का और टिकट पाए हुए उम्मीदवारो का भी वही हाल। जीप गाडी, रेलगाडी, साइकिल—सब लोगो की कुण्डली मे ज़बर्दस्त वाहन-योग आ पडा था। किसीका ठौर-ठिकाना नही। किसी-को मिलने जाओ तो उनके यहा के लोग कहते कि फला जगह गए है, मध्य रात्रि को लौटेगे, कल पाच बजे सुबह फिर निकल जाएगे।

सेक्रेटरिएट इस समय शान्त रहता है। चुनाव के अधिकारी मात्र बडे व्यस्त रहते है। बाकी शाम को क्लब मे ताश खेलकर तथा चुनाव की अटकलबाजिया लगाकर अपना वक्त गुजार देते है। अब चुनाव खतम होने तक उनके काम मे बाधा पहुचाने की किसीको फुर्सत ही नही है। हा, कही वोटो का मामला आ पडा तो आधी रात को कोई जगा ले जाए तो बात अलग है। पर यदि जवाब मिल गया कि साहब, फाइल कहा है, ज़रा देखना पडेगा तो दुबारा फिर आपके पास आने की उन्हे फुर्सत ही नही है।

धनजय ये सब राग-रग जानता था, कई बार देख चुका था। इस तमाशे का सबसे बडा लुत्फ तो वही लोग उठाते है जो इससे निर्लिप्त रहते है। धनजय की भी वही हालत थी। कोई जीते, कोई हारे इसमे उसे कोई खास दिलचस्पी नही थी। हा, राष्ट्रीय दल की पुरानी तपस्या के बल पर जो इज़्ज़त अभी बनी हुई है उससे तो यही दिखता था कि वही जीतेगा। कोई सगठित विरोधी दल भी तो नहीं बन पाया है, वे सब तितर-बितर है। इसलिए मजबूरन लोग राष्ट्रीय दल की पेटी मे ही वोट डालते, हालाकि दिल मे उनके लिए इज़्ज़त घटती जा रही थी।

पर हाथी को भी बैठने मे समय लगता है। सो राष्ट्रीय दल का रथ अभी भी आगे बढा चला जा रहा था, हालाकि उसकी रफ्तार कुछ धीमी पड गई थी।

धनजय सोचता कि ये लोग यदि अपना घर-बार ठीक कर ले, और पुराने चरित्र और आदर्शों की भूमिका पर लौट आए तो अभी दस-बीस साल इनके प्रभाव मे खण्ड नही पडेगा। पर इस ओर उनका ध्यान जाए तब तो !

जोशी जी का अन्त दिल्ली मे हुआ था। पर उनका दाह-सस्कार सूबे की राजधानी मे किया गया था। वही उनकी कच्ची समाधि भी बनी हुई थी। अभी सब लोग चुनाव-चक्र मे फसे थे। वह समाप्त होने के बाद शासन उनके लिए पक्का स्मारक तैयार करने की योजना बना रहा था।

नये मुख्य मन्त्री की घोषणा हो चुकी थी और प्रदेश की राजनीति मे नई हवाए बहने लगी थी। सत्ता के सूत्र अब और लोगो के हाथो मे आ गए थे और वे फूले नही समाते थे। जिनके हाथ से वे चले गए थे वे मायूस थे। चचला राजनीति ने नये वर के गले मे जयमाला डाली थी। उगते हुए सूरज के पुजारी अब अस्तायमान सूर्य की याद करना भी भूल गए। आखिर वे सब बेचारे बादशाह के ही गुलाम तो थे, बैगन के तो थे नही। सबका ध्यान जीवित मन्त्रियो की तरफ था, मृतक की समाधि की ओर नही।

वह पडी थी अपनी एकान्त पहाडी शय्या मे, अकेली और मौन। शहर से वह स्थान दो मील बाहर था।

धनजय वहा पहुचा तब शाम हो रही थी। उस समय उसे छोडकर और कोई वहा नही था। हा, कहने को था उसके स्कूटर का एक मुसलमान ड्राइवर जो दूर एक दरख्त के नीचे बैठकर पहाड की तरफ मुह करके बीडी पी रहा था। स्कूटर का ठहराव घण्टे के हिसाब से था, इसलिए उसे लौटने की जल्दी नही थी।

धनजय समाधि के बाहरी कटघरे के फाटक से भीतर गया। समाधि के पास जाते ही वह अपने आपको नही सम्हाल सका—रो पडा।

उसने अपने हाथ की पुडिया खोलकर समाधि पर फूल चढाए और उसपर सिर टिकाकर उसने श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

और वह समाधि की तरफ मुह करके नीचे जमीन पर ही पालथी मारकर हाथ जोडकर बैठ गया। उसकी आखे बन्द थी, तरल थी। और धीरे-धीरे उसके मुह से शब्द निकले, 'आप तो जानते ही है जोशी जी, कि आपके प्रति मेरी सच्ची भावनाए क्या रही है। दुनिया जाने या न जाने इससे कोई बहस नही है। भाग्य ने आपको और मुझे लडा दिया, यह उसका खेल था। पर आपकी आत्मा जानती है

और ईश्वर जानता है कि सघर्ष के भयकर दिनो मे भी आपके प्रति मेरे मन मे कोई कटुता नही रही बल्कि स्नेह ही रहा और यदि मै आपसे लडता था तो उसमे क्रोध की बजाय विषाद ही अधिक था। कटुता के बजाय खेद ही था कि नियति हम लोगो से क्यो यह अप्रिय खेल करा रही है ? इस सघर्ष मे मेरे मन मे असहायता और कर्तव्य-बुद्धि को छोडकर और कोई भावना नही थी।

'आपने और मैने एक दूसरे के दिल को काफी दुखाया है, काफी चोटे दी है, पर आज हमे सब कुछ भूलकर एक दूसरे को माफ करना चाहिए। 'मरणान्तानि वैराणि'। आपके जीवित रहते हुए मै यदि यह कहने के लिए आपके पास आता तो गलतफहमी होने की सम्भावना थी। पर आज मै यह आपकी आत्मा के सम्मुख कहने के लिए आया हू। आत्मा अमर होती है यह मेरी श्रद्धा है इसलिए मेरा दृढ विश्वास है कि मेरी आवाज आप तक अवश्य पहुची होगी और जिस दिव्य लोक मे आप अभी विचरण कर रहे होगे उसमे तो आप मेरे कुछ कहे-सुने बिना ही मेरी भावना को जान गए होगे।

'मै आपको श्रद्धा से अवनत होकर नमस्कार करता हू और ईश्वर से प्रार्थना करता हू कि वह आपकी आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करे

> 'यथा नद्य स्यन्दमाना समुद्रे,
> अस्त गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
> तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्त',
> परात्पर पुरुषमुपैति दिव्यम्॥'

पश्चिम मे सूरज डूब रहा था, पर उसकी सुनहरी किरणे अस्त होने के पहले एक बार फिर समाधि को उद्भासित कर उठी।

धनजय का चेहरा भी उन किरणो की सौम्यता मे शान्ति पा गया।

उसने आखिरी बार फिर प्रणाम किया और एक गहरा नि श्वास लेकर उठा।

स्कूटर का ड्राइवर भी दौडकर अपनी सीट पर जा बैठा और गाडी स्टार्ट करते हुए बोला, 'क्या आपका पण्डित जी के साथ नजदीक का रिश्ता था ?'

'हा भाई, बडे नजदीक का रिश्ता था, वे मेरे वालिद जैसे ही थे।'

स्कूटर वाले ने भी बडी अदब से अपना सिर झुकाया और उसकी गति तेज कर दी। देखते-देखते स्कूटर हवा से बाते करने लगा।